भविष्य पुराण: एक साँस्कृतिक अनुशीलन

डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2000

शोध पर्यवेक्षक
डॉ0 हरिनारायण दुबे
रीडर
प्राचीन इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

शोध कर्त्री
श्रीमती ज्योति अरोरा
प्राचीन इतिहास, संस्कृति
एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।
अघोरकल्प वृतान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितम् ।।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ।
चतुर्दशसहस्राणि तथा पंचशतानि च ।।
भविष्यचरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते ।।

(मत्स्य पु0 53.30–32)

जिस ग्रन्थ में चतुर्मुख ब्रह्मा ने मनु के प्रति अघोर कल्प के वृतान्त प्रसंग में सूर्य भगवान का माहात्म्य वर्णन करते हुए जगत की स्थिति और भूत ग्राम का निर्देश किया हो तथा जिसमें अधिकता से भविष्यत् चरितों का समावेश हो वही 'भविष्यपुराण' है, जिसकी श्लोक-संख्या चौदह हजार पाँच सौ है।

पूर्वपीठिका

पुराण भारतीय वाड्.मय की अमूल्य निधि हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करते हुए इन्हें सर्वसाधारण जनता तक प्रचारित करने का श्रेय इन्हीं पुराणों को प्राप्त है। पुराणों को यदि भारतीय धर्म और दर्शन का विश्वकोश कहा जाए तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। वेदों की व्याख्या के लिए पुराणों का ज्ञान अत्यावश्यक है। महाभारत का कहना है कि इतिहास और पुराण वेद के अर्थ का उपबृंहण करते हैं अर्थात् वेद में दिए हुए तन्त्व का विस्तार से वर्णन करते हैं। इसीलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति इतिहास और पुराण से अपरिचित है उससे वेद सदा भयभीत रहता है कि कहीं वह मेरे मूल अभिप्राय को न समझकर गलत व्याख्या न कर दे–

"इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।"

(महाभारत 1.1.267; वायु पु0 1.201)

भारत की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था की जानकारी के लिए पुराण समृद्ध भण्डार हैं तथा वे धार्मिक विश्वासों तथा क्रिया कलापों के क्रमिक विकास पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। पुराणों का ऐतिहासिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। प्राचीन भारत के परम्परागत इतिहास को जानने के लिए पुराण अन्यतम साधन हैं। प्राचीन भारतीय राजवंशों यथा– सूर्यवंश, चन्द्रवंश, सात्वत, वृष्णि और अंधक वंश के अतिरिक्त अधिकांश ऐतिहासिक राजवंशों, उदाहरणार्थ नन्द, मौर्य, शुंग एवं गुप्त आदि वंशों के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ पुराणों से ही मिलती हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का लेखन हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से वर्ष 1997 में प्रकाशित 'भविष्य पुराण' को आधार मानकर किया गया है। किन्तु यथावश्यक भविष्य पुराण के अन्य संस्करणों, यथा क्षेमराज श्री कृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, वर्ष 1987 से

पूर्वपीठिका

पुराण भारतीय वाङ्.मय की अमूल्य निधि हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करते हुए इन्हें सर्वसाधारण जनता तक प्रचारित करने का श्रेय इन्हीं पुराणों को प्राप्त है। पुराणों को यदि भारतीय धर्म और दर्शन का विश्वकोश कहा जाए तो इसमे कुछ अत्युक्ति नही होगी। वेदों की व्याख्या के लिए पुराणों का ज्ञान अत्यावश्यक है। महाभारत का कहना है कि इतिहास और पुराण वेद के अर्थ का उपबृंहण करते हैं अर्थात् वेद में दिए हुए तन्त्व का विस्तार से वर्णन करते हैं। इसीलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति इतिहास और पुराण से अपरिचित है उससे वेद सदा भयभीत रहता है कि कही वह मेरे मूल अभिप्राय को न समझकर गलत व्याख्या न कर दे–

> "इतिहास पुराणाभ्या वेदं समुपबृहयेत्।
> विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।"

(महाभारत 1.1.267; वायु पु0 1.201)

भारत की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था की जानकारी के लिए पुराण समृद्ध भण्डार हैं तथा वे धार्मिक विश्वासों तथा क्रिया कलापों के क्रमिक विकास पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। पुराणों का ऐतिहासिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। प्राचीन भारत के परम्परागत इतिहास को जानने के लिए पुराण अन्यतम साधन हैं। प्राचीन भारतीय राजवंशों यथा– सूर्यवंश, चन्द्रवंश, सात्वत, वृष्णि और अंधक वंश के अतिरिक्त अधिकांश ऐतिहासिक राजवंशों, उदाहरणार्थ नन्द, मौर्य, शुंग एवं गुप्त आदि वंशों के संबंध में भी महन्त्वपूर्ण सूचनाएँ पुराणों से ही मिलती हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का लेखन हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से वर्ष 1997 में प्रकाशित 'भविष्य पुराण' को आधार मानकर किया गया है। किन्तु यथावश्यक भविष्य पुराण के अन्य संस्करणों, यथा क्षेमराज श्री कृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वेंकटेश्वर प्रेस बंबई, वर्ष 1987 से भी यथेष्ट सहायता ली गई है।

भविष्य पुराण के इस सांस्कृतिक अध्ययन को विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे परम हर्ष हो रहा है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की संरचना तथा मूलप्रेरणा में पूजनीय गुरूवर डा० हरि नारायण दुबे के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनके चरणों मे बैठकर मुझे प्रस्तुत विषय पर अनुसंधान करने और इस प्रबन्ध को लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। डा० दुबे की कृपा और यथोचित मार्गदर्शन के कारण ही इस प्रबन्ध को प्रस्तुत करना सभव हो सका है। अतः मै उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। साथ ही मैं गुरूपत्नी श्रीमती मिथिलेश दुबे की विशेष आभारी हूँ, जिनका स्नेह तथा आर्शीवाद सदा मेरे साथ रहा है।

संपूज्य गुरू प्रवर प्रो० विद्याधर मिश्र, विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातन्त्व विभाग के प्रति मैं विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोध–प्रबन्ध को पूरा करने में समय–समय पर मुझे सहायता प्रदान की।

प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातन्त्व विभाग के परम सम्मान्य गुरूवृन्दों, प्रो० ओम प्रकाश, प्रो० गीता देवी, डा० आर० पी० त्रिपाठी, डा० जी० के० राय, डा० जय नारायण पाण्डेय, डा० जे० एन० पाल, डा० रंजना वाजपेई, श्री ओम प्रकाश श्रीवास्तव, डा० यू० सी० चट्टोपाध्याय, डा० वनमाला मधोल्कर, डा० ए० पी० ओझा, डा० पुष्पा तिवारी, डा० अनामिका राय, डा० हर्ष कुमार, डा० एस० के० राय, डा० प्रकाश सिन्हा, डा० चन्द्र देव पाण्डेय, डा० डी० पी० दुबे का मैं आभार मानती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर इस कार्य को पूरा करने के लिए मुझे प्रेरित किया है। शोध–प्रबन्ध के लेखन में स्थान–स्थान पर उद्धृत उन सभी सम्मानित विद्वानों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनकी कृतियो एवं विचारों की सहायता लेकर मैने अपना शोध–प्रबन्ध पूरा किया है।

मैं अपने पूज्य पिता जी श्री मुलक राज मनोचा एवं पूजनीया माता जी श्रीमती आशा मनोचा का आभार मानती हूँ, जिनके सर्वविध सहयोग एवं सत्परामर्श से ही मेरा यह शोध–प्रबन्ध लेखन इतनी निर्विघ्नता से पूर्ण हो सका है। इस कार्य को पूरा करने में मेरे पति श्री विपिन अरोरा का निरन्तर सहयोग विशेष महत्त्वपूर्ण है, अतः उनके प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

मैं अपने बड़े भाई श्री अशोक कुमार मनोचा के प्रति विशेष आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने इतने अल्प समय में इस शोध–प्रबन्ध का टंकण कार्य यथासम्भव त्रुटिरहित सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत कर्त्री,

ज्योति अरोरा

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

(श्रीमती ज्योति अरोरा)
शोध–छात्रा

विषय–सूची

प्रथम अध्याय

पुराण वाड्.मय एवं भविष्य पुराण

पुराण वाड्.मय : उद्भव एवं प्रकर्ष

भारतीय सस्कृत वाड्मय मे पुराणो का विशिष्ट स्थान है। उन्हे भारतीय सस्कृति एव जीवन का आधार कहा जा सकता है, जिस पर आधुनिक भारतीय समाज की अनेक परम्पराएँ प्रतिष्ठित है। दुस्साह्य एव जटिल कर्मकाण्ड– प्रधान वैदिक आख्यानो को लौकिक शास्त्र मे परिणत कर पौराणिक आचार सहिता का निबन्धन किया गया। यद्यपि पुराणों का मूल उद्धेश्य वेदो का उपबृहण बताया गया है, किन्तु वेद के समान इनका स्वरूप सदा सर्वदा के लिए निश्चित नहीं किया गया। समय परिवर्तन के साथ–साथ तथा युगीन प्रभावो के आलोक में पुराणो ने भी अपने कलेवर को अनेक कालों में सयोजित किया है। इसीलिए तंत्रवार्तिक[1] वेद को अकृत्रिम एवं पुराणों को कृत्रिम बतलाता है। यास्क के निरूक्त[2] मे भी पुराण शब्द की व्युत्पत्ति समय–समय पर इसके परिवर्तन की ओर स्पष्टत· संकेत करती है। वह व्युत्पत्ति है– 'पुरा नव भवति' अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है। तात्पर्य यह है कि पुराण मूलतः प्राचीन होकर भी कालान्तर मे होने वाले तत्कालीन सामाजिक परिवर्तनो को आवश्यकतानुसार अपने में आत्मसात् कर लेता है।

वैदिक उपबृहण की इस प्रक्रिया मे उन अनेक प्रचलित आख्यानो का भी समावेश किया गया, जो वेद संहिता मे उपलब्ध नहीं होते तथापि सास्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण पुराणसहिता मे उनका समावेश किया गया। इस सन्दर्भ मे सिद्धेश्वरी नारायण राय का यह मत यौक्तिक प्रतीत होता है कि पुराण शब्द का तात्पर्य

1– तंत्रवार्तिक, 1· 3· 3

2– निरूक्त, 3·19

इसके मौलिक अर्थ आख्यान से भिन्न नही है।[1] इस प्रकार प्राचीन होते हुए भी पुराणो मे निरन्तर नवीनता का समावेशकिया जाता रहा है। वेदों की क्लिष्ट शैली, दुरूह कर्मकाण्ड तथा सकीर्ण विचारधारा आम भारतीय जनसमूह को अपनी ओर आकृष्ट करने मे अपेक्षाकृत कम सफल रही जबकि पुराण अपनी लोक प्रचलित आख्यात्मक शैली तथा व्यापक जनसमूह को अपने मे समाहित करने के कारण आधुनिक भारतीय समाज मे वेदो की अपेक्षा अधिक प्रचलित है।

पुराण का प्राचीनकालीन अर्थ पुरातन आख्यानो के विषय मे विद्याविशेष से है, न कि ग्रन्थ विशेष से। पुराण विषयक सामग्री के अवलोकन से पुराणो के विकास–क्रम मे दो धाराएँ स्पष्टतः लक्षित होती है। प्रथम व्यासपूर्व धारा है जिसके अन्तर्गत पौराणिक आख्यान समाहित किए जा सकते है। द्वितीय है व्यासोत्तर धारा जो कृष्णद्वैपायन व्यास से शुरू होकर मूलपुराण सहिता के रूप मे सकलित हुई। व्यासपूर्व धारा के अन्तर्गत पुराण से तात्पर्य लोक प्रचलित परन्तु अव्यवस्थित उन आख्यानो से है, जिन्हे विद्याविशेष के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। मत्स्य पुराण[2] में पुराण के लिए 'शतकोटिप्रविस्तरम्' शब्द उल्लिखित है। आचार्य बलदेव उपाध्याय[3] के अनुसार यह शब्द किसी निश्चित रूप का सकेत न हो कर पुराण के अनिश्चित तथा विप्रकीर्ण रूप का द्योतक माना जा सकता है। किसी ग्रन्थ का संकेत न होने से यह निर्देश पुराण विद्या को ही द्योतित करता है।

1– सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 3

2– 'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मणा स्मृतम्
नित्य शब्दमय पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्
अनन्तर च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृता ।। '

मत्स्य पु0, 3.3–4

3– बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 37

पुराण के स्वरूप के विषय मे एक अन्य परम्परा भी दृष्टिगोचर होती है, जिसके अनुसार कल्पान्तर मे पुराण एक ही था। इस परम्परा को स्कन्द पुराण[1] तथा पद्मपुराण[2] मे प्राप्त उल्लेखो से भी समर्थन प्राप्त होता है, जिसमे पुराण शब्द का प्रयोग एकवचन मे किया गया है। इन्हीं तथ्यो के आधार पर कतिपय विद्वानो[3] ने इस मत मे अपनी सहमति व्यक्त की है कि प्रारम्भ मे कोई मूल पुराण सहिता थी, जो बाद मे अष्टादश पुराणो के रूप मे परिकल्पित हुई। दूसरी तरफ अनेक ऐसे विद्वान है जिन्होने 'मूल पुराण सहिता' के अस्तित्व पर सदिग्धता प्रकट की है। सिद्धेश्वरी नारायण राय[4] के अनुसार जिस सहिताकरण की शैली को वैदिको ने वेद सरचना का विषय बनाया, उसी विशेष शैली को परिवर्तित परिस्थितियों मे पुराणो ने भी अपनाया। आशय यही है कि पुराण संरचना का सूत्रपात ही सहिताकरण की शैली से हुआ। पुसाल्कर[5] के मत के अनुसार मूलपुराण सहिता का अस्तित्व ठीक उसी प्रकार असिद्ध लगता है जिस प्रकार मूल वेद सहिता का। हाजरा[6] भी मूल पुराण सहिता के अस्तित्व से असहमत है।

उपर्युक्त समीक्षा से स्पष्ट हो जाता है कि पुराणो ने प्रारम्भ से ही सहिताकरण की शैली को अपनाया। यही धारा अवान्तर मे अष्टादश पुराणो के रूप मे परिलक्षित हुई। पुराणो की श्लोक सख्या को लेकर भी दो मत प्रचलित है। प्रथम के अनुसार चतु:सहस्रात्मक पुराण सहिता का विपुलीकरण चतुर्लक्षात्मक अष्टादश पुराणो के रूप में

1- स्कन्द पु0 ,(रेवामाहात्म्य), 1 23.30

2- पद्म पु0, सृष्टिखण्ड, अध्याय 1

3- जैक्सन, जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, सेण्टेनरी नम्बर, पृ0 67-70, पार्जीटर एन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडीशन, पृ0 22-23

4- सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एव समाज, पृ0 14-15

5- ए0डी0 पुसाल्कर, स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड पुराणाज, इण्ट्रोडक्शन, पृ0 52

6- आर0सी0हाजरा, स्टडीज इन द पौराणिक रेकार्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ0 5

हुआ तथा द्वितीय मत के अनुसार देवलोक मे विद्यमान शतकोटि श्लोकात्मक पुराण का सक्षिप्त रूप चतुर्लक्षात्मक 18 पुराणो के रूप मे किया गया। तथ्य कुछ भी हो, दोनो ही मतो से यह बात स्पष्ट है कि पुराणविषयक अव्यवस्था का अवसान कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा 'पुराणसहिता' के प्रणयन से निश्चित रूप से हो गया था।

पुराण शब्द का प्राथमिक प्रयोग ऋग्वेद[1] मे अनेक मत्रो मे उपलब्ध होता है। ऋग्वेद मे पुराण शब्द केवल प्राचीनता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में 'पुराणी' शब्द का प्रयोग तत्कालीन प्रचलित गाथाओ के अर्थ में हुआ है। अथर्ववेद[2] मे पुराण शब्द का उल्लेख इतिहास, गाथा तथा नाराशसी के साथ देखने को मिलता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय [3] के मतानुसार इन शब्दो से वैदिक साहित्य से पृथग्भूत किसी लौकिक साहित्य की सत्ता का संकेत मिलता है। वैदिक युग मे साहित्य की प्रवहमान दो धाराएँ प्रतीत होती है। एक धारा तो विशुद्ध धार्मिक है, जिसमे किसी देवता की स्तुति तथा प्रार्थना की गई है तथा दूसरी धारा विशुद्ध लौकिक है, जिसमें प्रख्यात व्यक्तियो का तथा लोक प्रसिद्ध वृत्तो का वर्णन किया गया है। पुराण शब्द का तात्पर्य इसी द्वितीय धारा से मानना उपयुक्त प्रतीत होता है। अथर्ववेद[4] मे प्रयुक्त 'पुराणवित्' शब्द के प्रयोग से भी यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज मे पुराणो के वृतान्त जानने वाले व्यक्तियों का अस्तित्व अवश्यमेव था। इसी वेद[5] मे पुराण का उदय 'उच्छिष्ट' संज्ञक ब्रह्म से बताया गया है। गोपथ ब्राह्मण[6] मे पुराणो के निर्माण की बात वेद, कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास के साथ कही गई है।

1- ऋग्वेद, 3.54 9, 3.58.6, 10.130.6
2- अथर्ववेद, काण्ड 15, अनुवाक् 1, सूक्त 6
3- बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 10
4- अथर्ववेद, 11.8.7
5- अथर्ववेद, 11.7.24
6- गोपथ ब्रा0, पूर्वभाग, 2.10

अन्यत्र मत्र मे गोपथ ब्राह्मण[1] पाँच वेदों का उल्लेख करता है– सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद एवं पुराणवेद। इसके अनुसार उत्तर दिशा से इतिहासवेद तथा ध्रुवा और उर्ध्वा से पुराण का निर्माण हुआ। उक्त ब्राह्मण मे इतिहास एव पुराण दोनो का ही स्वतन्त्र वेद के रूप मे उल्लेख दोनो के पृथक अस्तित्व की ओर सकेत करता है। शतपथ ब्राह्मण[2] में कतिपय स्थलो मे 'इतिहासपुराण' समस्तपद के रूप में उल्लिखित है तथा अन्यत्र इतिहास तथा पुराण मे पृथकत्व भी दृष्टिगोचर होता है।[3] शतपथ ब्राह्मण के आधार पर यह सभावना व्यक्त की जा सकती है कि प्रारम्भ में इतिहास और पुराण मे विशेष अन्तर नही था। अतः वे समस्तपद के रूप में प्रयुक्त किए गए। किन्तु शनै. शनै. उनके वर्ण्यविषय में अन्तर परिलक्षित होने लगा, जिसके आधार पर उन्हें स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान किया गया और गोपथ ब्राह्मण में वे स्वतन्त्र वेद (इतिहास वेद, पुराणवेद) के रूप मे उभरे। तैत्तिरीय आरण्यक[4] मे उपलब्ध 'पुराणानि' शब्द अनेक पुराणो के अस्तित्व की ओर सकेत करता है। इस विषय पर आचार्य बलदेव उपाध्याय[5] का मत है कि 'पुराणानि' शब्द से तात्पर्य पुराणगत आख्यानो के बहुत्व से है, न कि ग्रन्थो के बहुत्व से।

बृहदारण्यक उपनिषद्[6] पुराण की उत्पत्ति को वेद के समान बताते हैं। सभवतः उस काल में पुराण वेदों के समकक्ष लोकमान्य हो चुके थे। छान्दोग्य उपनिषद्[7] में 'इतिहासपुराण' की गणना अधीत तथा अभ्यस्त शास्त्रों में की गई है। इसी उपनिषद् के अन्यत्र मंत्र में इतिहासपुराण 'पञ्चमवेद' के रूप में उल्लिखित है। प्रतीत होता है कि उक्त काल मे मौखिक रूप से प्रचलित पुराण ग्रन्थ रूप में आकार ग्रहण

1– गोपथ ब्रा0, पूर्वभाग, 1.10
2– शतपथ ब्रा0, 11.5.6.8, 11.5.7.9, 14.6.10.6
3– शतपथ ब्रा0, 13.4.3.12–13
4– तैत्तिरीय आरण्यक, 2.9
5– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोधृत, पृ0 14
6– बृहदारण्यक उप0, 2.4.11
7– छान्दोग्य उप0, 7.1.2, 7.1.4, 7.2.1

करने लगे थे, अस्तु उनकी गणना अधीत शास्त्रो मे की जाने लगी। इसके अतिरिक्त पुराणो को वेद के समान मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। अत: उन्हे पञ्चम वेद के रूप मे उल्लिखित किया गया है। आगे चलकर आश्वलायन गृह्यसूत्र[1] में पुराणो को स्पष्ट रूप मे पठन, स्वाध्याय तथा श्रवण का विषय स्वीकार किया गया है। गौतम धर्मसूत्र[2] मे न्याय प्रक्रिया मे निर्णय एव प्रामाणिकता के लिए वेद, व्यवहारशास्त्र तथा वेदाड्ग के साथ– साथ पुराण को भी उपयोगी बताया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति[3] मे भी न्यायिक कार्यों के सम्पादन मे पुराणो की उपादेयता को स्वीकार किया गया है। गौतम धर्मसूत्र के आधार पर भी ग्रन्थ रूप मे पुराण की संभावना को व्यक्त किया जा सकता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[4] मे किसी पुराण के दो श्लोक उद्धृत किए गए है, किन्तु उनके स्रोत के विषय मे ग्रन्थकार मौन है। अन्यत्र इसी धर्मसूत्र में 'भविष्य पुराण'[5] का भी स्पष्टोल्लेख प्राप्त होता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे उद्धृत श्लोक, ब्रह्माण्ड, विष्णु तथा मत्स्य[6] पुराणों से नितान्त साम्य रखते है।

धर्मसूत्रों के प्रणयन काल की तिथि चौथी या पाँचवी शताब्दी ई0पू0 मानी जाती है।[7] आचार्य उपाध्याय आपस्तम्ब धर्मसूत्र की प्राचीनता पाँचवी अथवा छठी शताब्दी ई0पू0 तक ले जाते है।[8] आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे उद्धृत पौराणिक श्लोकों तथा भविष्य पुराण के स्पष्टोल्लेख के आधार पर आचार्य उपाध्याय[9] के निष्कर्षानुसार उक्त काल में कम से कम एक पुराण का प्रणयन हो चुका था। सिद्धेश्वरी नारायण राय के मतानुसार

1– आश्व0 गृ0 सू0, 3.4, 4.6
2– गौतम ध0 सू0, 11.19
3– याज्ञ व0 स्मृ0, 1.3
4– आप0 ध0 सू0, 2.23.35
5– आप0 ध0 सू0, 2.9.24.6
6– ब्रह्माण्ड पु0, अनुषङ्ग पाद, 54.159.166, विष्णु पु0, 2.8.12, मत्स्य पु0, 124.102.110
7– विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, पृ0 519
8– बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 19
9– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ0 19

यदि धर्मसूत्रो के काल को पुराण सकलन का काल मान लिया जाए तो उनके सरचना तथा सकलन का प्रथम स्तर ई0पू0 पञ्चम शती तक अवश्य आकार ग्रहण कर चुका था। इसी सदर्भ मे हाजरा[1] के मतानुसार आपस्तम्ब धर्मसूत्र के रचनाकाल के पूर्व ही एक से अधिक पुराणो की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी।

कौटिल्य के अर्थशात्र[2] से भी उक्त निष्कर्ष को समर्थन प्राप्त होता है, जिसमे पुराण और वेतनभोगी पौराणिको का उल्लेख मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि उस युग मे पौराणिक एक महत्वशाली व्यक्ति माना जाता था। विशिष्ट वेतन पर उसकी नियुक्ति उसके वैशिष्ट्य का द्योतक है। पार्जीटर[3] ने अपने निष्कर्ष से यह स्पष्ट किया है कि अर्थशास्त्र की रचना तिथि तक पुराण मात्र आख्यान न रहकर विरचित साहित्य के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुके थे। प्रतीत होता है कि पुराण सकलन की प्रथम प्रक्रिया धर्मसूत्रो के काल में प्रारम्भ हो चुकी थी तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र के रचनाकाल (लगभग चतुर्थ शती ई0पू0) तक पुराणों के महत्व तथा प्रचार प्रसार में उत्तरोत्तर विकास होता गया।

महाभारत[4] के अनुशासन पर्व मे पुराणों के वर्णन को यर्थाथ तथा प्रामाणिक

1- आर0 सी0 हाजरा, पूर्वोद्धृत, पृ0 5
2- कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 5.6, 5.3, 5.13-14
3- पार्जीटर, पूर्वोद्धृत, पृ0 34
4- 'पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सकम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि, न हन्तव्यानि हेतुभिः।।'
महाभारत, अनुशासनपर्व, विशेष
द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 19

बताया है। महाभारत मे ही आदिपर्व[1] मे उल्लिखत श्लोक के आधार पर आचार्य उपाध्याय के निष्कर्षानुसार देवसबधी आख्यान तथा वशानुचरित पुराणों के अविभाज्य अग माने गए हैं।[2] वेदो का उपबृहण करना ही पुराणों का उद्‌देश्य था।[3] महाभारत[4] मे राजवशवृत्तों के प्रतिपादन के संदर्भ मे वायु पुराण का उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है, जो आजकल प्रचलित वायु पुराण मे प्राप्त राजवशावलियो से पूणत: साम्य रखता है।[5] हौप्किंस[6] के अनुसार जनमेजय के नागयज्ञ के आख्यान का जो स्वरूप वर्तमान वायुपुराण में आख्यात है, महाभारत मे विवृत उक्त आख्यान से प्राचीनतर माना जा सकता है। इसी प्रकार लूडर्स पद्‌मपुराण मे वर्णित ऋष्यश्रृंग आख्यान को महाभारत मे आख्यात उक्त आख्यान से अधिक प्राचीन मानते है।[7] महाभारत का अन्तिम सम्पादन ईसा की चतुर्थ शती के पूर्व अवश्य हो चुका था।[8] इस प्रकार पुराण साहित्य सरचना की प्राचीनता उक्त तिथि के पहले निर्धारित की जा सकती है।

धार्मिक स्मृतियों मे पुराण को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। गौतम धर्मसूत्र[9] मे बहुश्रुत (शास्त्र का ज्ञाता) की सिद्धि के लिए पुराण का ज्ञान आवश्यक बताया गया है। स्मृति काल मे पुराण को वेद के समान ही पवित्र समझा जाने लगा था।

1– 'पुराणेहि कथादिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभि. श्रुतपूर्वा पितुस्तव।।'
महाभारत, आदिपर्व, 5.2

2– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्‌धृत, पृ0 19, 20

3– 'इतिहासपुराणाभ्यां वेद समुपबृंहयेत्', महाभारत, 1.1.267

4– महाभारत, वनपर्व, अ0 191.16

5– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्‌धृत, पृ0 20

6– हौप्किंस, द ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया, पृ0 48

7– द्रष्टव्य, विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग 1, पृ0 521

8– द्रष्टव्य, पुसाल्कर, एपिक्स एण्ड द पुराणाज, भूमिका, पृ0 31

9– गौतम ध0 सू0, 8.4–6

मनुस्मृति[1] मे स्पष्ट कहा गया है कि पितृकर्म श्राद्ध के अवसर पर निमन्त्रित ब्रह्मणों को यजमान वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास, पुराण तथा खिल सुनाएँ।

संस्कृत के महान गद्य कवि बाणभट्ट (सातवीं शती) द्वारा रचित कादम्बरी तथा हर्षचरित में पुराणों का उल्लेख विशेष रूप से प्राप्त होता है। कादम्बरी मे एक स्थल पर 'पुराणेणु वायुप्रलपितम्' उद्धरण मिलता है। अन्यत्र 'पुराणमिवयथाविभागावस्थापित सकलभुवनकोशम्' तथा 'आगमेषु सर्वेस्वेव पुराण रामायण भारतादिषु-----शापवार्ताः श्रूयन्ते' उल्लेख बाणभट्ट के समय में पुराणों की लोकप्रियता को सिद्ध करते है। इसी प्रकार हर्षचरित मे भी 'पवमानप्रोक्त पुराण पाठ' एव 'पुराणमिदं' उल्लेख पुराणों की लोकप्रियता विशेषकर वायुपुराण की प्रसिद्धि के परिचायक है। आधुनिक शबरस्वामी, कुमारिल, शकराचार्य तथा विश्वरूप आदि पुराणों से उद्धरण देकर अपने विचारों की संपुष्टि करते है। अलबरूनी नामक अरबी ग्रथकार ने अपने ग्रन्थ में पुराण से बहुत सी सामग्री ग्रहण की जो उन पुराणों मे आज भी उपलब्ध है।

उपर्युक्त समीक्षा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन पुराणो की मौखिक परम्परा का ग्रन्थ रूप मे परिणत होने के संकेत उपनिषद् काल मे ही प्राप्त होने लगे थे, जिनमें पुराणो की गणना अधीत शास्त्रो मे की गई है। जबकि धर्मसूत्रो ने पुराणो को स्पष्ट रूप से स्वाध्याय तथा पठन पाठन का विषय स्वीकार कर उन्हे ग्रन्थों की श्रेणी मे लाकर खड़ा कर दिया। अवान्तर काल मे पुराणों को वेदो के समकक्ष मान्यता प्रदान की जाने लगी तथा पुराणो की गणना भी पवित्र ग्रन्थो मे की जाने लगी।

1- मनुस्मृति, 3.232

पुराणलक्षण : पञ्चलक्षण

अमरकोश मे पुराणों के लिए पञ्चलक्षण शब्द का प्रयोग व्याख्याविहीन पारिभाषिक शब्द के रूप में किया गया है। इसके अतिरिक्त अधिकतर पुराणों मे भी पुराणो की पञ्चलक्षणात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। पुराण अपने प्रारम्भिक चरण मे गाथा के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।[1] आशय यह है कि प्रारम्भिक अवस्था मे पुराणो का कार्य वैदिक गाथाओं तथा वेदेतर लोवृत्तात्मक आख्यानों का सकलन मात्र था। यद्यपि यह संकलन मौखिक रूप मे विद्यमान था। इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन पुराण परम्परा का कोई विशेष लक्षण निर्धारित नही था। संभवतः इसी कारण अथर्ववेद[2] में पुराण शब्द इतिहास, गाथा तथा नाराशसी शब्दों के साथ प्रयुक्त मिलता है। प्रतीत होता है कि ये चारो शब्द समान अर्थ के द्योतक रहे होगे। आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि इनका संबध वैदिक साहित्य से पृथक्भूत विशुद्ध लौकिक धारा से था, जिसमें लोक मे प्रख्याति पाने वाले महनीय व्यक्तियों का तथा लोकप्रसिद्ध वृत्त का वर्णन करना ही अभीष्ट तात्पर्य होता था।[3] अवान्तर कालीन गोपथ ब्राह्मण[4] में इतिहास पुराण पृथक् वेद के रूप मे उल्लिखित है। इस आधार पर यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि पुराणों में कतिपय विशेष (निश्चित) लक्षणों को स्थान दिया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप ही यदाकदा इतिहास पुराण परस्पर पृथक् तथा स्वतन्त्र रूप में उल्लिखित किए जाने लगे। स्कन्द[5], पद्म[6] तथा मत्स्य[7] आदि पुराणो में पुराण त्रिवर्ग के साधन रूप मे उल्लिखित हैं।

1– ऋग्वेद, 3.5.49, 3.58.6, 10.130.6
2– अथर्ववेद, काण्ड 15, अनुवाक् 1, सूक्त 6
3– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ0 10
4– गोपथ ब्रा0, 1.10
5– स्कन्द पु0, रेवामाहात्म्य, 1.23.30
6– पद्म पु0, सृष्टिखण्ड, अ0 1
7– मत्स्य पु0, अ0 53

विष्णु[1], वायु[2] तथा ब्रह्माण्ड[3] पुराणो के वर्णनानुसार महर्षि व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पजोक्ति (कल्पशुद्धि) इन विषयो का आश्रय लेकर पुराण सहिता का निर्माण किया। चूकि आख्यान का क्षेत्र इतना व्यापक था, अतएव इनमे इतिहास, गाथा तथा नाराशंसी आदि को समाहित कर लिया गया। ध्यातव्य है कि इतिहास तथा पुराण दोनो का ही संबध पूर्वकाल मे घटित घटनाओ के सकलन से है। अतएव इतिहास को भी आख्यान मे सम्मिलित कर लिया गया। हरिनारायण दूबे[4] के अनुसार पारस्परिक एकरूपता के कारण ही उत्तरवैदिक ग्रन्थो तथा सूत्रग्रन्थो मे इतिहास पुराण एक साथ प्रयुक्त हुए। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[5] मे इतिहास में ही पुराण साहित्य का अन्तर्भाव व्यक्त किया गया है। उक्त काल (ई0 पू0 तृतीय शती) तक इतिहास और पुराण परस्पर अभिन्न पूर्वक साहित्य माने जाते थे। अथर्ववेद[6] तथा शतपथ ब्राह्मण[7] मे पुराण में इतिहास का अन्तर्भाव कर लिया गया।

अवान्तर मे जब स्मृति ग्रंथो का प्रणयन किया जाने लगा तब पुराणोक्त धर्मशास्त्रीय विषयों को विशेष मान्यता दी जाने लगी। मनुस्मृति में पितृकर्म श्राद्ध के अवसर पर वेद के साथ ही पुराण के श्रवण का भी विधान बताया गया है।[8] याज्ञवल्क्य स्मृति[9] में धर्म को स्वाधार पर रखने वाली विद्याओं में पुराणों की भी गणना की गई है। वे वेदो के सदृश ही उपादेय तथा पवित्र है।

1– विष्णु पु0, 3.6.15
2– वायु पु0, 60.21
3– ब्रह्माण्ड पु0, 2.3.31
4– हरिनारायण दूबे, पुराण समीक्षा, पृ0 69, 70
5– कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 5.13–14
6– अथर्ववेद, 11.7.24
7– शतपथ ब्रा0,13.4.3.13
8– मनुस्मृति, 3.232
9– याज्ञ व0 स्म0, उपोद्घात, श्लोक 3

इस प्रकार स्मृति काल से (ईसा पूर्व द्वितीय शती से) पुराणों को धार्मिक कार्यों मे विशेष महत्व दिया जाने लगा। तब पुराणो को इतिहास सदृश विषयो से पृथक् करने के लिए उसके स्वरूप मे परिवर्तन आवश्यक समझा जाने लगा। जिसके परिणामस्वरूप पुराणो को पञ्चलक्षणात्मक स्वरूप प्रदान किया गया। सर्वप्रथम अमरकोश मे पुराणो के लिए पञ्चलक्षण शब्द का प्रयोग किया गया। अमरकोश का रचना काल ईसा की लगभग चौथी पॉँचवी शती माना गया है। अमरकोश मे पुराणो के लिए पञ्चलक्षण शब्द के व्याख्याविहीन प्रयोग से स्वतः यह अनुमानित होता है कि उस काल तक पञ्चलक्षणो से युक्त पुराण अत्यधिक लोकप्रिय हो चुके थे। अधिकतर पुराणो[1] मे पञ्चलक्षणो को निम्न श्लोक द्वारा निर्दिशट किया गया है–

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरित चेति पुराणं पञ्चलक्षण।।"

पार्जीटर[2] ने पञ्चलक्षणों को पुराणों का प्राचीनतम विषय माना है। किर्फेल[3] आदि विद्वानों ने इन्हें पुराणो का मूल वर्ण्य–विषय स्वीकार किया है। उक्त दोनों ही मत असंगत प्रतीत होते है। पुराणो की निर्माण प्रक्रिया पर दृष्टिपात किया जाय तो पञ्चलक्षण न तो पुराणों के प्राचीनतम विषय माने जा सकते हैं और न ही ये उनके मूल विषय स्वीकार किए जा सकते है, क्योंकि प्रारम्भिक चरण में पुराण गाथाओ और आख्यानों का संकलन मात्र था। पौराणिक साहित्य में पञ्चलक्षणों का समावेश सम्भवतः

1– विष्णु पु0, 3.6.24, मार्कण्डेय पु0, 134.13, अग्नि पु0, 1.14, भविष्य पु0, भाग 1, 2.5, ब्रह्मवैवर्त्त पु0, 133.6, वाराह पु0, 2.4, स्कन्द पु0, प्रभास खण्ड, 2.84, कूर्म पु0, पूर्वार्ध, 1.12, मत्स्य पु0, 53.64, गरूड़ पु0, आचार काण्ड, 2.28, ब्रह्माण्ड पु0, प्रक्रियापाद, 1.38, शिव पु0, बायवीय संहिता, 1.41

2– पार्जीटर, पूर्वोद्धृत, पृ0 36

3– द्रष्ष्टव्य, काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, पृ0 388–389

द्वितीय सस्करण के समय किया गया जिसका कारण पौराणिक साहित्य को इतिहासादि से पूर्णतः स्वतन्त्र एव पृथक् स्वरूप प्रदान करना माना जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा है कि परिवर्तन और परिवर्धन की प्रक्रिया पुराण सहिता के निर्माण में निरन्तर परिलक्षित होती रही है। अवान्तर में पुराणों मे धर्म, मोक्ष, तीर्थ, व्रत, दान आदि विषयों का समावेश उक्त कथन को बल प्रदान करता है। पञ्चलक्षण पुराणो के लिए पारिभाषिक शब्द होकर रह गया। कतिपय प्राथमिक पुराणों यथा–विष्णु, ब्रह्माण्ड, वायु, मत्स्य आदि मे बहुत कुछ पञ्चलक्षण के समाहार की उक्त प्रवृत्ति प्रमाणित होती है। अधिकांश पुराणों में समय–समय पर समसामयिक विविध एव नवीन विषयो का समावेश किया जाने लगा।

प्रस्तुत प्रसग में आचार्य राजशेखर शास्त्री ने विद्वानो का ध्यान कौटिल्य के अर्थशास्त्र (1.5) की व्याख्या में जयमंगला के द्वारा किसी पुरातन ग्रंथ से उद्धृत श्लोक की ओर आकृष्ट किया[1], जो पञ्चलक्षणों की एक अन्य परिभाषा को प्रस्तुत करता है। श्लोक निम्न प्रकार से है–

"सृष्टि प्रवृत्तिसंहार धर्ममोक्ष प्रयोजनम्।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्त पुराण पञ्चलक्षणम्।।"

उक्त श्लोक मे धर्म पुराण का एक अविभाज्य लक्षण स्वीकार किया गया है। जिसके आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने धर्म को भी पुराणों का प्राचीन लक्षण स्वीकार किया है।[2] प्रसंगतः उल्लेखनीय है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र के आधार पर भी

1– पुराणम् पत्रिका, भाग 4, अंक 1, जुलाई 1964 में प्रकाशित राजशेखर शास्त्री का भारतीय राजनीतौपुराणपञ्चलक्षणम् लेख, पृ0 236– 244, विशेष द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 127

2– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ0 127

आचार्य उपाध्याय ने प्राचीन काल से ही पुराणो के धर्मशास्त्रीय स्वरूप को स्वीकार किया है।[1] आचार्य उपाध्याय ने अपने मत की पुष्टि के लिए भागवत पुराण का उद्धरण प्रस्तुत किया है, जिसमे ' मन्वन्तराणि सद्धर्म:' कहकर मन्वन्तर के भीतर धर्म का भी उपन्यास न्याय्य माना है। परन्तु एस0 एन0 राय[2] के अनुसार जयमगला द्वारा उद्धृत श्लोक की प्राचीनता निश्चित प्रमाण के अभाव में निर्धारित नही हो पाती। इसी सदर्भ मे हरिनारायण दूबे[3] का मत है कि उक्त श्लोक गुप्तोत्तर काल में विरचित हुआ जिस समय विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो का समुन्नयन हो रहा था तथा पञ्चलक्षण की परिभाषा मे भी परिवर्धन प्रारम्भ हो चुका था।

पञ्चलक्षणों द्वारा विभिन्न देवो की स्तुति अनेक पुराणो से प्रमाणित होती है। उदाहरणार्थ विष्णु पुराण मे एक स्थल पर कहा गया है कि सर्गप्रतिसर्ग आदि पौराणिक विषय विष्णु के गौरवगान के लिए है। मत्स्यपुराण[4] मे वर्णित है कि इन लक्षणो के माध्यम से पुराण ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा रूद्र का गुणगान करते है। उपरोक्त समीक्षा के आधार पर धर्ममोक्ष आदि विषयो का समावेश अवान्तरकालीन पुराण सरचना के अन्तर्गत स्वीकार करना यथोचित प्रतीत होता है।

1– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ0 19

2– एस0 एन0 राय, पौराणिक धर्म एव समाज, पृ0 17

3– हरिनारायण दूबे, पुराण समीक्षा, पृ0 73

4– मत्स्य पु0, 2.10.1–7, 12.7.9–20

पञ्चलक्षणात्मक विषय

सर्गः–

इस सम्पूर्ण जगत की सृष्टि प्रक्रिया को ही 'सर्ग' नाम से अभिहित किया गया है। भागवत पुराण[1] का निम्नलिखित श्लोक सर्ग की परिभाषा को व्यक्त करता है।

"अव्याकृतगुणक्षोभात् महतस्त्रिवृत्तोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थाना सम्भव· सर्ग उच्यते।।"

अर्थात् जब मूल प्रकृति मे लीन गुण क्षुब्ध होते है तब महत् तत्व की उत्पत्ति होती है। महत् तत्व से ही तीन प्रकार के अहकार जागृत होते हैं। त्रिविध अहकारों से ही पञ्चतन्मात्रा (भूतमात्र) की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति क्रम को ही सर्ग कहा जाता है।

प्रतिसर्गः–

सर्ग के विलोमार्थी शब्द प्रतिसर्ग से तात्पर्य प्रलय से है। विष्णु पुराण[2] में इसके लिए प्रतिसंचर शब्द का प्रयोग किया गया है। श्रीमद्भागवत[3] में संस्था शब्द उल्लिखित है। भागवत पुराण मे चार प्रकार के प्रलयों का उल्लेख मिलता है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक· कल्प को ब्रह्मा का दिन माना गया है। रात्रि को जब ब्रह्मा निद्रामग्न हो जाते हैं अर्थात् कल्पान्त को प्रलय का समय माना गया है। इस अवसर पर तीनों लोको (भूर्, भुवर्, स्वर्) का प्रलय हो जाता है, परन्तु महर्लोक, जनलोक आदि अपने स्थान पर बने रहते हैं। इसी प्रलय को नैमित्तिक संज्ञा प्रदान की गई है। प्राकृत प्रलय के समय पञ्चमहाभूतों से बना यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़कर कारण रूप मे स्थित हो जाता है। प्रकृति तथा पुरूष ये दोनों

1– भागवत पु0, 12.7.11
2– विष्णु पु0, 1.2.25
3– श्रीमद्भागवत, 12.7.17

शक्तियाँ क्षीण होकर अपने मूल कारण मे विलीन हो जाती है। जिस समय जीव को ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है, उसी को आत्यन्तिक प्रलय की सज्ञा प्रदान की गई है। इस जगत के पदार्थों के स्वतः नष्ट होने की प्रक्रिया को ही नित्य प्रलय कहा गया है जो प्रतिक्षण संभाव्य है।

प्रस्तुत सदर्भ में हरिनारायण दूबे का कथन अत्यन्त सारगर्भित है कि पुराणो के प्रलय विलय अथवा जल–प्लावन घटनाक्रमो का साकेतिक अर्थ मानव आदर्शों एव विचारो के परिवर्तन एव नए मूल्यादर्शों की ओर प्रस्थान से माना जा सकता है।[1]

वंशः–

ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न नृपतियों की भूत, भविष्य तथा वर्तमान कालिक सतान परम्परा को वश कहा गया है।[2]

"राज्ञा ब्रह्मप्रसूताना वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।"

वश के अन्तर्गत ऋषियो तथा देवों की कुल परम्परा की भी परिगणना पुराणो मे की गई है।

मन्वन्तरः–

सृष्टि के विभिन्न कालमान को मन्वनतर द्वारा व्यक्त किया गया है। पुराण परम्परानुसार एक कल्प के अन्तर्गत चौदह मनुओं का प्रादुर्भाव होता है। प्रत्येक मनु द्वारा

1– हरिनारायण दूबे, पूर्वोद्धृत, पृ0 74

2– भागवत पु0, 12.7 16

भुक्त काल को मन्वन्तर कहा जाता है। इस प्रकार एक कल्प में चौदह मन्वन्तर परिकल्पित किए गए है। भागवत पुराण[1] मे मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार– इन छः विशिष्टताओ से युक्त समय को मन्वन्तर कहा गया है। विष्णु पुराण मे चौदह मनुओं के नाम इस प्रकार है–

1. स्वायम्भुव 2. स्वरोचिष 3. उत्तम 4. तामस 5. रैवत 6 चाक्षुष 7. वैवस्वत 8 सावर्णिक 9 दक्षसावर्णिक 10. ब्रह्मसावर्णिक 11 धर्मसावर्णिक 12. रूद्र सावर्णिक 13. देवसावर्णिक 14. इन्द्र सावर्णिक

भविष्य पुराण मे इन चौदह मन्वन्तरों के नाम कुछ भिन्न प्रकार से उल्लिखित है।[2] अब तक छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके है। वर्तमान सातवे मन्वन्तर के अधिपति वैवस्वत मनु है।

वंशानुचरितः–

विशिष्ट व्यक्तियो एव नृपतियो के चरित्र का वर्णन ही वशानुचरित कहलाता है। भागवत पुराण[3] मे वशानुचरित की परिभाषा निम्नोक्त है–

"वशानुचरित तेषां वृत्त वशधराश्चयो।"

1– भागवत पु0, 12.7.15

2– भविष्य पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 4.25.56–75
मन्वन्तर– स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, दक्षसावर्णि, रूद्रसावर्णि, धर्म सावर्णि, भौम, भौत।

3– भागवत पु0, 12.7.16

पुराण : दस लक्षण

पुराणो के दस लक्षणों का उल्लेख मात्र ब्रह्मवैवर्त्त एव भागवत पुराण मे ही मिलता है। अन्यत्र किसी मे पुराण की दसलक्षणात्मक व्याख्या उपलब्ध नही है। भागवत पुराण मे दो स्थलो पर दस लक्षणो का उल्लेख किया गया है। आचार्य उपाध्याय[1] के अनुसार लक्षणों मे शाब्दिक भिन्नता होते हुए भी अभिप्राय दोनो का समान है। ये लक्षण इस प्रकार है–

1.सर्ग 2.विसर्ग 3.वृत्ति 4.रक्षा 5.अन्तराणि 6.वंश 7.वशानुचरित 8.सस्था 9.हेतु 10.अपाश्रय।[2]

भागवत पुराण मे ही दूसरे स्थल पर ये लक्षण निम्न प्रकार से उल्लिखित हैं–

1.सर्ग 2.विसर्ग 3.स्थानम् 4.पोषणम् 5.ऊतयः 6.मन्वन्तर 7.ईशानुकथा 8.निरोध 9.मुक्ति 10.आश्रय।[3]
भागवतकार ने यह यह इगित किया है कि पॉंच अथवा दस लक्षणो की योजना महत् अथवा अल्प व्यवस्था के कारण की गई है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार दस लक्षण महापुराण एव पचलक्षण क्षुल्लक पुराण के साकेतिक है।[4]

1– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ0 128
2– भागवत पु0, 12.7.9
3– भागवत पु0, 2.10.1
4– ब्रह्मवैवर्त्त पु0, 4.131.6–10

इन्ही कथनो के आधार पर पुसाल्कर[1] ने अल्पव्यवस्था से उपपुराण एव महत् व्यवस्था से महापुराण का भाव ग्रहण करना अभीष्ट बताया है। परन्तु एस0 एन0 राय[2] ने इसका अभिप्राय पुराण सस्करण एव प्रतिसंस्करण द्वारा श्रुति एव अर्थ परम्परा मे परिवर्धन एव नवीन संयोजन से माना है। इस स्थल पर यह विवेचनीय है कि सामान्यतया पुराणो मे उल्लिखित है कि जो लक्षण पुराणो के हैं वही उपपुराणों के भी है। अत पञ्च एव दस लक्षणो से उपपुराण एव महापुराण से तादात्म्य स्थापित करना सर्वथा असगत है। भागवत पुराण मे निम्नलिखित श्लोक द्वारा यह संकेत किया गया है कि पुराण दसलक्षण भी हो सकते है और कतिपय पञ्चलक्षणात्मक भी, अपने अल्प और महत् स्वरूप के कारण।

"दशभिक्तर्क्षणैयुक्त पुराण तद्विदोविदुः।
केचित्पञ्चविधिं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्था।।"

ऐसा प्रतीत होता है कि भागतव पुराण मे जो दसलक्षणात्मक व्याख्या की गई है, उसका कारण है दार्शनिक विचारो एव साम्प्रदायिक भावना का पुराणों मे प्रवेश।

गुप्त वश तथा उसके पश्चात् के समय मे वैष्णव धर्म का प्रसार ही नही हुआ अपितु अनेक रूपो मे उसका विकास भी हुआ। यह विकास प्रधानतया अवतारवाद के रूप में था। यद्यपि अवतारवाद की धारणा भारत में बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है तथापि वैष्णव धर्म में उसे विशेष रूप से विकसित किया गया। भागवत पुराण मे

1– पुसाल्कर, स्टडीज इन द एपिक्स एण्ड पुराणाज, भूमिका, पृ0 46

2. एस0 एन0 राय, पूर्वोद्धृत, पृ0 17

तत्कालीन दार्शनिक विचारो एव अवतारवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। भागवतकार ने अपने दार्शनिक विचारो को अद्वैतवाद के रूप मे प्रस्तुत किया, जिसमे भक्ति तत्व का भी समावेश है। पूर्वप्रचलित पञ्चलक्षणो मे अपने व्यापक वर्ण्य विषय को अभिव्यक्त करने के अभाव का आभास होने पर ही दशलक्षणात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई। विसर्ग, रक्षा, हेतु तथा अपाश्रय ये लक्षण भागवत पुराण के दार्शनिक दृष्टिकोण पर ही आद्धृत प्रतीत होते है। महदल्प व्यवस्था अथवा पुराण तथा उपपुराण के सदर्भ मे पञ्च एव दसलक्षणात्मक व्याख्या उपयुक्त प्रतीत नही होती। वास्तविकता तो यह है कि इन दस लक्षणो का भी सम्यक् पालन पुराणो मे दृष्टिगोचर नही होता। पुराण प्रारम्भ से ही 'पुरा नव भवति' इसी व्याख्या को साकार करते रहे है। उनमे निरन्तर नवीन, विविध एव महत्वपूर्ण समसामयिक विषयो का समावेश किया जाता रहा है। अस्तु उन्हे पञ्चलक्षण अथवा दसलक्षण की परिधि मे सीमित करना ही सर्वथा अनुपयुक्त है।

अष्टादश पुराण : संख्या एवं क्रम

पुराणों के सबध मे यह सर्वमान्य मत है कि पुराणों की कुल संख्या 18 है। यद्यपि इनकी क्रम सूची विविध पुराणों मे भिन्न–भिन्न है। विष्णु[1] भागवत[2] भविष्य[3] तथा अन्य पुराणो में इनकी क्रम सूची निम्नलिखित है–

1– विष्णु पु0, 3.6.20–24

2– भागवत पु0, 12.13.3–8

3– भविष्य पु0, ब्राह्मपर्व 1.61–64

1.ब्रह्म 2 पद्म 3 विष्णु 4.शिव 5.भागवत 6 नारद 7 मार्कण्डेय 8 अग्नि 9.भविष्य 10.ब्रह्मवैवर्त्त 11.लिङ्ग 12.वाराह 13.स्कन्द 14 वामन 15.कूर्म 16.मत्स्य 17.गरूड़ 18.ब्रह्माण्ड

कतिपय पुराणों मे उपरोक्त सूची तथा प्रथम (आदि) पुराण के विषय में मतवैभिन्य देखने को मिलता है। वायु पुराण[1] में नितान्त भिन्न क्रमावली प्रस्तुत की गई है। यद्यपि इनमे अष्टादश पुराणों को स्वीकार किया गया है, तथापि इसकी सूची मे मात्र सोलह पुराणो का ही नामोल्लेख है–

1 मत्स्य 2.भविष्य 3.मार्कण्डेय 4.ब्रह्मवैवर्त्त 5.ब्रह्माण्ड 6.भागवत 7.ब्रह्म 8.वामन 9.आदिक 10.अनिल(वायु) 11.नारदीय 12.वैनतेय (गरूड़) 13.कूर्म 14. शौकर (वाराह) 15.स्कन्द

उक्त सूची मे मत्स्य पुराण को प्रथम पुराण का श्रेय प्रदान किया गया है तथा आदिक नामक नितान्त भिन्न पुराण का उल्लेख है, जिसका स्वरूप अनिश्चित है।

देवी भागवत[2] में भी मत्स्य पुराण का उल्लेख प्रथम स्थान पर किया है। इसमें पुराणो के नाम सूत्ररूप मे निबद्ध हैं–

मद्वय भद्वय चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापद् लिङ्ग–कू– स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।[3]

1– वायु पु0, 104.1

2– देवी भागवत, 1.3.3

3– वही, 1.3 21

अर्थात् मकार से दो पुराण मत्स्य तथा मार्कण्डेय, भकार से दो पुराण भागवत तथा भविष्य, ब अक्षर से तीन पुराण ब्रह्म, ब्रह्माण्ड तथा ब्रह्मवैवर्त्त, वकार से चार पुराण वाराह, वामन, विष्णु तथा वायु, अ से अग्नि, न से नारद, लि से लिड्.ग, ग से गरूड़, कू से कूर्म तथा स्क से स्कन्द नामक पुराणो का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार वामन पुराण[1] भी मत्स्य को ही आदि पुराण मानता है। जबकि स्कन्द पुराण[2] ब्रह्माण्ड पुराण को आदि पुराण स्वीकार करता है।

पद्म पुराण के आदि, पाताल तथा उत्तर खण्ड में दो स्थलो[3] पर पुराणो की क्रमावली किञ्चित अन्तर के साथ उल्लिखित है तथा सख्या मे ये 18 दर्शाए गए है। पद्म पुराण मे ही एक स्थल पर 22 पुराणो का उल्लेख किया गया है।[4]

1 ब्रह्म 2.पद्म 3.विष्णु 4 मार्तण्ड 5.नारद 6. मार्कण्डेय 7.अग्नि 8 कूर्म 9. वामन 10.गरूड 11.लिड्ग 12.स्कन्द 13.मत्स्य 14.नृसिह 15.कपिल 16.वाराह 17.ब्रह्मवैवर्त्त 18.शिव 19.भागवत 20.दुर्गा 21.भविष्योत्तर 22.भविष्य

उपर्युक्त सूची मे नृसिह, कपिल, मार्तण्ड एवं भविष्योत्तर ये चारों ही उपपुराण प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न क्रमावली के प्राप्त होने पर भी सामान्यतः सर्वप्रथम उल्लिखित सूची ही प्रचलित एवं मान्य है।

1- वामन पु0, 12.48
2- स्कन्द पु0, 2.8-9
3- पद्म पु0, उत्तर खण्ड, 219.25.27, 261.77.81
4- पद्म पु0, पाताल खण्ड, 10.51.53

पुराणों का वर्गीकरण

अष्टादश पुराणो का अनेक पुराणो मे भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से वर्गीकरण किया है। प्रथम प्रकार का वर्गीकरण त्रिगुणों पर आधारित है। किन्तु, इस प्रकार के विभाजन मे पुराण एक मत नहीं है। मत्स्य पुराण[1] के अनुसार सात्विक पुराण के अन्तर्गत विष्णु का माहात्म्य वर्णित है, राजस पुराणों मे ब्रह्मा तथा अग्नि का माहात्म्य वर्णित है तथा तामस पुराणों मे शिव का। सरस्वती तथा पितरो का माहात्म्य वर्णित करने वाले सकीर्ण पुराण हैं। कितु यहा पर पुराणों का नामोल्लेख नही किया गया है। पद्म पुराण[2] मे यह विभाजन निम्न प्रकार से है–

1– सात्विक– विष्णु, नारद, भागवत, गरूड़, पद्म, वाराह ।

2– राजस– ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्रह्म ।

3– तामस– मत्स्य, कूर्म, लिङ्.ग, शिव, स्कन्द, अग्नि ।

पद्म पुराण तो साथ मे यह भी कहता है कि सात्विक पुराण मोक्ष देने वाले, राजस पुराण स्वर्ग प्रदान करने वाले तथा तामस नरक की ओर ले जाने वाले है। भविष्य पुराण[3] मे त्रिगुण समन्वित वर्गीकरण कुछ भिन्नता के साथ उपलब्ध है। उसमे राजस पुराणो के अन्तर्गत कर्मकाण्ड प्रधान पुराणो को स्वीकार किया है तथा तामस के अन्तर्गत शक्तिधर्म प्रधान पुराणों की गणना की गई है जो निम्नलिखित है–

1– मत्स्य पु0, 53.67–68

2– पद्म पु0, 163.81–84

3– भविष्य पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 3.28.8–17

1–सात्विक पुराण– विष्णु, स्कन्द, पद्म, भागवत, ब्रह्म, गरूड

2–राजस(कर्मकण्डमय)– मत्स्य, कूर्म, नृसिह, वामन, शिव, वायु

3–तामस(शक्ति धर्मपरायण)–मार्कण्डेय, वाराह, अग्नि, लिङ्ग, ब्रह्माण्ड, भविष्य

द्वितीय वर्गीकरण साम्प्रदायिक है। विभिन्न सम्प्रदायो के अनुयायियो ने पुराणो मे अपने विशिष्ट सम्प्रदाय को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। शिव पुराण मे शिव की प्रधानता है तो विष्णु पुराण में विष्णु की। कही सूर्य सर्वश्रेष्ठ देव है तो कही ब्रह्मा। इस प्रकार प्रधान देवों के आधार पर पुराणो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है। स्कन्द पुराण में दो स्थलो पर इस प्रकार का विभाजन उपलब्ध है परन्तु किञ्चित् भिन्नता के साथ उल्लिखित है। स्कन्द पुराण के केदार खण्ड मे[1] दस मे शिव, चार मे ब्रह्मा, दो मे शक्ति तथा दो मे विष्णु प्रधान देवता के रूप मे प्रतिष्ठित है, किन्तु नामो का उल्लेख नही किया गया है। स्कन्द पुराण के ही शिव रहस्य खण्ड[2] के अन्तर्गत उपलब्ध विभाजन मे दस मे शिव, चार मे विष्णु, दो मे ब्रह्मा, एक मे अग्नि तथा एक में सूर्य देव की प्रधानता है जो निम्नलिखित है–

1. शैव– शिव, भविष्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, स्कन्द, मत्स्य, कूर्म, वामन, ब्रह्माण्ड
2. वैष्णव– विष्णु, भागवत, नारद, गरूड
3. ब्रह्म पुराण– ब्रह्म, पद्म
4. अग्नि पुराण– अग्नि
5. सूर्य– ब्रह्मवैवर्त्त

1– स्कन्द पु0, केदार खण्ड, अ0 1, विशेष द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 92

2– स्कन्द पुराण– शिव रहस्य खण्ड, सम्भव काण्ड, 2.30.38

उपास्य देवों पर ही आधारित विभाजन तमिल ग्रन्थो मे भी प्राप्त होता है जो निम्नोक्त है–

1. शैव पुराण– शिव, स्कन्द, लिग, कूर्म, वामन, वाराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड ।

2. वैष्णव पुराण– नारद, भागवत, गरूड़, विष्णु ।

3. ब्रह्म पुराण– ब्रह्म, पद्म ।

4. अग्नि पुराण– अग्नि

5. सौर पुराण– ब्रह्मवैवर्त्त ।

उपरोक्त साम्प्रदायिक विभाजनों में भविष्य पुराण को शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है, जो मेरे विचारानुसार उचित नहीं है, क्यों कि भविष्य पुराण मे सूर्य ही सर्वत्र प्रधान देवता स्वीकार किया गया है। सूर्य ही चार मुख वाले ब्रह्मा और काल रूप शिव हैं एवं सहस्रों सिर वाले वही स्वयंभू पुरूष हैं। उनकी सात्विक, राजस, तामस तीन अवस्थाएँ है। वही ब्रह्मा रूप से लोको का सृजन करते हैं। काल रूप (शिव) से सक्षेप एवं पुरूष रूप से उदासीन हैं।[1]

तृतीय विभाजन वर्ण्य विषय पर आधारित है। जिसका विभाजन छः वर्गों मे किया गया है।[2]

1– भविष्य पु0, ब्रह्म पर्व, 77.1–10

2– ए0 डी0 पुसाल्कर, कल्याण हिन्दू संस्कृति, अंक 1, वर्ष 24, जिल्द संख्या 1, 1950 ई0, पृ0 550

1– प्रथम वर्ग में उन पुराणो को रखा गया है जिनमें साहित्यिक सामग्री उपलब्ध है,यथा– अग्नि, गरूड और नारद।

2– दूसरे वर्ग के अन्तर्गत तीर्थ व्रत प्रधान पुराणो की गणना की गई है,यथा– पद्‌म, स्कन्द, भविष्य ।

3– तीसरा वर्ग इतिहास प्रधान पुराणों का है जिसके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड और वायु पुराण स्वीकार किए गए हैं।

4– चौथे वर्ग मे साम्प्रदायिक पुराणो का अन्तर्भाव है। जिसमे लिग, वामन तथा मार्कण्डेय पुराण आते हैं।

5– पाँचवे वर्ग में उन पुराणों को लिया गया है, जिनके दो– दो बार सस्करण होने से नए प्रक्षिप्तांशो को भी जोड़ा गया है,यथा– ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त्त, भागवत।

6– अत्यधिक संशोधन होने से जिन पुराणों में आमूल परिवर्तन हो गया है, उन्हे छठे वर्ग में सम्मिलित किया गया है। वाराह, कूर्म तथा मत्स्य ऐसे ही पुराण है।

उपरोक्त विभाजनों का अवलोकन करने पर वर्ण्य विषय पर आधारित विभाजन को पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं कह सकते। अनेक पुराण ऐसे है जिनमे मवान्तर काल में नवीन प्रक्षिप्ताश जोड़े गए। अन्यश्च इतिहास प्रधान पुराण के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड पुराण और वायु पुराण की गणना की गई है, जबकि भविष्य पुराण में भी ऐतिहासिक सामग्री बहुलता के साथ उपलब्ध है। त्रिगुणों पर आधारित विभाजन में स्वय पुराण ही परस्पर भिन्न मत प्रस्तुत करते हैं। पूर्वोक्त तीनों प्रकार के विभाजनों मे साम्प्रदायिक विभाजन में यदि भविष्य पुराण को सौर सम्प्रदाए के अन्तर्गत रख दिया जाए तो इस विभाजन को उचित माना जा सकता है।

उपपुराण एव उनकी संख्या

उपपुराणो की सख्या एवं प्राचीनता अत्यन्त विवाद का विषय है। पौराणिक वाड्मय का प्रणयन किसी एक काल की घटना नही है, वरन इसकी विकास प्रक्रिया अनेक शताब्दियों तक निरन्तर प्रवहमान थी। फलस्वरूप पौराणिक वाड्.मय महापुराण उपपुराण एव औपपुराण के रूप मे विकसित होता रहा। भविष्य पुराण मे उल्लिखित है कि पृथ्वी पर घोर कलि के वर्तमान होने पर राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी पर आगमन कर सभी मुनियों को बुलाया। उस समय नैमिषारण्यवासी उन महर्षिगणो ने अट्ठारह उपपुराणो की रचना की।[1] इस प्रकार भविष्य पुराण में उपपुराणो की सख्या अट्ठारह निर्दिष्ट है तथा राजा विक्रमादित्य के काल में (लगभग प्रथम शताब्दी ई0 पू0) उनका उदय स्वीकार कर सकते है। विष्णु पुराण[2] मे उपपुराणों का उल्लेख आता है, किन्तु नाम निर्दिष्ट नहीं है। सभवतः उपपुराणों का उदय तो हो चुका था, किन्तु विशिष्ट उपपुराणों की रचना नही हुई थी। काणे[3] महोदय ने विष्णु पुराण की रचना तिथि 300 ई0 से 500 ई0 के मध्य स्वीकार की है। पुसाल्कर[4] ने भी उपपुराणो के प्रणयन को महापुराणो के बाद स्वीकार किया है तथा उनके स्वरूप को साम्प्रदायिक स्वीकार किया है। कूर्म पुराण[5] में कहा गया है कि मुनियो ने अष्टादश पुराणों का सम्यक् अनुशीलन करने के उपरान्त उनको सक्षिप्त स्वरूप प्रदानार्थ उपपुराणो की रचना की। मत्स्य पुराण[6] में उपपुराणो को अष्टादश पुराणों का उपभेद स्वीकार किया है तथा उन्हीं से उद्भूत माना है।

1- भविष्य पु0, प्रतिसर्गपर्व, 3.28.16-17
2- विष्णु पु0, 3.6.24
3- द्रष्टव्य, एच0 एन0 दूबे, पुराण समीक्षा, पृ0 65
4- ए0 डी0 पुसाल्कर, पूर्वोद्धृत, पृ0 48
5- कूर्म पु0, 1.1.16
6- मत्स्य पु0, 75.53.58.59

इस आधार पर यह कहना कि महापुराणो के सकलन के बाद उपपुराणो का प्रणयन प्रारम्भ हुआ उचित प्रतीत नहीं होता। क्यो कि कतिपय पुराणो मे उपपुराणो का उल्लेख नाम सहित किया गया है। मत्स्य पुराण[1] मे नरसिह, नन्दी, आदित्य एव साम्ब नामक उपपुराणो का उल्लेख है। मत्स्य पुराण की तिथि काणे महोदय ने 200 ई0 से 400 ई0 के मध्य स्वीकार की है। आचार्य उपाध्याय[2] ने भी मत्स्य पुराण की तिथि 200 ई0– 400 ई0 स्वीकार की है। हाजरा[3] ने मत्स्य पुराण के द्वितीय सस्करण को 550 ई0 से 650 ई0 के मध्य माना है। इसी प्रकार कूर्म[4] पद्म[5] तथा देवी भागवत[6] मे 18 उपपुराणो के नाम उल्लिखित हैं, जिनमे कतिपय पुराण, यथा–वामन, स्कन्द, ब्रह्माण्ड नारदीय आदि महापुराणों से साम्य रखते है। हाजरा[7] ने पद्म पुराण का समय 900 ई0 से 1500 ई0 के मध्य प्रतिपादित किया है। कूर्म पुराण का काल पद्म पुराण से पहले निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि पद्म पुराण मे कूर्म पुराण से बहुत कुछ वर्णन उद्धृत किया गया है।

उपरोक्त समीक्षा के आधार पर कहा जा सकता है कि पुराणों के सस्करण के साथ ही साथ उपपुराणो की कल्पना कर ली गई। यही कारण है कि कतिपय पुराण उपपुराण से भी परिचित है। मत्स्य पुराण की तिथि के आधार पर उपपुराणो की प्राचीनता छठी से सातवी शती के मध्य स्वीकार कर सकते है। अधिकांश उपपुराण

1– मत्स्य पु0, 53.59.62
2– बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ0 566
3– आर0 सी0 हाजरा, स्टडीज इन द उपपुराणाज, पृ0 41
4– कूर्म पु0, 1.1.16–20
5– पद्म पु0, 4.111.95–98
6– देवी भागवत, 1.3.13–16
7– हाजरा, पूर्वोद्धृत, पृ0 111–114

पश्चातकालीन हैं क्योंकि उनका उल्लेख ग्यारहवी बारहवीं शती के टीकाकारो एवं निबन्धकारो (मिताक्षरा, अपरार्क आदि) के ग्रन्थों मे उपलब्ध नहीं हो पाता।

उपपुराणों की निश्चित संख्या निर्धारित करना संभव नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्त, विष्णु तथा भविष्य पुराण में उपपुराणों की सख्या 18 बताई गई है, किन्तु नामोल्लेख नहीं किया गया है। पद्म[1] तथा देवी भागवत[2] मे उपपुराणो के नाम थोड़े अन्तर के साथ उल्लिखित हैं। उपपुराणों की सख्या पर विमर्श करते हुए हाजरा[3] ने इनकी 23 विभिन्न सूचियाँ प्रस्तुत की हैं, जिनमे लगभग 100 उपपुराणो के नाम सकलित है। इनमें से कुछ का प्रकाशन हो सका है। शेष उपपुराणो की पाण्डुलिपियाँ विभिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं। इन उपपुराणो मे पञ्चलक्षणों का निर्वाह नहीं किया गया है, परन्तु प्रचलित पाठ बहुधा महापुराणों के विषयो से साम्य रखते है।

सूत संहिता[4] मे 20 उपपुराणो के नाम उल्लिखित हैं, जिनका क्रम अधोलिखित है –

1– पद्म पु0, पाताल खण्ड,111·95·97

2– द्रष्टव्य, विल्सन विष्णु पुराण का अनुवाद, भाग–1, भूमिका

3– आर0 सी0 हाजरा, स्टडीज इन द उपपुराणाज, पृ0 11–13, विशेष द्रष्टव्य, एच0 एन0 दूबे, पुराण समीक्षा, पृ0 67

4– सूत संहिता, 1·13·18, द्रष्टव्य, एच0 एन0 दूबे, पुराण समीक्षा, पृ0 68

सूची

क्रम संख्या	पद्मपुराण	देवीभागवत	सूतसंहिता
1.	सनत्कुमार	सनत्कुमार	सनत्कुमार
2.	नृसिंह	नरसिह	नरसिंह
3.	अण्ड	नारदीय	नान्दी
4.	दुर्वासा	शिव	शिवधर्म
5	नारदीय	दुर्वासस्	दुर्वासा
6	कपिल	कपिल	नारदीय
7	मानव	मानव	कपिल
8.	उशनस्	औशनस्	मानव
9.	ब्रह्माण्ड	वारूण	उषनस्
10.	वरूण	कालिका	ब्रह्माण्ड
11.	कालिका	साम्ब	वरूण
12.	महेश	नन्दी	कालिका
13	साम्ब	सौर	वशिष्ठ
14.	सौर	पाराशर	लिङ्.ग
15.	पाराशर	आदित्य	महेश्वर
16.	मारीच	माहेश्वर	साम्ब
17.	भार्गव	भागवत	सौर
18	कौमार	वाशिष्ठ	पाराशर
19.	–	–	मारीच
20.	–	–	भार्गव

पुराणों की भाषा शैली

पुराणों की भाषा के संबंध मे दो विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए है। प्रथम के मतानुसार पुराण का मूल रूप प्राकृत भाषा में निबद्ध था, जिसे बाद में संस्कृत भाषा में रूपान्तरित कर दिया गया। इस मत का प्रतिपादन पार्जीटर महोदय ने किया है। द्वितीय मतानुसार पुराणों की मूल रचना ही संस्कृत भाषा मे की गई। द्वितीय मत के समर्थन में कीथ, जैकोबी, पुसाल्कर, बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किए।[1] पार्जीटर[2] की धारणा है कि पुराणों का प्राथमिक संकलन लोक विश्रुत क्षत्रिय परम्परा मे हुआ था, जिनमे मूलत. जनभाषा का प्रयोग किया गया। कालान्तर में ब्राह्मण परम्परा के अन्तर्गत पुनः सस्कृत भाषा मे रूपान्तरित कर लिया गया। इस संदर्भ में उन्होंने मत्स्य, वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों का उल्लेख किया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने कतिपय शब्दों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जो संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है तथा प्राकृत भाषा तथा व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा उचित हैं। इनके अनुसार संस्कृत भाषा में रूपान्तरण के समय इन शब्दों को जन भाषा में प्रचलित होने के कारण यथावत् रहने दिया। व्याकरणगत अशुद्धियों के संबंध मे डा0 कीथ ने जनभाषा में प्रचलित (प्राकृत) शब्दों के प्रयोगों को स्वीकार करते हुए यह मत प्रस्तुत किया कि पुराणों का मूल संस्करण संस्कृत भाषा में ही था, किन्तु जनसाधारण में पुराणों को लोकप्रिय बनाने के लिए लोक प्रचलित भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया। आपके मतानुसार परम्परा प्राप्त जनभाषा का प्रभाव तो वैदिक, वाङ्मय में कहीं- कहीं मिलता है, जिसे पुराणकारों ने अपनी रचना का आदर्श स्वीकार किया। आचार्य उपाध्याय[3] ने भी पुराणों की मूल भाषा संस्कृत

1- द्रष्टव्य, जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, 1914, पृ0 1027-1028, पुसाल्कर, स्टडीज इन द एपिक्स एण्ड पुराणाज,पृ0 25-30, बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 582

2-पार्जीटर ड्रा यनेस्टी ऑफ द कलि एज, पृ0 77-83

स्वीकार करते हुए उन्हे वेदों और काव्यो से पृथक् माना है। पुराण अर्थ प्रधान होता है अर्थात् अभीष्ट अर्थ को प्रस्तुत करने पर ही पुराण का विशेष आग्रह है। इस कारण पुराणों की भाषा व्यवहारिक होती है, फलतः वह पाणिनीय बधन को स्वीकार नही करते। पुसाल्कर ने पार्जीटर द्वारा किए गए क्षत्रिय परम्परा एवं ब्राह्मण परम्परा, इस प्रकार के विभाजन को नितान्त भ्रामक बताया है। पुसाल्कर ने तर्क प्रस्तुत किया है कि पुराणो को वेदो के समकक्ष माना गया है तथा उनका उल्लेख पञ्चम वेद के रूप मे किया गया है।[1] उनमे वैदिक ब्राह्मण परम्पराओ, विषयो को सम्मान्य स्थान प्रदान किया गया है। यही नही उनमे वेद विरोधी धर्मों यथा जैन बौद्ध आदि को कोई स्थान नही दिया। इस सदर्भ मे पुसाल्कर ने कीथ के विचारों को प्रस्तुत करते हुए यह भी स्पष्ट किया कि पार्जीटर पुराणो के जिस स्तर विशेष को क्षत्रिय. परम्परा से जोड़ते हैं, उस स्तर एव काल में भी वैदिक परम्परा प्राप्त ब्राह्मणाख्यानो का ही सकलन किया गया है, जिनमे वश एवं वशानुचरित आख्यानो को भी कथमपि वेदेतर परम्परा नही मानी जा सकती।[2] सदर्भत यह भी उल्लेखनीय है कि मौर्य काल, जिसमे बौद्ध और जैन धर्मों की प्रधानता थी, के पश्चात शुंग काल मे ब्राह्मण धर्म के उत्थान के लिए जो प्रयास किया गया, उसका स्वरूप पूर्णत. पौराणिक था। अतएव पुराणो को क्षत्रिय परम्परा से जोड़ना कदापि उचित नही।

पुराणो का मुख्य लक्ष्य वेदो का उपबृहण है। अतएव वैदिक अर्थों को जन प्रचलित करने के लिए पुराणाकारो ने वर्णनात्मक शैली का आश्रय लिया।

1– " इतिहास पुराणं पञ्चम् वेदानाम् वेदम्",
छान्दोग्य उपनिषद्, 7.1.2, वायु पु0, 1.17, कूर्म पु0, 2.24.21.22

2– जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, . लन्दन, 1914, पृ0 1027 पर ए0 बी0 कीथ के विचार। विशेष द्रष्टव्य, एच0 एन0 दूबे, पुराण समीक्षा, पृ0 78

अपने अभीष्ट अभिप्राय को सामान्य जनता तक पहुँचाने के लिए उन उपमाओ और दृष्टान्तो का सहारा लिया जो दैनिक और जीवन मे नित्य प्रति ही अनुभव किए जाते है।

कतिपय विद्वानो ने पुराणो के अतिश्योक्ति पूर्ण कथनो पर आपत्ति उठाई है तथा उन्हे नितान्त कपोल कल्पित स्वीकार किया है. किन्तु इस आधार पर उसके तथ्यो को पूर्णत अस्वीकृत करना तर्कसगत प्रतीत नहीं होता। ध्यातव्य है कि पुराणों की शैली प्रारम्भ से ही आख्यात्मक रही है। अत· कथाकार द्वारा उनमे स्वतः ही कल्पना एव अतिरजना का समावेश हो जाता है, जिससे पाठकों की उत्सुकता एव कौतुहल बना रहे, किन्तु इस कारण उसमे मूल सदेश का विलोप नही हो जाता। उदाहरणार्थ दान के प्रसंग मे लाखो एवं करोड़ो गायो को ब्राह्मणो को देने का उल्लेख है। यहा करोडो गायो से अभिप्राय बहुत सी गायो से है न कि निर्दिष्ट सख्या से।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणकारो ने अपने अनुभवों एवं उपदेशो को रूपक उपमा आदि अलकारो तथा सूक्तियो द्वारा अलंकृत कर जनसाधारण में सम्प्रेषित करने के लिए कथा शैली एव संस्कृत भाषा को माध्यम बनाया।

द्वितीय अध्याय

भविष्य पुराण : तिथि– निर्धारण

भविष्य पुराण– तिथि निर्धारण

भविष्य पुराण अष्टादश महापुराणों में परिगणित किया जाता है। अधिकांश पुराणों में राजस, तामस एवं सात्विक वर्गीकरण में इसे सात्विक पुराण माना गया है, किन्तु भविष्य पुराण में तामस में और एक अन्य वर्गीकरण में इसे राजस के अन्तर्गत रखा है। इसकी श्लोक संख्या को लेकर विवाद है। भविष्य पुराण के ही अनुसार इसकी संख्या 50,000 होनी चाहिये। जबकि वर्तमान पाण्डुलिपियों में यह श्लोक संख्या मात्र 28,000 मिलती हे। कतिपय अन्य पुराण इसकी श्लोक संख्या 14,500 स्वीकार करते हैं। इससे यह पता चलता है कि इस पुराण में समय– समय पर पर्याप्त संशोधन, परिवर्धन होता रहा है।

इस पुराण में वर्णित विषय वस्तुओं के आलोक में इसकी तिथि का निर्धारण करना एक कठिन कार्य है। प्राचीनता की दृष्टि से आपस्तम्ब धर्मसूत्र (आपस्तम्बीय धर्मसूत्रम् 2.6.23.2.5 एव 2.9.24.6) में इसका उल्लेख किया गया है। इस दृष्टि से इसे प्राचीनतम् पुराण होने का गौरव प्राप्त होता है। परन्तु इसमें आए प्रक्षिप्तांशों को देखने से इस पुराण के कलेवर की वृद्धि 18वीं– 19वीं शताब्दी तक होती रही, जिससे इसकी कोई एक निश्चित तिथि सीमा तय करना बड़ा दुष्कर है। इस पुराण के विभिन्न अंश भारतीय इतिहास एवं संस्कृति सुदीर्घकालीन परम्परा को आत्मसात करते हैं। इसमें वर्णित राजवंश सूची में इक्ष्वाकु वंश से लेकर ब्रिटिश शासकों तक का उल्लेख मिलता है, जिनका क्रमिक विवरण निम्नवत् है:–

1. इक्ष्वाकु वंश
2. चन्द्रवंश
3. पौरव वंश
4. शिशुनाग वंश
5. मौर्य वंश
6. मौर्योन्तर वंश
7. मुगल वंश
8. ब्रिटिश शासन

भविष्य पुराणों के संदर्भों के आधार पर मत्स्य पुराण में यह बताया गया है (अघोर कल्प) जिसमें ब्रह्मा मनु से कहते हैं कि यह पुराण सूर्य की महिमा का वर्णन करता है औरइसमे

14,500 श्लोक अन्तर्विष्ट है।[1] अग्नि पुराण मे इस सम्बन्ध में दी गई सूचना मत्स्य पुराण से थोड़ा से अलग है। इसके अनुसार भविष्य पुराण जो सूर्य (सूर्य संभव) से उद्भूत है, का वाचन भाव द्वारा मनु से किया गया है उसमें 14,000 श्लोक समाहित थे।[2] विस्तृत जानकारियों के अनुसार इसकी विचारणीय (यथेष्ट) अंतिम तिथि का वर्णन नारदीय पुराण (अध्याय 1.100) में मिलता है जहाँ यह कहा गया है कि एक बार मनु ने ब्रह्मा से धर्म के बारे में कुछ प्रश्न पूछे थे। यह पुराण तब व्यास द्वारा 5 पर्वों ब्रह्म, वैष्णव, शैव, सौर एवं प्रतिसर्ग में बाँट दिया गया। इन सभी पर्वों के सन्दर्भ भी इस पुराण में दिए गए हैं। ब्रह्म पर्व के बारे में यह कहा गया है कि यह सूत और शौनक ऋषियों के वार्तालाप से शुरू होता है और यह मूलतः सूर्य (आदित चरित प्राय) से संबंधित एक ग्रन्थ है।[3]

उक्त सूचनाओं के आधार पर हम यह पाते हैं कि अघोर कल्प के संबंध में भविष्य पुराण मुख्यतः ब्रह्मा और मनु के बीच के बातचीत से सम्बन्धित है। दूसरी तरफ आज उपलब्ध मुद्रित भविष्य पुराण में ब्रह्मा और मनु के बीच वार्तालाप का कोई सन्दर्भ प्राप्त नहीं होता और

---

1. यत्राधिकर्त्य माहात्म्यमु आदित्यस्य चतुर्मुखाः
अघोर कल्प वृतान्त प्रसंगेना जगत स्थितिम्
मनवे कथ्यामासा भूत ग्रामास्या लक्षणम्
चतुर्दश सहस्राणि तथा पंच शतानि क
भविष्य चरित प्रायम् भावियम् तदइहोवयते।।

मत्स्य पु0, 53, 30–31

यह श्लोक स्कन्द पुराण में वर्णित श्लोक 7, 2, 49, 50 जैसा ही है लेकिन इसमें जगत स्थितिम् के स्थान पर 'जगत पतिह' शब्द मिलता है।

2. अग्नि पुराण, 272.12

3. नारदीय पुराण, 1.100

इसे 4 पर्वों ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग और उन्तर मे बाँटा गया है।[1] ध्यातव्य है कि इसमें अघोर कल्प का कोई जिक्र नही मिलता और ब्रह्म पर्व मे सूर्य और उनकी पूजा पर अच्छी खासी मात्रा मे अध्याय मिलते है और यह सूत और शौनक के बीच बातचीत से भी शुरू नहीं होता। विषय की भिन्नताओ से ऐसा प्रतीत होता है कि आज का भविष्य पुराण मत्स्य, अग्नि और नारदीय पुराण द्वारा वर्णित भविष्य पुराण से बहुत ही भिन्न है।[2] अगर तथ्यों पर गौर किया जाए तो तीन पर्व मध्यम, प्रतिसर्ग और उन्तर पर्व तुलनात्मक रूप से बाद में जोड़े गए प्रतीत होते हैं। इन तीनो मे से एक मध्यम पर्व जिसका भविष्य पुराण (1.2.2–3) द्वारा वर्णित 5 पर्वों ब्राह्म, वैष्णव, शैव, सौर और प्रतिसर्ग में कोई उल्लेख नही मिलता, तंत्र की जानकारियों से परिपूर्ण है।

भविष्य पुराण के इन श्लोको में पूर्व व्याख्याकारों और निबन्ध लेखकों जैसे भवदेव, जीमूतवाहन, विज्ञानेश्वर, अपरार्क, देवणभट्ट, बल्लालसेन, अनिरूद्ध भट्ट, हेमाद्रि, मदनपाल, माधवाचार्य और शूलपाणि का उल्लेख मिलता है जो स्मृति आख्यानो से भरा है। इस तरह इसकी प्रारम्भिक तिथि को इनके पूर्व रखा जाना कदापि उचित नहीं है।[3] प्रतिसर्ग पर्व जिसका भविष्य पुराण 1.2.2–3 मे उल्लेख है, व्यवहारिक तौर पर एक बाद का अध्याय है। यह आदम, नूह, याकूत आदि कहानियों का उल्लेख करता है और फिर तैमूरलंग, नादिरशाह, अकबर और उसके उन्तराधिकारियों का भी वर्णन मिलता है। इसमें जयचन्द्र और पृथ्वीराज की कहानी मिलती है।

---

1. सौर पु0, 9.8 और स्कन्द पु0, 5.3 (रेवा खण्ड) 1 34 बी, 35ए, भविष्य पु0 में 4 पर्व हैं।
2. नारदीय पु0 (1.100.13) के अनुसार भविष्य पुराण अपने 14,000 श्लोको के लिए जाना जाता है। इस तरह यह आज के मुद्रित भविष्य पुराण से बहुत छोटा ग्रन्थ रहा होगा।

3. सामान्य तौर पर मध्यम पर्व एक बाद की रचना है। इसके अध्यायों और उद्धरणो को 1500ई0 के पूर्व का माना जाना चाहिये क्यों कि इससे रघुनन्दन ने अपने ग्रंथ 'स्मृति तत्व' द्वितीय, पृ0 286–87 में उद्धरण लिए हैं– 'भविष्य पुराणीय मध्यतन्त्र षष्ठाध्याय' और पृ0 509 पर तीसरे भाग का नवां अध्याय भी इसी पुराण से लिया गया है– 'इति भविष्य पुराणे तृतीय भागे नवमों अध्याय', पृ0 5000
भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 3.18.1, 4–10 ' तथ्य जम्बू' 'इतिसम वल्कल रसाह' और 'कुश– वाल्मीक संभूतम्' पंक्तियाँ नहीं मिलती हैं।

सत्यनारायण के पूजा के महत्व का उल्लेख मिलता है और साथ ही वाराहमिहिर शकराचार्य, रामानुज, निम्बार्क, माधव, जयदेव, विष्णुवामित, भट्टोजी दीक्षित, आनन्दगिरि, कृष्ण– चैतन्य, नित्यानन्द, कबीर, नानक, रैदास और अन्य महापुरूषो के जन्म से जुड़े कल्पित मिथक का भी वर्णन मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ भारत में ब्रिटिश राज से भी परिचित हैं क्योंकि इसमें कलकन्ता और ससद (अष्ट कौशल्य) का भी जिक्र मिलता है। इस तरह इसकी अतिम तिथि के बारे मे विश्वास पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।[1]

उन्तर पर्व जो खुद में एक अलग पुराण सा है का नाम भविष्योन्तर बताया गया है[2] जो कि सामान्य तौर पर भविष्योन्तर पुराण के ही समान हे और यह अपरार्क, हेमाद्रि, माधवाचार्य और अन्य विद्वानों से भरा है। इसकी तिथि 1100 ई0 से पूर्व रखी जा सकती है। इसके जनपदीय चरित इस तथ्य को आगे सुस्थापित करते हैं कि भविष्य पुराण के श्लोकों (अनुवाक्यों) का उद्धरण किसी भी व्याख्याकार या निबन्ध लेखक द्वारा नहीं दिया गया है, सिवाय हेमाद्रि के जिनका उल्लेख इस पर्व में है। यह विभिन्न स्मृति आख्यानों से परिपूर्ण है।[3] कुछ मामलो में, जिसमें हेमाद्रि द्वारा भविष्य पुराण के उन्तर पर्व से उद्धरण लिए गए हैं, से भ्रम की स्थिति पैदा होती है, जिसका शीर्षक इन्होंने भविष्य और 'भविष्योन्तर' दिया है। (उदाहरण के लिए दृष्टव्य– चतुर्वर्ग चिन्तामणि 2.1, पृ0 604–5, 669–671 और 705– 717 और 2.2, 526– 527 जो कि भविष्य पुराण से सम्बद्ध है और भविष्योन्तर के रूप मे उद्धृत किया गया है।) जहाँ तक ब्रह्मपर्व की बात है, उसके बहुत से उद्धरणीय श्लोक (अनुवाक्य) अनुसरणीय

---

1. नारदीय पुराण (1.100.10) के अनुसार प्रतिसर्ग पर्व अपने विभिन्न आख्यानों के लिए जाना जाता है (नानाख्याना समन्वितम्)। मुद्रित प्रतिसर्ग पर्व में भी अच्छी संख्या में मिथकीय कहानियाँ मिलती हैं, लेकिन इस समानता से प्रतिसर्ग पर्व की तिथि को पीछे नहीं रखा जाना चाहिये क्योंकि नारदीय पुराण 1.92– 109, जो महापुराणों से संदर्भ देता है, एक यथेष्ट अंतिम तिथि का उल्लेख करता है।

2. दृष्टव्य भविष्य 4.207– 10 (ख),'ख्यातम् भविष्योन्तर नानाध्येयम् मयापुराणम् तव सौहर्द्रता।'

3. और अधिक जानकारी के लिए देखें 'स्टडीज इन दि उपपुराणाज'

है, जैसे भविष्य पुराण के श्लोक (अनुवाक्य) मिताक्षरा (याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका) काल विवेक, अपरार्क की याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका, दानसागर, स्मृति–चद्रिका, चतुर्वर्ग चिन्तामणि, पराशर स्मृति पर माधवाचार्य की टीका, मदन परिजात और मनुस्मृति पर कुल्लूक भट्ट की टीका आदि जैसे गन्थो मे मिलते हैं (भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व अध्याय 2, 3, 4, 18, 19, 21, 22, 31, 32, 36– 39, 46, 47, 51, 55– 59, 64, 65, 68– 70, 81– 83, 86, 89, 90, 91, 93, 96– 101, 103, 104–106, 108– 112, 118,165– 170, 172, 181, 183, 184, 186, 197, 208, 209, 212– 214)। अब यह तथ्य स्पष्ट है कि वर्तमान ब्रह्म पर्व का एक बड़ा भाग बहुत पहले अस्तित्व में आया। अब प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्म पर्व ठीक वैसा ही है जैसे भविष्य पुराण– मत्स्य, अग्नि, और नारदीय पुराण के जरिये जाना जाता है। इस सन्दर्भ मे यह बात उल्लेखनीय है कि मत्स्य और नारदीय पुराण जिसमे ब्रह्म पर्व का प्राचीनतम् उल्लेख मिलता है सूत और शौनक ऋषियो के वार्तालाप से शुरू होता हे और इस पुराण का पहला वाचन ब्रह्मा ने मनु से किया। ब्रह्मपर्व के विस्तृत रूप में न तो सूत और शौनक का उल्लेख मिलता है और न ही ब्रह्मा और मनु का ही कोई जिक्र मिलता है। यह दूसरे पर्वों की तरह ही राजा शतानीक की कहानी से शुरू होता है जो ज्ञानी जनो से सलाह लेने के क्रम मे आचार्य व्यास से धर्मशास्त्र की बातें बताने का आग्रह करते हैं। आचार्य व्यास राजा को अपने शिष्य सुमन्त से मिलने के लिए कहते हैं, जो धर्म के मामलो पर राजा को आख्यान सुनाएंगे। यहाँ पर धर्मशास्त्र लेखको (जैसे मनु, विष्णु, यम, अंगिरस और14 अन्य) की कड़ी मे सुमन्त का नाम पहली बार मिलता है, जो राजा शतानीक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का जवाब देने के लिए प्रस्तुत होते हैं।

इस तरह उपयुक्त असहमतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि आज का ब्रह्मपर्व अपने मूल प्रारूप मे हुए कई संशोधनों का परिणाम है। संशोधनों की इस प्रक्रिया में ब्रह्म पर्व का मूल स्वरूप एकदम सा बदल गया और इसके कई अध्याय इस प्रक्रिया में निकाल दिए गए।[1] सम्भवतः इसके पीछे मूल कारणों में यही है कि व्रत और प्रायश्चित पर आधारित कई उद्धरण (अनुवाक्य) आज के ब्रह्मपर्वमें नहीं प्राप्त होते।

---

1. सप्तमयावधि पुराणम् भविष्यम् अपि समग्रहीतम् अतियानत।
त्यक्तवाष्टमी नवम्योह कनय् पाखण्डीभार ग्रहस्तु।।
दानसागर भाग–3 बी

ब्रह्म पर्व स्वयं मे ही एक धर्मशास्त्र कहा गया है। जिसमे श्रुत और स्मार्त धर्म की व्याख्या की गई है।[1] इसमें आए हुए प्रसग बहुआयामी है। अध्याय 1– 46 तक मे जाति और आश्रम के कन्तर्व्य, औरतों के कन्तर्व्य, व्यक्ति, औरत और राजा के अच्छे और बुरे लक्षण, और ब्रह्मा, गणेश, स्कन्द और साँपो की विभिन्न तिथ्यिो पर पूजा की विधि बताई गई है। अध्याय 47– 215 बहुसख्यक सूर्य व्रतो, सूर्य के माहात्म्य, भोजकों की मघो से उत्पन्ति और साम्ब ऋषि द्वारा उन्हे शाक द्वीप से यहाँ लाया जाना और भोज परिवार में लड़कियो की शादी के उल्लेखो से भरा पड़ा है। इसी पर्व मे कुछ श्लोक वाराहमिहिर की बृहत्सहिता से भी लिए गए है किंतु उद्धृत स्रोत का जिक्र नहीं किया गया है।[2] यह मनु का बारम्बार उल्लेख करता है।[3] और मनुस्मृति से मिलते–जुलते कई श्लोक भी इसी पर्व मे मिलते हैं। कही–कही मनु के अनुवाक्यो से लिए हुए विचारो का विस्तृत वर्णन भी मिलता है। अपरार्क और कुल्लूक भट्ट इसे न्यायसगत ठहराते हुए कहते है कि भविष्य पुराण मनुस्मृति के उद्धारणो की स्पष्ट व्याख्या करता है।[4] मनु के लिए यह आभार नही बल्कि केवल भविष्य पुराण की यह अनोखी विशेषता है। दूसरे और पुराणों ने मनु को एक महान व्यक्तित्व बताया है और समान्यतया एक विधिवेन्ता के रूप मे दिए गए उनकी व्यवस्थाओं से सबधित श्लोकों को उद्धृत किया है।[5]

वर्तमान ब्रह्म पर्व के रचना की प्रारभिक तिथियों का निर्धारण बहुत ही कठिन है। निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए हमारे पास पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं। फिर भी अधिक से अधिक इसकी प्रारम्भिक तिथि को स्मृति ग्रन्थो के रचनाकाल के समय तक सुस्थापित किया जा सकता है। इन अध्यायो के परीक्षण और निबन्धो मे उद्धृत अनुमार्गणीय श्लोकों (अनुवाक्यों) से यह स्पष्ट

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 1.71–75
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 130.27 (बृहत्संहिता 56.70)
   भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 132.26 (बृहत्संहिता, अध्याय 53, श्लोक 48, 47ख, 50– 52, 41–42)
   भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 137.4 (बृहत्संहिता 60.14)
3. देखें भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 2.114, 4.23 और 141, 3.10
4. देखे अपरार्क की याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका, पृ0 1071 व 1076, कुल्लूक भट्ट की मनुस्मृति पर टीका, 11, 73, 74, 76 व 101
5. भारतीय संस्कृति पर लेख, भाग–1, 1935, पृ0 587– 614

होता है कि इनकी रचना उस समय हुई जब राशि चक्र के चिह्न और सप्ताह के नाम भली–भाँति ज्ञात थे और परम्परा मे भरपूर प्रयोग किया जाता था।[1] इसमे एक स्थान पर कृत्तिका से भरणी नक्षत्र तक नक्षत्रो के नामो का उल्लेख है (भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, 179.1– 10) और दूसरी जगह अश्विनी से रेवती तक (भविष्य पुराण, ब्राह्मपव्र, 102.47– 71) नक्षत्रो के नामो का उल्लेख है। वह अध्याय जिनमें नक्षत्रो के नाम दिए गए हैं अपने पूर्ववती अध्यायो से जुड़े हैं। इनमे से कुछ निबन्ध लेखको द्वारा प्रयुक्त (श्लोकों) अनुवाक्यों का प्रयोग किया गया है। इसलिए इन अध्यायो की तिथि को बहुत बाद में नहीं रखा जा सकता है। नक्षत्रों के नाम का क्रम और ऋषियो के नामों की लोकप्रियता और सप्ताह के नाम यह दर्शाते है कि स्मृति अध्यायों की रचना की तिथि 500 ई0 के आस– पास रखी जानी चाहिये। क्योंकि लगभग 500 ई0 तक नक्षत्रो का क्रम अश्विनी से लेकर रेवती तक जनजीवन मे सामान्य तौर पर प्रचलित हो चुका था। यदि बृहत्सहिता से जुड़े अध्यायो का समावेश बहुत बाद मे नहीं हुआ तो यह सीमा 550 ई0 के बाद तक रखी जा सकती है। अभी हम इन अध्यायो के वास्तविक लेखन की तिथि के बारे मे आश्वस्त नहीं है। अत हमें इसकी अधिकतम तिथि 500 ई0 को स्वीकार करना होगा।

वर्तमान ब्रह्मपर्व मे स्पष्ट तौर पर कुछ प्रक्षिप्त अध्याय हैं जिन्हे तंत्रवाद से प्रभावित होकर जोड़ा गया, लेकिन इसी शीर्षक से जुड़े तत्रवाद से मुक्त कुछ अध्याय स्पष्ट तौर पर देखे जा सकते है। जिन अध्यायों मे तांत्रिक प्रभाव सुस्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है वे है–

ब्राह्मपर्व, अध्याय 16–18—ब्रह्मा पूजा से संबधित

ब्राह्मपर्व, अध्याय 29–30—गणेश पूजा से संबंधित

ब्राह्मपर्व, अध्याय 49, 199–200, 205–206, 211–215—सूर्य पूजा से संबधित

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 102.76, 179.12– 13, 81.2 तथा 16, 84.1–2, 90.1 और आगे काल विवेक है पृ0 194– 195, 300, 301– 302, 420 व 492

नमें से कुछ अध्यायो की तिथि 1200 ई0 से पूर्व रखी जानी चाहिये। शेष को अन्य पर्वों से ोड़ते समय, जो कि तत्रवाद से प्रभावित है, क्षेपक के रूप मे जोड़ा गया।

भविष्य पुराण के स्मृति से सबंधित सदर्भों के बारे मे और भी तथ्य है, जो कि नेबन्धकारो द्वारा प्रयुक्त किए गए। भविष्य पुराण के कुछ उद्धरणो को तो देखकर ऐसा लगता ़ कि यह स्मृतियो के अध्याय है जिसमें वार्तालापी जनो मे सुमतु और एक राजा (संभवतः ातानीक) जो कुरू कुल से जुड़ा है।[1] कुछ और अन्य अध्यायो मे जिसमे ईश्वर गुह (कार्तिकेय) ो प्रायश्चित के बारे मे बताते हैं।[2] ईश्वर और गुह के बीच का यह वार्तालाप वर्तमान भविष्य ुराण मे नही मिलता है। उद्धृत श्लोकों (अनुवाक्यों) के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते ़ कि प्रायश्चित से संबंधित अध्याय, पराशर, सांख्य वशिष्ठ, मनु और गौतम स्मृतियों से म्बन्धित है, जिनका उल्लेख उद्धृत अनुवाक्यों में भी मिलता है।[3]

---

1. मिताक्षरा, 3 6, अपरार्क की टीका, पृ0 15, 39 व 563, कालविवेक, पृ0 302 व 413

2. अपरार्क की टीका, पृ0 1067– 1069, भवदेव की प्रायश्चित– प्रकरण पृ0 17, कुल्लूक भट्ट की मनुस्मृति पर टीका 11,78

3. अपरार्क की टीका, पृ0 1061– 1062, 1067, 1071 व 1075, कुल्लूक भट्ट की मनुस्मृति पर टीका, 11, 91 और 147

तृतीय अध्याय

भविष्य पुराण में वर्णित भूगोल

भुवन कोष विवरण

किसी देश के समाज, राजनीति और धर्म आदि सस्कृतिक जीवन के अध्ययन के लिए उस देश का भौगोलिक ज्ञान परम प्रयोजनीय होता है। यथार्थ भौगोलिक ज्ञान के अभाव मे किसी विशिष्ट देश के समाज, राजनीति और धर्म आदि सास्कृतिक जीवन का सम्यक परिचय प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। अन्य पुराणो के समान भविष्य पुराण मे भी सप्त द्वीपा एव सप्त सागरा वसुन्धरा का वर्णन पाया जाता है। द्वीपान्तर्गत वर्षों का वर्णन उनकी सीमा और विस्तार आदि के विषय मे इतना ही कहना होगा कि आधुनिक परिमाणो मे समाविष्ट नही हो सकते। इस पुराण मे देश, नगर, वन, पर्वत नद नदी का वर्णन है। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन इस भुवनकोष अध्याय मे किया गया है।

पुराणो मे आख्यात 'लोक' शब्द का प्रयोग 'पृथ्वी' का बोधक माना जाता है। त्रिलोक, चतुर्लोक अथवा सप्तलोक का उल्लेख पुराणों मे प्राय प्रयुक्त किया गया है। ये लोक इस आशय की ओर संकेत करते है कि पुराणो मे भूलोक सम्बधी अनन्त ज्ञानराशि सग्रहीत है। विष्णु एवं कूर्म पुराणो मे ब्रह्माण्ड मे स्थित सात लोको की क्रमिक अवस्थिति, जीवन गति तथा उनकी उपलब्धियो का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है।[1] इन लोको की स्थिति क्रमश एक दूसरे के ऊपर परिकल्पित है, जिसमे भूलोक सबसे नीचे स्थित है।

भविष्य पुराण में उल्लिखित सप्त लोक किञ्चित भिन्नता के साथ उल्लिखित है। एक स्थल पर भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तप लोक तथा सत्य लोक का उल्लेख मिलता है।[2] तो दूसरे स्थल पर महर्लोक को हटाकर सातवाँ ब्रह्मलोक उल्लिखित है।[3] भविष्य पुराण के अनुसार पृथ्वीतल से शतसहस्र (एक लाख) योजन की दूरी पर सूर्य स्थित है।[4] कूर्म पुराण मे सूर्य से भूलोक की दूरी

---

1. कूर्म पुराण, 1.41, दृष्टव्य, विष्णु पु0 (विल्सन का अनुवाद), पृ. 42, नोट 10,तथा पृ- 174.
2. भविष्य पु0, ब्राह्मपर्व, 125.54-61
3. भवि. पु0, मध्यम पर्व, 1.2.14
4. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 125.63

सम्पूर्ण भूलोक की परिधि के बराबर मानी गई है।[1] भविष्य पुराण मे आख्यात है कि भूमि से सात करोड योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित है। इस प्रकार बीस लाख योजन तीनो लोको की ऊँचाई है।[2] अन्यत्र उल्लिखित हे कि ध्रुव लोक के ऊपर कोटि योजन के विस्तार मे महर्लोक स्थित है।[3] महर्लोक से दो करोड की दूरी पर जनलोक स्थित है।[4] कूर्म पुराण मे षष्टम् एवं सप्तम अर्थात् 'तप' एव 'सत्य' लोको को जनलोक से क्रमश तीन एव छ करोड़ योजन और ऊपर अवस्थित माना गया है।[5] भविष्य पुराण के अनुसार ये सात प्रकार के लोक पृथ्वी मे बताए गए है।[6]

भविष्य पुराण मे पाताल लोक का भी उल्लेख मिलता है। तल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और रसातल, ये अधोलोक कहे गए है।[7]

आलोचित पुराण में नवग्रहो का भी उल्लेख किया गया है। सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु, ये नवग्रह बताए गए है।[8] सूर्य एव चन्द्रमा, ये दोनों मण्डलग्रह है। राहु छायाग्रह और शेष तारा ग्रह बताए गए है।[9] चन्द्रमा नक्षत्रो के अधीश्वर के रूप मे उल्लिखित है और सूर्य ग्रहो के राजा के रूप मे।[10] सूर्य अग्नि रूप है और चन्द्रमा जल रूप।[11] बृहस्पति एव शुक्र ये दोनो महाग्रह कहे जाते है।[12] समस्त ग्रहों के नीचे स्तर मे सूर्य विचरते है, उनसे ऊपर चन्द्रमा, उनसे ऊपर नक्षत्र

---

1. कूर्म पु. (कलकत्ता सस्करण), 1 4, पृ.268
2. भवि. पु , ब्राह्मपर्व, 125.64
3. भवि. पु , मध्यम पर्व, 1 3 1
4. वही, 1.3.2
5. कूर्म पु., 1 44, पृ.384
6. भवि. पु , मध्यम पर्व, 1.3.15
7. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 126.15
8. वही, 125.38
9. वही, 125.40
10. वही, 125.41
11. वही, 125.41
12. वही, 125.43

मण्डल, उससे ऊपर बुध, उसके पश्चात शुक्र, उसके अनन्तर भौम, उसके बाद बृहस्पति, फिर शनि अवस्थित है।[1] सूर्य के मण्डल का व्यास हजार योजन उल्लिखित है।[2] इससे दूना विस्तार शनि एव चन्द्रमण्डल के व्यास का है और चन्द्रमण्डल के दूने विस्तार मे नक्षत्र मण्डल का व्यास है।[3] नक्षत्र मण्डल की विस्तृत सख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बृहस्पति का व्यास हो जाता है।[4] बृहस्पति के व्यास की विस्तृत सख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह शुक्र एव मगल का व्यास बन जाता है।[5] इनके व्यास की विस्तृत सख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बुध का व्यास हो जाएगा। बुध के समान ही सभी नक्षत्रो का व्यास है।[6]

काल गणना

आलोचित पुराण मे उल्लिखित है कि कल्प के आदि मे ब्रह्मा इस जगत की सृष्टि करते है और कल्प के अन्त में सहार। उनका जो जागरण अर्थात् दिन का समय है वही कल्प कहा जाता है।[7] भविष्य पुराण मे कल्प की अवधि के प्रमाण का विस्तृत विवरण उपलब्ध है।

अठारह निमेष की एक काष्ठा होती है[8] अर्थात् जितने समय मे अठारह बार पलको का गिरना हो उतने काल को काष्ठा कहते है। तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक क्षण, बारह क्षण का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक दिन रात, तीस दिन रात का एक महीना, दो महीनों की एक ऋतु होती है।[9] तीन ऋतु का एक अयन तथा दो अयनो का एक वर्ष होता है। इस प्रकार सूर्य भगवान के द्वारा दिन रात्रि का काल विभाग होता है।[10]

---

1. भवि पु., ब्राह्मपर्व, 125.45-47
2. वही, 125.49
3. वही, 125.50
4. वही, 125.51
5. वही, 125.51
6. वही, 125.52
7. वही, 2.85
8. वही, 2.86
9. वही, 2.87-88
10. वही, 2.89

पितरो का दिन रात मनुष्यो के एक महीने के बराबर होता है अर्थात् शुक्लपक्ष मे पितरो की रात्रि और कृष्ण पक्ष मे दिन होता है।[1] देवताओ का एक अहोरात्र मनुष्यो के एक वर्ष के बराबर होता है अर्थात् उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात कही जाती है।[2] ब्रह्मा के दिन और रात्रि का प्रकरण इस प्रकार है। सतयुग चार हजार वर्ष माना जाता है। उसके सध्याश के चार सौ वर्ष तथा सध्या के 400 वर्ष मिलाकर इस प्रकार चार हजार आठ सौ दिव्य वर्षो का एक सतयुग होता है।[3] इसी प्रकार त्रेतायुग तीन हजार वर्षो का तथा सध्याश के छ सौ वर्ष कुल तीन हजार छ सौ वर्ष, द्वापर हजार वर्षो का सध्या तथा सध्याश के चार सौ वर्ष, कुल दो हजार चार सौ वर्ष तथा कलियुग एक हजार तथा संध्या और सध्याश के दो सौ वर्ष मिलाकर बारह सौ वर्षो के मान का होता है। ये सब दिव्य वर्ष मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष होते है। यही देवताओ का एक युग कहलाता है।[4]

देवताओ का एक हजार युग होने से ब्रह्मा जी का एक दिन होता है और यही प्रमाण उनकी रात्रि का है।[5]

पूर्व मे बारह हजार दिव्य वर्षो का जो एक दिव्य युग बताया गया है उसी प्रकार एकहत्तर युग का एक मन्वन्तर कहा गया है। ब्रह्मा जी के एक दिन मे चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं।[6]

---

1. भवि. पु.. ब्राह्मपर्व, 2.90-91
2. वही, 2.91-92
3. वही, 2.93-94
4. वही, 2.94-98
5. वही, 2.99-100
6. वही, 2.105-107

दोनों सध्याओं सहित युगों का मान		दिव्य वर्षों में	सौर वर्षों में
1	सतयुग का मान	4,800	17, 28,000
2	त्रेतायुग का मान	3,600	12,96,000
3	द्वापर युग का मान	2,400	8,64,000
4	कलियुग का मान	1,200	4,32,000
	महायुग या एक चतुर्युगी	12,000	43,20,000 वर्ष

ब्रह्मा की कुल आयु सौ वर्ष मानी गई है।[1] जिस समय ब्रह्मा की आयु पचास वर्ष होती है उस समय सृष्टि मे महाप्रलय हो जाती है। जिसके परिणामस्वरूप महाकल्पकी समाप्ति हो जाती है।[2] पुराणो के अनुसार वर्तमान कल्प वराह कल्प है तथा अतीत कल्प पद्म कल्प की संज्ञा से अभिहित है।

सृष्टि वर्णन

आलोचित पुराण में सृष्टि वर्णन अत्यन्त विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। सर्वप्रथम परमात्मा ने जल को उत्पन्न किया तथा उसमे अपने वीर्य रूप शक्ति का आधान किया।[3] इससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सम्पूर्ण जगत उत्पन्न हुआ।[4] वह वीर्य जल मे गिरने से अत्यन्त प्रकाशमान सुवर्ण का अण्ड हो गया।[5] उस अण्ड के मध्य से सृष्टि कर्ता चतुर्मुख लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।[6]

---

1. ओम प्रकाश, पोलिटिकल आइडियाज इन द पुराणाज 1977, पंचनद प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.17
2 मार्कण्डेय पुराण(बिब्लिओथिका इण्डिका सीरीज, कलकत्ता 28),कूर्म पु.,1.5, विष्णु पु., 1.3
3 भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 2.13
4. वही, 2.14
5 वही, 2.15
6. वही, 2.16

नर (भगवान) से जल की उत्पत्ति हुई है इसलिए जल को 'नार' कहते है वह नार जिसका पहले 'अयन' (स्थान) हुआ, उसे नारायण कहते है।[1] ये सद्-सद्रुप अव्यक्त एवं नित्य कारण है। इनसे जिस पुरूष विशेष की सृष्टि हुई वे लोक मे ब्रह्मा के नाम से प्रसिद्ध हुए।[2] ब्रह्मा जी ने दीर्घ काल तक तपस्या की। और उस अण्ड के दो भाग कर दिए। एक भाग से भूमि और दूसरे से आकाश की रचना की।[3] मध्य मे स्वर्ग आठो दिशाओ तथा वरूण का निवास स्थान अर्थात् समुद्र बनाया फिर महत् आदि तत्वो की सृष्टि की तथा सभी प्राणियो की रचना की।[4] परमात्मा ने सर्वप्रथम आकाश को उत्पन्न किया। फिर क्रम से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इन तत्वों की रचना की।[5] सृष्टि के आदि मे ब्रह्मा जी ने उन सबके नाम और कर्म वेदों के निर्देशानुसार ही नियत कर उनकी अलग-अलग संस्थाएँ बना दी।[6] देवताओ के तुषित आदिगण जो तिष्टोमादि सनातन यज्ञ ग्रह नक्षत्र नदी, समुद्र, पर्वत, सम एवं विषम भूमि आदि उत्पन्न कर काल के विभागो (संवत्सर, दिन, मास आदि) और ऋतुओ आदि की रचना की। काम, क्रोध आदि की रचना कर विविध कर्मों के सद्विवेक के लिए धर्म और अधर्म की रचना की।[7] नानाविध प्राणि जगत की सृष्टि कर उनको सुख-दुख, हर्ष-शोक आदि द्वन्दो से संयुक्त किया।[8] जो कर्म जिसने किया था तदनुसार उनकी (इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि) पदों पर नियुक्ति हुई। हिंसा, अहिंसा, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि जीवो का जैसा स्वाभाव था वह वैसे ही उनमे प्रविष्ट हुआ। जैसे - विभिन्न ऋतुओ मे वृक्षों मे पुष्प फलादि उत्पन्न होते है।[9]

---

1. भवि पु., ब्राह्मपर्व, 2 18-19
2. वही, 2.20-21
3. वही, 2.21.22
4. वही, 2.23-27
5. वही, 2.40
6. वही, 2 41-42
7. वही, 2.43-46
8. वही, 2 47
9. वही, 2.48-50

इस लोक की अभिवृद्धि के लिए ब्रह्मा जी ने अपने मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरू से वैश्य और चरणो से शूद्र को उत्पन्न किया। ब्रह्मा जी के चारो मुखो से चार वेद उत्पन्न हुए।[1] पूर्व मुख से ऋग्वेद प्रकट हुआ उसे वशिष्ठ मुनि ने ग्रहण किया। दक्षिण मुख से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ उसे महर्षि याज्ञवल्क्य ने ग्रहण किया। पश्चिम मुख से सामवेद नि सृत हुआ उसे गौतम ऋषि ने धारण किया। उत्तर मुख से अथर्ववेद प्रादुर्भूत हुआ, जिसे लोकपूजित महर्षि शौनक ने ग्रहण किया।[2] ब्रह्मा जी के लोक प्रसिद्ध पचम मुख (ऊर्द्धव मुख) से अट्ठारह पुराण, इतिहास और यमादि स्मृति शास्त्र उत्पन्न हुए।[3] इसके बाद ब्रह्मा जी ने अपनी देह के दो भाग किए। दहिने भाग को पुरूष तथा बाएँ भाग को स्त्री बनाया और उसमे विराट् पुरूष की सृष्टि की।[4] उस विराट् पुरूष के नाना प्रकार की सृष्टि रखने की इच्छा से बहुत काल तक तपस्या की ओर सर्वप्रथम दस ऋषियो को उत्पन्न किया जो प्रजापति कहलाए।[5] उनके नाम है– नारद, भृगु, वशिष्ठ, प्रचेता, पुलह, क्रतु, पुलत्स्य, अत्रि, अंगिरा, मारीच। इसी प्रकार अन्य महातेजस्वी ऋषि भी उत्पन्न हुए।[6] अनन्तर देवता ऋषि, दैत्य और राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, पितर, मनुष्य, नाग, सर्प आदि योनियों के अनेक गण उत्पन्न किए और उनके रहने के स्थानों को बनाया।[7] विद्युत, मेघ, वज्र, इन्द्रधनुष, धूमकेतु, उल्का, निर्घात (बादलों की गडगडाहट) और छोटे–बडे नक्षत्रो को भी उत्पन्न किया।[8] मनुष्य, किन्नर, अनेक प्रकार के मत्स्य, वराह पक्षी, हाथी, घोडे, पशु, मृग, कृमि, कीट, पतग आदि छोटे–बडे जीवो को उत्पन्न किया, इस प्रकार उन भास्कर देव ने त्रिलोकी की रचना की ।[9]

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 2.51.52
2. वही, 2.53–55
3. वही, 2.56–57
4. वही, 2.58–59
5. वही, 2.60
6. वही, 2.61–62
7. वही, 2.63–64
8. वही, 2.65
9. वही, 2.66–68

द्वीप वर्णन

भविष्य पुराण के अनुसार पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन मे है, जो चारो ओर से 'कक्कड' आभूषण की भाँति समुद्र से घिरी हुई है तथा सातों समुद्रो से युक्त है।[1] इस भूलोक मे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौच शाक और सातवाँ पुष्कर नामक प्रधान द्वीप बताए गए हैं।[2] ये सातो महाद्वीप क्रमश सातो समुद्रो द्वारा घिरे हुए है। जिनके नाम है क्षीर सागर, इक्षु सागर, रस सागर, क्षार सागर, घृत सागर, दधि सागर और मधुर जल सागर।[3] एक द्वीप से दूसरा द्वीप महान है, उसी भाँति एक सागर से दूसरा सागर भी।[4]

चूँकि भविष्य पुराण सौर धर्म प्रधान है अतएव आलोचित पुराण के अनुसार सूर्य देव ही जम्बू द्वीप मे विष्णु, शाल्मली द्वीप मे शक्र (इन्द्र), क्रौच द्वीप मे शिव, प्लक्ष द्वीप मे भानु, शाक द्वीप में दिवाकर, पुष्कर द्वीप मे ब्रह्मा एव कुश द्वीप में महेश्वर के रूप मे स्थित है।[5]

वैयाकरण पतंजलि ने सात ही द्वीपो की अधिमान्यता दी है।[6] ब्रह्माण्ड पुराण मे भी सात ही द्वीपों की प्रामाणिकता घोषित की गई है।[7] पुराणान्तरीय प्रतिपादन सात से बढा कर नौ द्वीपो को सिद्ध करता है।[8] महाभारत में तेरह द्वीपों का वर्णन मिलता है।[9] बौद्ध परम्परा मे मुख्यत केवल चार

---

1 भवि. पु , मध्यमपर्व, 1.4 5
2 वही, 1 4.2
3. वही, 1.4.4, भवि. पु , ब्राह्मपर्व, 126.3
4. वही,1.4 3
5. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 139.80-81
6 'सप्तद्वीपा वसुमति।' महाभाष्य (किलहॉर्न), पृ.9
7. 'सप्तद्वीपवती मही।' ब्रह्माण्ड पु., 37.43
8. 'ससागरा नव द्वीपा दत्ता भवति मेदनी।', पद्म पु., स्वर्ग, 7.26
9. त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवा। -आदि., 74.19

द्वीपो की ही अधिमान्यता है। प्रारम्भिक बौद्ध ग्रन्थो मे पृथ्वी पर महाशून्य तथा आकाश मे चक्रवालो की परिकल्पना मिलती है, जिनके योग से पृथ्वी के द्वीपो का सृजन हुआ है। इन चक्रवालों अथवा गोलाकार सृष्टियों (लोक धातुओ) के मध्य मेरू पर्वत स्थित माना गया है। पृथ्वी इन्ही चक्रवालो मे से एक है जो चारो ओर से समुद्र से आवृत है।[1] जिसमे चार महाद्वीप परस्पर समान दूरी पर स्थित कहे गए है। सुमेरू पर्वत के उत्तर मे कुरू अथवा उत्तर कुरू, दक्षिण में जम्बू, पूर्व मे पूर्व विदेह एव पश्चिम मे अपर गोयान द्वीपो का उल्लेख मिलता है।[2] प्रस्तुत स्थल पर विचारणीय है कि कुरू अथवा उत्तर कुरू एव जम्बू द्वीपो के नाम बौद्ध एवं ब्राह्मण ग्रन्थो मे समान रूप से विवृत है परन्तु पूर्व विदेह एव अपर गोयान द्वीपो का उल्लेख पुराणेतिहास ग्रन्थो मे अप्राप्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों द्वीप बौद्ध ग्रन्थकारो के बौद्ध धर्म से प्रभावित क्षेत्रो को सम्मिलित करते हुए वर्तमान नेपाल की तराई के भू- क्षेत्रो को सकेतित करते हैं।[3] अपने मत को स्पष्ट करते हुए डा. दिनेश चन्द्र सरकार का कथन है कि पूर्व एव अपर शब्द जो विदेह और गोयान द्वीपो के विशेषण के रूप मे विवृत है, पूर्व एव पश्चिम महाद्वीपो की ओर सकेत करते है। जिनका प्रयोग बौद्ध ग्रन्थों मे उत्तर कुरू द्वीप में जुडे उत्तर शब्द की अनुरूपता को व्यक्त करते है।[4] वैजयन्ती में पूर्व गन्धिक एव अपरगन्धिक का उल्लेख सम्भवत पूर्व विदेह तथा अपर गोयान द्वीपों के लिए मिलता है।[5]

---

1 'अनन्तानि चक्कवालानि अनन्ता लोक धातुयो भावा
अनन्तेन बुद्धजणेन अवेदि अज्जासि पटिविज्झ।' विसुद्धिमग्ग, 7.44
'सागरेण परिक्खित्त चक्क च परिमण्डलम्।' जातक जिल्द 3, पृ.484,
वही जिल्द 4,पृ 214

2. "पुरत्तो विदेहो परस्स गोयानियै च पच्छतो" विधुर पण्डित जातक, जिल्द 6, पृ.371

3. बुद्धवंश अट्ठकथा, पृ.113
सुमंगल विलासिनी, जिल्द 2, पृ.623 तथा दीपवंश, पृ.16.
विसुद्धिमग्ग जातक के अनुसार प्रत्येक महाद्वीप पाँच-पाँच सौ लघुद्वीपों से व्याप्त है (एक मेकोचेत्थ महाद्वीपो पचसत परित्तदीप परिवारो) द्रष्टव्य, चिल्डर्स, पाली इंग्लिश कोष, 'महाद्वीपों' शब्द मलालसेकर, डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापरनेम्स जम्बूद्वीप आदि तथा दृष्टव्य, सरकार दिनेश चन्द्र, ज्याग्रफी ऑफ ऐंशेन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ.19 एव 20.

4. सरकार दिनेश चन्द्र, वही, पृ.20

5. दृष्टव्य, सरकार दिनेश चन्द्र, कॉस्मोग्राफी एण्ड ज्योग्राफी इन अर्ली इण्डियन लिटरेचर, पृ. 105, नोट, 1 ।

प्राचीन जैन ग्रन्थो मे पृथ्वी एव द्वीप विषयक वर्णन पुराणो मे विवृत सप्तद्वीपात्मक उल्लेखो के अनुरूप है। परन्तु कतिपय जैन पुराणो मे पृथ्वी पर आठ, नौ अथवा उन्नीस द्वीपो का वर्णन मिलता है।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि जैन पुराणो मे कही- कही ब्राह्मण पुराणो की परम्परा यथावत् ग्रहण कर ली गई है। परन्तु परवर्ती जैन पुराणो मे उन्नीस द्वीपो की परिकल्पना मे वर्षों को भी जोड़ लिया है, जो विभिन्न द्वीपों के उपविभाग के रूप मे प्रारम्भिक पुराणों मे आख्यात हैं।

पौराणिक द्वीपों की भौगोलिक स्थिति का सही निर्धारण बडा कठिन है। वस्तुत भुवनकोष से सम्बन्धित पुराणो के वर्णन में मिथकशास्त्र को भी अन्तर्निहित किया गया है जिसके कारण वास्तविक स्थिति का ज्ञान अगम्य हो जाता है। कतिपय भूगोलवेत्ताओ ने पौराणिक प्रतीको एव मन्तव्यो के आधार पर उक्त द्वीपो की स्थिति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है, परन्तु इन निष्कर्षों की प्रामाणिकता विवाद रहित नही है। इन द्वीपो के समीकरण के सन्दर्भ मे अनेक मत प्रतिपादित किए गए है।

जम्बू द्वीप

भविष्य पुराण के अनुसार समस्त द्वीपो के मध्य मे जम्बू द्वीप स्थित है, जिसके मध्य मे महामेरू पर्वत सुशोभित है।[2] इसके दक्षिण में भारतवर्ष, इसके पश्चात् किंपुरूषवर्ष, हरिवर्ष और उसी भाँति अन्य वर्ष भी स्थित है।[3] इसके उत्तर में चपक वर्ष, अश्वहिण्यमय, उत्तर कुरू वर्ष स्थित कहे गए है।[4] प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई नव सहस्र योजन की बताई गई है।[5] इसी द्वीप के मध्य में इलावृत प्रदेश है।[6] मेरू पर्वत जो इस द्वीप के मध्य में स्थित है उसके पूर्व में भद्रा, पूर्व पश्चिम मे केतुमाल नामक दो वर्ष है जिनके मध्य में इलावृत नामक प्रदेश है।[7]

---

1. अली,एस.एम., दि ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणाज, पृ.32
2. भवि.पु., मध्यमपर्व, 1 4 6
3. वही, 1.4.11
4. वही, 1 4.12
5. वही, 1 4.13
6. वही, 1 4.13
7. वही, 1.4 21

जम्बू नामक विशिष्ट वृक्ष से आवृत होने के कारण इसका नामकरण जम्बूद्वीप हुआ है।[1] महाभारत मे इसको 'सुदर्शन द्वीप' नाम से समाख्यात किया गया है। इस संज्ञा से समाख्यात होने का कारण यह है कि इस महाद्वीप को चारो ओर से सुदर्शन नामक विस्तृत जम्बू वृक्ष ने परिवृन्त कर रखा है। उस वनस्पति के विशिष्ट नाम पर ही यह जम्बूद्वीप 'सुदर्शन' नाम से समाख्यात हुआ है।[2] इस द्वीप मे अत्यन्त मधुर रस वाली जम्बू नामक नदी भी प्रवाहित होती है।[3] जिसके जल के पान से मनुष्य शोक रहित, सभी भाँति की दुर्गन्ध से हीन होकर कभी बूढे नही होते, न उनकी इन्द्रियाँ कभी क्षीण होती है तथा वे सभी मनुष्य स्वच्छ मन वाले होते हैं।[4]

अधिकांश पुराणो मे भारतवर्ष एव उनके नव द्वीपो को जम्बूद्वीप के दक्षिण मे स्थित बताया गया है। ऐसी स्थिति मे भारतवर्ष के उत्तरी भूक्षेत्रों मे जम्बू द्वीप की स्थिति परिकल्पित की जा सकती है जिसमे इस द्वीप के अन्य विभाग (वर्ष) स्थित थे। कतिपय विद्वानों ने कुरुवर्ष का समीकरण टॉलमी द्वारा उद्धृत 'ओवारों कोराई' से करने की चेष्टा की है जिसे वर्तमान चीनी तुर्किस्तान को 'तारिम–घाटी' का क्षेत्र माना जाता है।[5] चीन के जातिगत प्रतीक सफेद ड्रेगन के आधार पर भद्राश्व वर्ष को चीन से समीकृत मानने की बात भी की जाती है।[6] ड्रेगन शब्द का अर्थ अंग्रजी शब्द कोष में मुँह से ज्वाला पैदा करने वाला मकर या सर्प मिलता है, जो प्राय घोटक–मुख अर्थात् घोड़े के मुख के सदृश बताया जाता है। अत. भद्राश्व वर्ष अर्थात् घोटक मुख के देश का चीन देश के साथ समीकरण पूर्णतया यौक्तिक प्रतीत होता है। केतुमाल वर्ष को मेरू अथवा मेरू पर्वत के चतुर्दिक इलावृत वर्ष के पश्चिम में अवस्थित कहा गया है। इस क्षेत्र का समीकरण वर्तमान आक्सस अथवा वंक्षु नदी के निकटवर्ती भूक्षेत्रों से किया

---

1. भवि. पु., मध्यमपर्व,1.4.17
2. 'सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः समन्तत ।
   तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पते·।'
   –भीष्म, 5.13–16, 7.19–22
3. भवि.पु., मध्यमपर्व, 1.4.18
4. वही, 1.4.19
5. बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ.331
6. बलदेव उपाध्याय, पूर्वोद्धृत, पृ.331

जाता है। यह नदी आमू दरिया (वर्तमान अराल सागर) मे जाकर मिलती थी। हिरण्य वर्ष को श्वेत पर्वत के उत्तर मे स्थित क्षेत्र कहा गया है। इसे रम्यक वर्ष की उत्तरी सीमा-क्षेत्र आख्यात किया गया है। इसकी पहचान एशिया महाद्वीप के बदक्शाँ प्रदेश से की जाती है। किंपुरूवर्ष की स्थिति हिमवत पर्वत के उत्तर, हेमकूट पर्वत के दक्षिण तथा हरिवर्ष के दक्षिण थी। इस वर्ष की पहचान हिमालय के अन्तर्वर्ती चतुर्दिक क्षेत्रो से की जा सकती है जो परम्परया किन्नरो का देश माना जाता है।

रम्यक वर्ष[1] को नील पर्वत तथा इलावृत वर्ष के उत्तर में अवस्थित कहा गया है। इसकी पहचान पूर्वी एशिया के रम्नि या रमि द्वीपों से की जाती है।[2] यदि उपरोक्त वर्षों के वर्तमान समीकरण को ध्यान मे रखकर जम्बूद्वीप के विस्तार पर विचार किया जाए तब हम विश्व के मानचित्र पर मध्य एशिया से लेकर सुदूर पूर्व मे चीन तक तथा दक्षिण में भारतवर्ष तक के भूक्षेत्रो को इसके अन्तर्गत अवस्थित मान सकते है।

प्लक्ष द्वीप

आलोचित पुराण में प्लक्ष द्वीप द्वितीय स्थान पर उल्लिखित है।[3] वामन पुराण में प्लक्ष द्वीप को जम्बू द्वीप से चार गुना अधिक विस्तृत बताया गया है।[4] इसमें सात पहाड़ियाँ थीं, जिनका नाम गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभी, सोमक, सुमनस, वैभ्राज मिलता है। जिनसे प्रवहमान सात नदियाँ क्रमश अनुतप्त, शिखी, बिपाशा, त्रिदिवा, क्रुमु, अमृत और सुकृता आख्यात मिलती हैं।[5] क्रुमु के स्थान पर किन्ही-किन्ही पुराणों मे 'कुभा' पाठ मिलता है।[6] डा० सरकार के अनुसार 'क्रुमु' एवं कुभा क्रमश कुर्रम और काबुल नदियों का स्मरण दिलाते है। गोमेद पर्वत टालमी द्वारा उल्लिखित कोमेद्य का स्मरण दिलाता है, जो मध्य

---

1. वामन पु0, 13.3, 4.5
2. द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 331
3. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.4.2
4. वामन पु0, 11.34.35
5. सरकार, दिनेश चन्द्र, ज्योग्राफी ऑफ ऐन्शेण्ट मिडीवल इण्डिया, पृ0 49
6. राय चौधरी, हेम चन्द्र पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐन्शेण्ट इण्डिया, पृ0 69

एशिया में स्थित था।[1] एस0 एम0 अली ने प्लक्ष अर्थात् पारवर वृक्ष युक्त क्षेत्र के आधार पर भूमध्य सागर के तटवर्ती देशो से युक्त भूक्षेत्रों को प्लक्ष द्वीप से समीकृत किया है।[2] विलफोर्ड[3] ने इटली एव उसके आस-पास के विशाल भूक्षेत्र से तथा वी0 वी0 अय्यर[4] ने यूनान तथा आस-पास के द्वीपो से इस द्वीप का समीकरण किया है।

शाल्मल द्वीप

भविष्य पुराण मे तीसरे स्थान पर शाल्मल द्वीप का उल्लेख मिलता है।[5] वामन पुराण में शाल्मल द्वीप को इक्षु-रस सागर से द्विगुण परिमाण वाला कहा गया है।[6] एक महान शान्तिदायक शाल्मल वृक्ष के कारण इस तृतीय द्वीप की सज्ञा 'शाल्मलद्वीप' हुई। इसकी सात पहाड़ियो के नाम है कुमुद, उन्नत, बलाहक, द्रोण, कड्.क, महिष और ककुद्मान। प्रधान नदियाँ इस प्रकार है- योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचिनी और निवृन्ति।[7] एस. एम. अली के अनुसार इस द्वीप को जलवायु, प्राकृतिक बनावट तथा वृक्षों की प्राप्ति के आधार पर मेडागास्कर से लेकर उष्णकटिबन्धीय अफ्रीका महाद्वीप के भू-भागों से समीकृत किया जा सकता है।[8] इसी क्षेत्र को पौराणिक 'हरिन्' तथा अन्य प्राचीन लेखकों ने शख द्वीप के नाम से भी सम्बोधित किया है।

कुशद्वीप

आलोचित पुराण में चौथे स्थान पर कुशद्वीप का उल्लेख मिलता है।[9] कुश देश तथा कुशीय लोगो

---

1. डी.सी. सरकार, ज्योग्राफी ऑफ ऐंश्येण्ट मेडिवल इण्डिया, पृ. 49
2. एस.एम. अली, दि ज्योग्राफी ऑफ द पुराणाज, पृ. 41
3. दृष्टव्य-एशियाटिक रिसर्वेज, भाग-8, पृ. 300
4. क्वार्टर्ली जर्नल आफ मिथिकल सेसाएटी भाग-15, पृ. 62-75
5. भवि. पु., मध्यम पर्व, 1.4.2
6. वामन पु., 11.36
7. दृष्टव्य, डा0 सर्वानन्द पाठक- विष्णु पुराण का भारत, पृ. 45
8. एस.एम. अली, दि ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणाज, पृ. 45
9. भवि. पु., मध्यम पर्व, 1.4.2

का उल्लेख अनेक प्राचीन फारसी लेखो में मिलता है।[1] कुश देश की पहचान को लेकर विद्वानो मे मतभेद है। कतिपय विद्वान ईथोपिया को तथा कुछ लोग मिस्र देश के मध्य भाग को कुश देश मानते हैं। डा0 बलदेव उपाध्याय ने इस देश को अफ्रीका के पूर्वोत्तर भाग मे अवस्थित मानते हुए इसे कुश द्वीप से समीकृत किया है।[2] एस.एम अली मत्स्य पुराण[3] में विवृत इस द्वीप के कुश पौधे के साक्ष्य को प्रस्तुत करते हुए इसे घास वाले भू-क्षेत्र के रूप मे स्वीकार किया है। उन्होने जलवायु, प्राकृतिक बनावट एव वनस्पति के आधार पर इस द्वीप को ईरान से ईथोपिया तक विस्तृत देशो से समीकृत किया है।[4]

क्रौंच द्वीप

आलोचित पुराण मे क्रौच द्वीप पाँचवें स्थान पर उल्लिखित है।[5] वामन पुराण मे क्रौंच द्वीप का परिमाण दधिसागर से दो गुना कहा गया है।[6] पुराणों में इस द्वीप की वनस्पति तथा जलवायु आदि से सम्बन्धित विशेषताओ का उल्लेख अनुपलब्ध है, परन्तु तैन्तिरीय आरण्यक[7] मे क्रौंच नामक पर्वत का उल्लेख मिलता है, जिससे इस द्वीप की स्थिति भारत के सन्निकट किसी भू-भाग में अनुमेय है। महाभारत[8] में इसे मेरू पर्वत के पश्चिम तथा एक अन्य स्थल पर[9] इसके उत्तर स्थित माना गया है। रामायण[10] तथा बृहत्संहिता[11] में इसे मेरू पर्वत के उत्तर अवस्थित कहा गया है। अतः क्रौच द्वीप की स्थिति जम्बू द्वीप के उत्तर के उत्तर पश्चिम में कृष्ण सागर के तटवर्ती क्षेत्र तक अवस्थित मानी जा सकती है।[12] काला सागर ही सम्भवत. दधि सागर था जिससे इस द्वीप की सीमाएँ परिवेष्ठित थी।

---

1 दृष्टव्य, दारयवउश् का हमदम लेख
2. बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ.324
3. मत्स्य पुराण, 45.77
4. एस.एम.अली, पूर्वोद्धृत, पृ.43
5. भवि.पु., मध्यमपर्व, 1.4.2
6. वामन पु., 11.38
7. तैन्तरीय आरण्यक, 1.31.2
8. महाभारत, 12.14.21-25
9. महाभारत, 12.14.12
10. रामायण, 4.43.25
11. बृहत्संहिता, 14.24, मार्कण्डेय पु0, 58.23 तथा बृहत्संहिता, 14.13 मे क्रौंच पर्वत को दक्षिण में स्थित कहा है।
12. एस.एम.अली, पूर्वोद्धृत, पृ.46

शाक द्वीप

आलोचित पुराण मे उल्लेख आता है कि समुद्र पार के प्रदेश को जो जम्बूद्वीप से भी दूर है और क्षीरसागर से घिरा है, शाकद्वीप कहा जाता है।[1] विद्वानों ने कभी काल्पनिक द्वीप[2] कभी तार्कीय स्तर[3] तथा कभी इसे भौमिकीय निर्माण काल के कारण पृथ्वी के भूपटल के बदलावों के रूप में स्वीकार करने की चेष्टा की है। डा. एस.एम. अली ने जलवायु एवं वनस्पति के द्वारा किसी क्षेत्र विशेष के ज्ञान का आधार मानकर पौराणिक द्वीपों की स्थिति का विवेचन किया है।[4] उन्होंने इस आधार पर शाकद्वीप को एशिया महाद्वीप के मानसून वाले भू-भाग, जहाँ शाल वृक्ष पाये जाते हैं अर्थात् बर्मा, मलाया, श्याम, इण्डोचीन तथा दक्षिण-चीन देशो से समीकृत किया है। इस प्रकार बंगाल की खाड़ी से लेकर चीन सागर की जलराशि को क्षीर सागर से समीकृत किया जा सकता है।[5] इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि महाभारत, मत्स्य, वाराह, पद्म एव स्कन्द पुराणों तथा 'सिद्धान्त शिरोमणि' मे शाक द्वीप का जम्बूद्वीप के ठीक बाद वर्णन मिलता है। डा. बलदेव उपाध्याय ने यूरेशिया द्वीप से लेकर अल्ताई पर्वत श्रेणियों तक तथा ईरान के पूर्वी भाग तक के विस्तृत क्षेत्र को शाक द्वीप से समीकृत किया है। इस प्रकार कैस्पियन सागर, जो किसी समय कृष्ण सागर के उत्तरी भाग तक फैले आर्कटिक सागर से जुड़ता था, को पौराणिक क्षीर सागर से समीकृत किया जा सकता है।[6]

पुष्कर द्वीप

आलोचित पुराण मे सबसे अन्त में पुष्कर द्वीप का उल्लेख आता है।[7] वामन पुराण में पुष्कर द्वीप को भयकर तथा पैशाचिक धर्मों के आश्रित कहा गया है।[8] इसे पवित्रता रहित तथा इक्कीस नरकों वाला क्षेत्र कहा गया है। एस.एम. अली ने प्राप्त पौराणिक विवरणों के आधार पर इसका समीकरण स्केण्डिनेवियन द्वीप, फिनलैण्ड, उत्तरी यूरोपीय देश, रूस तथा साइबेरिया तक विस्तृत भू-क्षेत्र से किया है।[9]

---

1. भवि.पु., ब्राह्मपर्व, 139.71-79
2. वी. केनेडी, रिसर्चेज टु दि नेचर ऐण्ड ऐफिनिटी ऑफ एन्शेण्ट हिन्दू माइथॉलोजी, पृ.407
   बार्थ, दि रेलिजन्स आफ इण्डिया, पृ.431-2
   हैवेल, दि सोल ऑफ इण्डिया, पृ.533-34 एवं 546
3. वारेन, डब्लू.एफ., शाक द्वीप इन मिथिकल वर्ल्ड व्यू ऑफ इण्डिया, जे.ए.ओ.एस., 1920 जिल्द 40, पृ.356-58
4. एस.एम.अली, दि ज्योग्राफी ऑफ पुराणाज, पृ.39
5. एस.एम. अली, पूर्वोद्धृत,पृ.40
6. बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श,पृ.327-28
7. भवि. पु.,मध्यमपर्व, 1.4.2
8. वामन पुराण, 11.46-50

पर्वत

पुराणो मे तीन प्रकार की पर्वत श्रेणियाँ वर्णित हैं- (1) कुल पर्वत (2) वर्ष पर्वत (3) विष्कम्भक पर्वत। कुल पर्वत भारतवर्ष के भीतर ही मुख्य पर्वत श्रेणियों को निर्दिष्ट करता है। यह सख्या मे सात है। सब पुराणों में यह सूची प्राय एक ही प्रकार है (1) महेन्द्र (2) मलय (3) सह्य (4) शक्तिमान (शुक्तिमान) (5) ऋषभ (6) विन्ध्य (7) पारियात्र। वर्ष पर्वत उन पर्वतों को कहते है, जो एक वर्ष को दूसरे वर्ष से अलग करते है। जम्बूद्वीप में सात वर्ष पर्वत है, जो उसके सातों वर्षों को एक दूसरे से अलग करते है। विष्कम्भक पर्वत या मर्यादा पर्वत सख्या मे चार है, जो मध्य मे रहने वाले सुमेरु पर्वत से चारो दिशाओ में फैले हुए है।

सुमेरु

जम्बूद्वीप के मध्य मे सुवर्णमय प्रभापूर्ण महामेरू पर्वत सुशोभित है।[1] इसकी ऊपर की ऊँचाई चौरासी सहस्र योजन की है। पृथ्वी के भीतर सोलह योजन और ऊपर की चौड़ाई बत्तीस योजन की बताई गई है। इसका मूल भाग पृथ्वी पर सोलह सहस्र योजन में विस्तृत है। पृथ्वी मे सर्वप्रधान यही पर्वत बताया गया है।[2] इसके चतुर्दिक चार विष्कम्भक पर्वत हैं। पूर्व मे मन्दराचल, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में विपुल एव उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत स्थित है।[3] मार्कण्डेय पुराण के अनुसार मन्दर पर्वत पर कदम्ब, गन्धमादन पर जम्बू, विपुल पर पीपल और सुपार्श्व पर वटवृक्ष विराजमान हैं।[4]

भागवत पुराण में गन्धमादन और विपुल दो पर्वतों के स्थान पर मेरुमन्दर और कुमुद दो पर्वतों का नाम आया है।[5]

---

1 भवि पु., मध्यम पर्व, 1.4.6
2. वही,1 4.7-8
3. वही, 1.4.15-16
4. 'कदम्बो मन्दरे केतुर्जम्बु वै गन्धमादने।
   विपुले च तथाश्वत्थः सुपार्श्वे च वटो महान्।।'
   मार्कण्डेय पुराण, 54.20-21
5. 'मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इति।' भागवत पुराण, 5.6.11-12

आलोचित पुराण मे विभिन्न वर्षों के विभाजक हिमवान, हेमकूट, नील, श्वेत और श्रृगी- इन छ वर्ष पर्वतो का उल्लेख है।[1]

गन्धमादन पर्वत

भविष्य पुराण के अनुसार सुमेरू पर्वत के दक्षिण मे गन्धमादन पर्वत स्थित है।[2] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि शंकर ने सूर्य देव की आराधना के लिए गन्धमादन पर्वत की ओर प्रस्थान किया।[3] कालीदास के अनुसार यह कैलाश का ही एक भाग है।[4] यह कैलाश का दक्षिण भाग है, यह संकेत कालिका पुराण देता है।[5] बद्रिकाश्रम इसी पर्वत के ऊपर स्थित बताया जाता है। अलकनन्दा इसी पर्वत से निकलती है। अत इसकी स्थिति गढवाल मे है।[6] रामेश्वर की ऊँची भूमि का नाम गन्धमादन पर्वत था। अगस्त्य ऋषि इसी पर्वत पर पधारे थे और उनके शिष्य सुतीक्ष्ण मुनि ने बहुत समय तक यहाँ पर तप किया था। शैखमुनि ने भी विष्णु की प्रसन्नता के लिए यहाँ तप किया था। पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा ने इस पर्वत पर 88 हजार वर्ष पर्यन्त कई यज्ञ किए थे और सूर्य भगवान ने यहाँ चक्रतीर्थ में स्नान किया था। सीता की अग्नि परीक्षा इसी पर्वत के अग्नितीर्थ मे हुई थी।

मन्दर (मन्दराचल)पर्वत

आलोचित पुराण के अनुसार सुमेरू के पूर्व में मन्दराचल पर्वत स्थित है।[7] पुराणों मे इसी पर्वत से सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। सती के साथ महेश्वर इस पर्वत पर रहते थे तथा रमण करते

---

1. भवि. पु., मध्यम पर्व, 1.4.19 और ब्राह्मपर्व, 126.3-4
2. भवि. पु. मध्यमपर्व, 1.4 15-16
3. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 155.24
4. विक्रमोर्वशी, अध्याय-4
5. कालिका पु0, अध्याय-82
6. मार्कण्डेय पु., अध्याय-57
7. भवि. पु., मध्यमपर्व, 1.4.15-16

थे। क्षीरसागर का मन्थन करने के लिए इस पर्वत को प्रयोग मे लाया गया था।[1] महेश्वर पृथूदक तीर्थ मे स्नान कर पाप से विमुक्त होकर नन्दी गणो एव वाहन के सहित महापर्वत मन्दर पर आए थे।[2] पार्वती के साथ विवाह कर शंकर भूतगणो के साथ मन्दराचल पर आ गए तथा वहीं रहने लगे।[3] वामन भगवान के दोनो उरूओ मे मेरू और मन्दर पर्वत विद्यमान था।[4] यह मेरू के पूर्व में भागलपुर के पास एक छोटा सा पहाड है। कई पुराणो मे बद्रिकाश्रम, जहाँ नर नारायण ने तपस्या की थी, मदर पर्वत स्थित बताया जाता है। इस प्रकार यह हिमालय का ही एक भाग है। परन्तु महाभारत के अनुसार यह बद्रिकाश्रम के उत्तर मे स्थित बताया जाता है।[5] इसी स्थान पर श्री वासुपूज्य स्वामी (बारहवें तीर्थंकर) को मोक्ष प्राप्त हुआ था। यह पहाड़ भागलपुर से 32 मील दक्षिण की ओर और 700 फीट ऊँचा है। इसके ऊपर दो प्राचीन मन्दिर है।

निषध पर्वत

भविष्य पुराण मे निषध पर्वत[6] का उल्लेख आता है जो वर्ष पर्वत है। अलबेरूनी[7] का कथन है कि इस पर्वत के पास विष्णु एक सर है, जहाँ से सरस्वती जाती है। इससे प्रकट होता है कि यह हिमालय श्रेणी का एक भाग है।

हेमकूट पर्वत

आलोचित पुराण के अनुसार यह भी वर्ष पर्वत है।[8] इसे हेम पर्वत भी कहते हैं। यह कैलाश पर्वत है, जो तिब्बत के दक्षिण-पश्चिम में है।

---

1. वामन पु., 7.10
2. वही, 25.74
3. वही, 27.61-62
4. वही, 65.19
5. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 162, 164
6. भवि. पु., मध्यमपर्व 1.4.9 और ब्राह्मपर्व, 126.3-4
7. (अलबेरूनी) -जिल्द-2, पृ0 142
8. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 126.3-4, मध्यमपर्व, 1.4.9

चित्रकूट पर्वत

भविष्य पुराण में लिखा है कि यह पर्वत अनेक धातुओं से विभूषित है।[1] बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध चित्रकूट के पास कामद गिरि इसी का वर्तमान नाम है। इस पर्वत से उत्तर की ओर मन्दाकिनी नदी बहती है। इस पर्वत के ऊपर पर्णकुटी मे राम लक्ष्मण निवास करते थे।[2] यह पर्वत बाँदा जिले मे प्रयाग से दक्षिण–पश्चिम 65 मील की दूरी पर है। मेघदूत ने इसे रामगिरि कहा है।

हिमालय

हिमालय की गणना वर्ष पर्वतो मे हुई है।[3] वामन पुराण में इसे पर्वतों मे श्रेष्ठ कहा है।[4] यह भारतवर्ष के उत्तर में है। आधुनिक विद्वानो के मत से हिमालय पर्वत की लम्बाई–पूर्व से पश्चिम तक सोलह सौ मील है।[5]

गोवर्धन पर्वत

भविष्य पुराण में लिखा है कि राजा ध्रुव ने, जो पाँच वर्ष की अवस्था में ही माता–पिता द्वारा परित्यक्त किए गए थे, नारद के उपदेश से गोवर्धन पर्वत की यात्रा की।[6] यह मथुरा जिले में वृन्दावन से 18 मील दूर गोवर्धन पर्वत से भिन्न नहीं है। महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण ने इस पर्वत को अपने कनिष्ठ अँगुली के ऊपर छाते की तरह उठा लिया था और इन्द्र के द्वारा की गई विपुल वृष्टि से गोपों और ग्वालो को बचाया था।[7]

---

1. भवि. पु., प्रतिसर्गपर्व, 2.35.1
2. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, सर्ग 92
3. भवि. पु., मध्यमपर्व, 1.4.15–16
4. वामन पु, सरोमहात्म्य, 26.12
5. डा. राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग।
6. भवि. पु., प्रतिसर्ग पर्व, 4.17.42–43
7. महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय 129

नदियों का वर्णन

भारत के प्राकृतिक विभाजन मे पर्वतो के समान ही नदनदियो की उपयोगिता है। भारतीय संस्कृति मे नदनदियो का स्थान धार्मिक, राजनीतिक तथा व्यापारिक आदि दृष्टियो से प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण रहा है। इन्ही के कारण भारत भूमि आदि काल से शस्य श्यामला सुषमासम्पन्ना एव समृद्धिशालिनी रही है। आलोचित पुराण मे निम्नलिखित नदियो का उल्लेख प्राप्त होता है: –

कृष्णा नदी

भविष्य पुराण में इसी नदी का उल्लेख मात्र किया गया है।[1] वामन पुराण के अनुसार यह महानदी सह्य पर्वत से निकलती है।[2] पुराणों में कृष्णवेणा के नाम से प्रख्यात होने वाली नदी यही है।[3] इसी नदी को ब्रह्म पुराण कृष्णवेणी नाम से उल्लिखित करता है।[4] यह दक्षिण भारत की प्रख्यात नदी है, जो पश्चिमी घाट से निकल कर दक्षिण के पठार मे बहती हुई बंगाल की खाडी मे गिरती है।

कौशिकी

इस नदी का भी भविष्य पुराण मे मात्र नामोल्लेख किया गया है।[5] वामन पुराण मे इस नदी का उद्‌गम हिमालय पर्वत कहा गया है।[6] ब्रह्म पुराण में इसे हिमालय से निस्सृत नदी बताया गया है।[7] वायु पुराण में तथा अन्य पुराणों मे देवी सत्यवती को कौशिकी से सम्बद्ध आख्यात किया गया है।[8] स्कन्द पुराण

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55 24–31
2. वामन पु., 13.20
3. भागवत पु., 5.19.18, मार्कण्डेय पु., 57.26–27, ब्रह्म पु., 27.35
4. ब्रह्म पु., 19.12
5. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24–31
6. वामन पु., 13.22
7. ब्रह्म पु., 7.27
8. वायु पु., 91.88, 89

मे इस नदी को अवन्ति क्षेत्र मे प्रवाहित बताया गया है।[1] मत्स्य पुराण मे नर्मदा क्षेत्र मे कौशिकी तीर्थ का भी उल्लेख मिलता है। श्री विमलचरण लाहा के अनुसार इस नदी का समीकरण आधुनिक कोशी (कुशी) नदी से किया जा सकता है, जो बिहार प्रान्त में गगा नदी में सगम करती है।[2]

कावेरी [3]

यह नदी सह्य पर्वत से निकलती है।[4] वायु पुराण भी इसी का समर्थन करता है।[5] यह श्राद्ध कार्य के लिए पवित्र मानी जाती है। इस तथ्य का उल्लेख अन्यान्य पुराणो में भी प्राप्त होता है।[6] यह आधुनिक कावेरी नदी है जो पश्चिमी घाट से निकलती है और दक्षिण पूर्व मे कर्नाटक प्रान्त से होती हुई तजोर जिले मे बगाल की खाडी मे प्रविष्ट हो जाती है।[7]

गंगा

भविष्य पुराण में गंगा नदी को वैष्णवी नदी भी कहा गया है।[8] इसके तट पर नरनारायण ने तपस्या की थी।[9] यह कुरुक्षेत्र की प्रधान नदी है। इसमे स्नान करने से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो

---

1. स्कन्द पु., अवन्ति खण्ड, 61.11
2. दृष्टव्य, विमल चरण लाहा, दि रीवर्स ऑफ इण्डिया, पृ. 226
3. भवि पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31
4. वामन पु., 13.31
5. वायु पु. 77.28, 91.59
6. कालिका पु., 24.130- 135, भागवत पु., 5.19.8, 7.13.12, 10.79.14 और 11.5.40
7. दृष्टव्य, विमल चरण लाहा, पूर्वोद्धृत, पृ. 58
8. भवि. पु., ब्राह्मपर्व 19.33, 47.26
9. वामन पु., 6.4

है, किन्तु ब्रह्म पुराण मे इसे ऋक्ष पर्वत से प्रवाहित बताया है। इसकी पहचान आधुनिक ताप्ती नदी से की जाती है, जो मध्य प्रदेश के बेतुल जनपद के समीपवर्ती क्षेत्र से निकल कर अरब सागर मे मिलती है।

देविका [1]

इसका उल्लेख अनेक पुराणों में प्राप्त होता है।[2] यह ऋक्ष पर्वत से निकलती है। विमल चरण लाहा इसका वर्तमान नाम 'रीम' नदी बताते है।[3] पार्जिटर के अनुसार यह रावी नदी की सहायक 'दीग' नदी से अभिन्न है। सरयू की दक्षिण धारा को भी देविका कहते है। कुछ विद्वानों की सम्मति में पुराणो मे उल्लिखित देविका नदी इस नदी से भिन्न नहीं है।

नर्मदा[4]

यह नदी ऋक्ष पर्वत से निकली है[5] इसके तट पर अमुलीश्वर तीर्थ है।[6] प्रह्लाद ने इस नदी मे स्नान किया था।[7] वायु पुराण के अनुसार यह दक्षिणापथ में प्रवाहित है।[8] इस नदी का और इसके तीर्थों का गौरव मत्स्य, भागवत और विष्णु पुराणो में वर्णित है।[9] यह मध्य और पश्चिमी भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदी है। इसका उद्गम अमरकण्टक के निकट मैकाल क्षेत्र से होता है तथा अन्तत अरब सागर में मिल जाती है।[10] काली दास ने भी रघुवंश में इसका वर्णन किया है।[11]

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31, 180.1-4
2. वायु पु., 45.96, 109.17, 112.30, मत्स्य पु. 22.20, ब्रह्माण्ड पु., 2.16.25
3. विमल चरण लाहा, दि रीवर्स ऑफ इण्डिया,
4. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31, 180.1-4
5. वामन पु., 13.25
6. वही, 7.26
7. वही, 57.47
8. वायु पु., 73.46-50
9. पुराण इण्डेक्स, भाग-2, पृ. 211
10. विमल चरण लाहा, पूर्वोद्धृत, पृ.324
11. रघुवंश, 5.42-46

पयोष्णी[1]

यह नदी विन्ध्य पर्वत से निकली है। इसके तट पर पुष्कर नाम का मन्दिर है। यहाँ भगवान वामन अखण्ड रूप में विद्यमान है, जिसका दर्शन प्रहलाद ने इस नदी में स्नान कर किया था।[2] 1- वैन गंगा मध्य[3] प्रदेश में 2- पूर्ति त्रावणकोर मे 3- पूर्णा तापी की सहायक 4- तापी- आजकल पयोष्णी नदी के ये चार रूप बताए जाते है।

मन्दाकिनी[4]

यह नदी ऋक्ष पर्वत से निकली है।[5] यह कुरुक्षेत्र की पवित्र नदी है।[6] राजा ज्योष्मान् ने पुत्र की कामना से इस नदी के तट पर तपस्या की थी।[7] वायु पुराण, वामन पुराण के इस कथन का समर्थन करता है। बुन्देलखण्ड मे पयसुण्डी की एक छोटी सहायक नदी चित्रकूट से बहने वाली मन्दाकिनी नाम से प्रसिद्ध है। भागवत पुराण[8] तथा वायु पुराण[9] के अनुसार मन्दाकिनी गंगा का ही नाम है। वर्तमान पश्चिमी काली नदी जो गढ़वाल जिले मे केदार की पहाड़ियों से प्रवाहित होती है, के साथ इसे समीकृत किया जा सकता है।[10]

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31
2. वामन पु., 63.7, 50.10-11
3. दृष्टव्य, दिनेश चन्द्र सरकार, ज्योग्राफी ऑफ एंशिएण्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया, पृ. 57
4. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 180.1-4
5. वामन पु., 13.25
6. वही, सरोमाहात्म्य, 13.7
7. वामन पु., 46.44
8. भागवत पु., 5.19.18
9. वायु पु., 45.99
10. विमल चरण लाहा, हिस्टॉरिकल ज्योग्राफी ऑफ एंशिएण्ट इण्डिया, पृ. 126 और 130

महानद शोण[1]

यह नदी ऋक्ष पर्वत से निकली है।[2] यहाँ पर वामन भगवान रुक्म कवच रूप में विद्यमान हैं, जिनका पूजन प्रहलाद ने इस नदी में स्नान कर किया था।[3] वायु पुराण इसका समर्थन करता है। यह आजकल की प्रसिद्ध सोन नदी है, जो मध्य प्रदेश की पहाड़ियो से निकल कर पटना के पास गगा मे गिरती है।

यमुना

भविष्य पुराण मे इसे सौरी नदी भी कहा गया है।[4] आलोचित पुराण मे इसे सूर्य की पुत्री कहा गया है।[5] यह भारत की प्रख्यात नदी ऋग्वेद[6], अथर्ववेद[7] तथा पुराणो मे बहुशः वर्णित है। यह उत्तर प्रदेश में यमनोत्री से निकलती है और प्रयाग में गगा मे मिलती है।

वरूणा[8]

प्रयाग में स्थित योगशायी के दक्षिण चरण से यह नदी निकलती है। यह सर्वपापहारिणी तथा पवित्र नदी है।[9] यह गोदावरी की सहायक नदी है।

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 180.1-4
2. वामन पु., 13.25
3. वही, 63.24, 57.60
4. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 47 26
5. वही, ब्राह्मपर्व, 47.4
6. ऋग्वेद, 10.75, 5.52-17, 7 18.19
7. अथर्ववेद, 4.9.10
8. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 180.1-4
9. वामन पु., 3.27

वितस्ता[1]

यह नदी हिमालय से निकली है।[2] इसकी पहचान आधुनिक झेलम नदी से की जाती है।[3]

विपाशा[4]

यह नदी ऋक्ष पर्वत से निकली है।[5] इसके तट पर कुलिन्द लोग निवास करते थे इसका उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में भी प्राप्त होता है।[6] श्री विमल चरण लाहा ने इसका समीकरण आधुनिक व्यास नदी से किया है।[7]

वेण्या[8]

यह महानदी सह्य पर्वत से निकली है।[9] यह मध्य प्रदेश की वैनगंगा है, जो गोदावरी मे मिलती है।

शिवा[10]

वामन पुराण के अनुसार यह नदी विन्ध्य पर्वत से निकली है।[11] इसकी पहचान नहीं हो सकी है।

---

1. भवि पु , ब्राह्मपर्व, 55.24-31
2. वामन पु , 13 20
3. दृष्टव्य, पौराणिक कथा-कोष, पृ. 509
4. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31
5. वामन पु., 13.26
6. मार्कण्डेय पु.,57.18
7 विमल चरण लाहा, दि रीवर्स ऑफ इण्डिया, पृ. 134
8. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24- 31
9. वामन पु., 13.30
10. भवि. पु. ब्राह्मपर्व, 55.24- 31
11. वामन पु., 13.28

सरस्वती[1]

डा डी. सी. सरकार के अनुसार यह नदी हिमालय पर्वत की शिवालिक श्रेणी तथा सिरमूर पहाड़ियो से निकलकर पजाब प्रान्त के अम्बाला जनपद के आदबदरी के मैदानी क्षेत्र में प्रवाहित होती थी।[2] अधिकांश विद्वानो की सम्मति है कि यह स्थाणेश्वर के पश्चिम में बहने वाली सरस्वती से भिन्न नही है।

सरयु [3]

यह नदी हिमालय से निकली है।[4] इसका उल्लेख ऋग्वेद[5], अष्टाध्यायी[6], रघुवंश[7] तथा अन्यान्य **पुराणो** [8]मे भी मिलता है। इसकी पहचान आधुनिक घर्घरा (घाघरा) नदी से की जाती है, जो बिहार प्रान्त के छपरा जिले मे गंगा मे मिलती है।

सिन्धु [9]

यह नदी पारियात्र पर्वत से निकली है। [10]यह नदी सिन्ध देश में है।

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31
2 दृष्टव्य, डी. सी. सरकार, ज्योग्राफी ऑफ ऐन्शिएण्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया, पृ. 49
3. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31
4. वामन पु., 13.22
5 ऋग्वेद, 5.53.9
6. अष्टाध्यायी, 6.4.174
7. रघुवंश, 8.95 तथा 13.60- 63, 9.20
8. द्रष्टव्य, डी. सी. सरकार, पूर्वोद्धृत, पृ. 50
9. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24- 31
10. वामन पु., 13.23

भारत वर्ष

भविष्य पुराण में भारत वर्ष को सात खण्डो मे विभक्त किया है, जो इस प्रकार है-

ब्रह्मावर्त

आलोचित पुराण के अनुसार सरस्वती और दृषद्वती नामक नदियों के बीच की जो भूमि है, वह देश ब्रह्मावर्त कहलाता है।[1]

कुरुक्षेत्र[2]

कुरुक्षेत्र हरियाणा के अम्बाला और करनाल जिले में सरस्वती और दृषद्वती के मध्य का प्रदेश है। आलोचित पुराण के अनुसार यह ब्रह्मावर्त के बाद आता है।[3]

मत्स्य[4]

मत्स्य, मार्कण्डेय एव वामन पुराणो मे मध्य देश के जनपदो मे मत्स्य की गणना की गई है।[5] इस जनपद मे जयपुर- अलवर के भूक्षेत्र सम्मिलित थे तथा इसकी राजधानी विराट नगर (आधुनिक वैराट) थी।

---

1 भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 7 60, 181·40
2 वही, 7·62
3. वही, 7·62
4. वही, 7·62
5. दृष्टव्य, डी. सी. सरकार, पूर्वोद्धृत, पृ.31

पांचाल[1]

वामन पुराण मे इसे मध्य देश मे स्थित बताया गया है।[2] इसकी पहचान बरेली एव फरूखाबाद जनपदो मे मध्यवर्ती भू-भाग से की जाती है।

सूरसेन[3]

यह आजकल उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग है, जहाँ पर मथुरा- वृन्दावन स्थित है।

मध्यदेश

हिमालय और विन्ध्याचल के बीच अर्थात् कुरूक्षेत्र के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम का सारा प्रदेश मध्य देश के नाम से विख्यात है।[4]

आर्यावर्त

पूर्व में समुद्र पर्यन्त तथा पश्चिम में समुद्र पर्यन्त विस्तृत हिमालय तथा विन्ध्याचल इन दोनों पर्वतो के मध्य भाग का प्रदेश आर्यावर्त है।[5]

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 7.62
2. वामन पु., 13.35
3. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 7.62
4. वही, 7.64
5. वही, 7.65

चतुर्थ अध्याय

सामाजिक जीवन

प्राक्पौराणिक वर्णव्यवस्था की रूपरेखा

ऋग्वैदिक कालीन मान्यता है कि इन्द्र ने दस्युओं का नाश कर आर्य वर्ण की रक्षा की[1], जिसके आधार पर आर्य और दास वर्ण प्रकाश में आए। ऋग्वेद में ऐसे ही अनेक उदाहरण उद्धृत किए जा सकते है, जिसके आधार पर आर्य और दास इन दो वर्णों के अस्तित्व को अस्वीकार नही किया जा सकता, यथा -इन्द्र ने दास वर्ण को गुफा में रख दिया।[2] अन्यत्र उल्लेख मिलता है कि अगस्त्य मुनि दोनों वर्णों को चाहते थे।[3] इन दोनो वर्णों के शारीरिक और व्यावहारिक विभेद को ही स्पष्ट करने के उद्देश्य से दास वर्ण के लिए अव्रत', अक्रतु, मृघृवाच आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है।[4]

प्रतीत होता है कि आर्य समुदाए ने अपने वर्ण को भी तीन वर्गों में विभाजित कर दिया– ब्रह्म, क्षत्रिय और विश्। यह वर्गीकरण कर्मों के आधार पर किया गया। ब्रह्म के अन्तर्गत ऋषि एवं पुरोहित वर्ग का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया।[5] क्षत्र के अन्तर्गत शासक एवं सैनिक वर्ग का प्रतिनिधित्व माना गया[6] तथा विश् का प्रयोग समाज के सभी साधारण लोगों के लिए हुआ।[7] ऋग्वेद के ही पुरूष सूक्त में चौथे वर्ग शूद्र का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति विराट पुरूष से उद्भूत बताई है।[8] किन्तु अधिकांश विद्वान इस सूक्त को ऋग्वेद का प्रक्षिप्तांश मानते हुए इसे ऋग्वैदिक संरचना का द्योतक मानने मे संदेह व्यक्त करने लगे हैं।[9]

---

1. ऋग्वेद, 3.34.9
2. वही, 2.12.4
3. वही 1. 179.6
4. वही,7.6.3, 10.12–18, द्रष्टव्य–काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास खण्ड 2, भाग 1, पृ0 27
5. ऋग्वेद, 4.6.11, 10.105–108, 10.14.15, वैदिक इण्डेक्स, खण्ड 2,पृ0 266 (हिन्दी संस्करण)
6. ऋग्वेद, 7.42.2, 10.66.8, वैदिक इण्डेक्स, खण्ड 2, पृ0 262 (हिन्दी संस्करण)
7. जी.एस.घूर्ये, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, पृ0 441 । 'विश्' शब्द ऋग्वेद में आवास तथा बस्ती के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। वैदिक इण्डेक्स, भाग–2, पृ0 342, (हिन्दी संस्करण)
8. ऋग्वेद, 10.90.12
9. वैदिक इण्डेक्स, भाग 2, पृ0 275, आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 36, म्योर, ओ0एस0टी0 जिल्द 1,पृ0 12

उत्तरवैदिक काल मे आर्य भूमि के प्रसार तथा अनार्यों से नित बढ़ते संबंधो के कारण अब वर्ण एवं जातियों की समस्याएँ उभर रही थीं। इस काल में सामाजिक स्तर के स्पष्टीकरण की आवश्यकता उत्पन्न होने लगी थी। अतः वर्ण व्यवस्था अब अधिक स्पष्ट एवं नियमित बन गई थी। इस काल मे वर्ण शब्द का अर्थ रंग की अपेक्षा जाति के अर्थ में सुनिश्चित रूप से प्राप्त होता है। तीनो वेदो तथा ब्राह्मण ग्रन्थों मे चारों वर्णों के भिन्न- भिन्न तथा अनेक उल्लेख प्राप्त होते है।[1] इस युग में धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रो मे स्थिति अधिकार, कर्त्तव्यों और कार्यों की दृष्टि से चारों वर्णों में परस्पर भिन्नता दिखाई देने लगती है। वर्ण भेद के अनुसार व्यक्ति के आचार विचार में भी भिन्नता के विभिन्न प्रमाण प्राप्त होते हैं। समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को बुलाने के तरीके भिन्न-भिन्न थे।[2] आर० एस० शर्मा के अनुसार प्रारम्भिक कबीलाई समाज में इस प्रकार का परिवर्तन श्रम के विभाजन एवं अन्य सामाजिक तत्वो के समावेश के कारण हुआ।[3]

ब्राह्मण ग्रन्थो के प्रणयन के समय तक वर्ण व्यवस्था इतनी सुदृढ़ हो गई थी कि देवों को भी विभिन्न वर्णों में विभाजित कर दिया गया। अग्नि एवं बृहस्पति देवता ब्राह्मण थे। इन्द्र, वरूण तथा यम देवता क्षत्रिय थे। वसु, रूद्र विश्वेदेव तथा मरूत् विश् थे एवं पूषन शूद्र थे। इसी प्रकार यह भी वर्णित हुआ कि ब्राह्मण बसन्त ऋतु है, क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतु एवं विश् वर्षा ऋतु है।[4] इसलिए इन्ही ऋतुओ में इन भिन्न- भिन्न वर्णों को यज्ञ करना चाहिये।[5] उपर्युक्त प्रसंगों में शूद्र का उल्लेख न होने से स्वतः सिद्ध है कि सामान्यतया शूद्र वर्ण धार्मिक अधिकारों से वंचित था।

---

1. यजुर्वेद, 31.10.30.5, 18.48, अथर्ववेद, 5.17.9, 5.7.103, 19.32.8, तैत्तिरीय सं०, 2.3.7.1, 2.5.1.1, काठक सं०, 4.4, शतपथ ब्रा०, 5.4.4.15, 5.4.6.9
2. शतपथ ब्रा०, 1.1.4.12
3. आर० एस० शर्मा, शूद्राज इन एंशिएण्ट इण्डिया, पृ० 29
4. पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृ० 114
5. तैत्तिरीय सं०, 1.1.4, शतपथ ब्रा०, 2.1.3.4

उपनिषदों मे वर्ण व्यवस्था अत्यन्त लचीले रूप मे प्राप्त होती है। शूद्र भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सकते थे। यह रैक्व ऋषि की कथा: से स्पष्ट हो जाता है कि रैक्व ऋषि ने जानश्रुति पौत्रायन नामक शूद्र राजा को धर्म संबंधी ज्ञान प्रदान किया। वर्ण व्यवस्था का स्वरूप सूत्रकाल मे अधिक स्पष्ट हो गया। इस युग मे श्रौत सूत्रों, गृह्यसूत्रों और धर्म सूत्रों मे वर्णव्यवस्था क्रमश: कठोर और जटिल होती गई। साथ: ही समाज में वैश्य और शूद्र के स्थान का भी अपकर्ष होने लगा तथा ब्राह्मणों का क्रमश. प्रभुत्व बढ़ गया।

वर्ण उत्पत्ति विषयक पौराणिक उल्लेख

भविष्य पुराण मे चारों वर्णों का दैवी उद्भव परिकल्पित है। इसमे आख्यात है कि लोक वृद्धि के लिए ब्रह्मा के मुख, बाहु, ऊरू और पैर से क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की उत्पत्ति हुई।[1] प्रस्तुत संदर्भित स्थल के अतिरिक्त इसमें एक अन्य स्थल पर वर्णोत्पत्ति पर पुनः प्रकाश डाला गया है। प्रतिसर्ग पर्व के चतुर्थ खण्ड में उल्लेख आता है कि ब्रह्मा ने अपने मुख से सोम को उत्पन्न किया जिन्हे द्विजराज, महाबुद्धिमान एवं सर्ववेद विशारद कहा जाता है। पुन भगवान ब्रह्मा ने अपनी भुजाओ द्वारा क्षत्रराज सूर्य को उत्पन्न किया जो महाबली एवं राजनीति के विशेषज्ञ हैं। उसी प्रकार उरु से वैश्यराज समुद्र को उत्पन्न किया जिन्हे सरिताओं का पति तथा रत्नाकर कहा गया है तथा चरणो से विश्वकर्मा दक्ष को उत्पन्न किया जो कलाओं के विशेषज्ञ, शूद्रराज एव सुकृत्यकर्मा कहे जाते हैं। इसके पश्चात् द्विजराज सोम द्वारा ब्राह्मण, सूर्य द्वारा क्षत्रियगण, समुद्र द्वारा समस्त वैश्य और विश्वकर्मा दक्ष द्वारा शूद्र उत्पन्न हुए।[2] आलोचित पुराण में कर्म को प्रधान मानते हुए कहा गया है कि ब्राह्मण ज्ञान से ज्येष्ठ होते हैं, क्षत्रिय कर्म से, वैश्य धन से और शूद्र जन्म तथा शील से ज्येष्ठ माने जाते हैं।[3] वामन पुराण में ब्रह्म की वृक्ष रूप में कल्पना की गई है, जिसमें आख्यात है कि ब्राह्मण ब्रह्मा रूपी वृक्ष के मूल हैं, क्षत्रिय स्कन्ध हैं, वैश्य शाखा हैं तथा

---

1. भवि० पु०, ब्राह्म पर्व,2.51.52। आलोचित पुराण में वर्णोत्पत्ति की परिकल्पना की पुष्टि वैदिक परम्परा से होती है(ऋग्वेद,10.90.12) द्रष्टव्य-काणे,धर्मशास्त्र का इतिहास,भाग 1,पृ0 47,वैदिक इण्डेक्स,खण्ड 2,पृ0 248 तथा घाटे लेक्चर्स ऑफ ऋग्वेद,पृ0169-170 । उक्त परम्परा वेदोत्तर कालीन साहित्य में भी मिलती है। महाभारत, भीष्म पर्व 67.11,शान्ति पर्व,72.4, मनुस्मृति,1.31
2. भवि0पु0, प्रतिसर्ग पर्व 4.5.9-13
3. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व,4.99

शूद्र फल है।[1] भविष्य पुराण में वर्णित वर्णोद्भव सिद्धान्त की पुष्टि विष्णु[2], वायु[3],वामन[4], पद्म [5] एव गरूड़[6] पुराणो से भी होती है। पद्म पुराण में उल्लिखित है कि ब्राह्मण मे सतोगुण, क्षत्रिय में रजोगुण तथा वैश्य मे तमोगुण की प्रधानता पाई जाती है।[7] प्रतीत होता है कि यहाँ पर वैश्य में ही शूद्र को सम्मिलित कर लिया गया है। सम्भवतः व्यवसायिक समानता के कारण। भविष्य पुराण मे क्रियाशील ब्राह्मणो के लिए प्रजापत्य स्थान, क्षत्रियो के लिए ऐन्द्र स्थान, वैश्यो के लिए मरूत् स्थान तथा शूद्रो के लिए गान्दधर्व स्थान नियत किया गया है।[8] पद्म पुराण[9] तथा गरूड़ पुराण[10] मे भी इसी प्रकार का कथन उल्लिखित है।

---

1. वामन पु0, 60.25
2. विष्णु पु0,1.12.63-64
3. वायु पु0, 9.113
4. वामन पु0,60.26
5. पद्म पु0, 3.119-121
6. गरूड़ पु0, 1.4.34

7 पद्म पु0, सृष्टि खण्ड,3.119-121

8. भविष्य पु0, मध्यमपर्व, 1.2.34-35

9. पद्म पु0, 3.147-148

10. गरूड़ पु0, 1.4.35

वर्ण व्यवस्था का आधार

भविष्य पुराण में वर्णित वर्ण निर्धारण के सिद्धान्त पर महाभारत के सिद्धान्त की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है, जिसमें कर्म को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। महाभारत के भीष्म पर्व में चारों वर्णों का निर्धारण गुण और कर्म के आधार पर किया गया है।[1] पी0एच0 प्रभु[2] के अनुसार इस प्रसंग में गुण शब्द मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के समन्वय के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य की प्रवृत्तियाँ, स्वभाव, झुकाव तथा अन्त: प्रेरणाएँ आदि अनेक बातें सम्मिलित हैं। इन्ही के आधार पर कार्यों एवं व्यवसाय का प्रारम्भिक वर्गीकरण किया गया, जो सामाजिक संगठन तथा सुरक्षा के लिए विकासप्रद एवं आवश्यक होता है। जी0एच0 मीज गीता में प्रतिपादित वर्ण सृष्टि के सिद्धान्त को वर्णव्यवस्था का सर्वोत्कृष्ट आदर्श स्वीकार करते है।[3] परन्तु स्मृतियों के समय तक वर्ण का निर्णय गुण एवं कर्म पर न मानकर जन्म के आधार पर ही प्रतिपादित किया जाने लगा। आर0 एस0 शर्मा[4] ने वर्णों की उत्पत्ति एवं उनके सुदृढ़ीकरण में आर्थिक कारणों को विशेष प्रभावशाली शक्ति माना है, किंतु इनका यह मत तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। प्रस्तुत संदर्भ मे डा0 राधाकृष्णन[5] का मत है कि यह ऐसा वर्गीकरण है जो सामाजिक तथ्यों और मनोविज्ञान पर आधारित है। हिन्दू धर्म की एक सारभूत विशेषता है मनुष्य में आत्मा को स्वीकार करना और इस दृष्टि से सब मनुष्य समान हैं। वर्ण या जाति कार्य की असदृशता हैं। आलोचित पुराण का कथन भी कुछ इसी प्रकार है, जिसमें आख्यात है कि सभी मनुष्य उस परम पिता की संतान हैं। यह सम्पूर्ण मानव जाति व्यवहार रूप में एक ही है।[6] प्रत्येक वर्ण के लिए सुनिश्चित कृत्य और कर्त्तव्य नियत करने और

---

1. महाभारत,भीष्म पर्व, 4.13
2. पी0एच0प्रभु, हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, पृ0 285
3. जी0एच0मीज, धर्म एण्ड सोसायटी, पृ0 72
4. आर0एस0 शर्मा, लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसायटी एण्ड इकोनमी, पृ0 17- 18
5. राधाकृष्णन, धर्म और समाज, पृ0 151
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 41.44-45

विशेषाधिकार देने सेयह आशा की जाती थी कि विभिन्न वर्ण सहयोग पूर्वक कार्य करेंगे और उनमें जातीय समन्वय हो सकेगा। डा0 राधाकृष्णन के अनुसार वर्ण धर्म का आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यवसायिक योग्यता और स्वभाव के अनुसार विकास की ओर अग्रसर होने का यत्न करना चाहिये।[1]

आलोचित पुराण में वर्ण निर्धारण में आचरण की शुद्धता पर अत्यधिक बल दिया गया है। भविष्य पुराण के अनुसार वेदाध्ययन ही जाति भेद का आधार नहीं है।[2] शिखा रखना, सन्ध्योपासना, मेखला, दण्ड, मृग चर्म इन्हें ब्राह्मण की भाँति शूद्र भी अपना सकता है।[3] आलोचित पुराण में कहा गया है कि बाहरी वेश-भूषा आदि से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता, जब तक कि वह अपने वृन्त धर्म को न अपनाए।[4] अन्यश्च सभी मनुष्यों की शारीरिक संरचना एक समान होती है, उसके आधार पर भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इस प्रकार का भेद करना संभव नहीं है।[5] देह क्योंकि मूर्तिमान होने के नाते नश्वर है। अत देह को ब्राह्मण कदापि नहीं कहा जा सकता।[6] देह की कोई जाति नही होती। यहाँ भविष्य पुराण में एकेश्वरवाद का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसमे कहा गया है कि सभी मनुष्य उस एक ही पिता (परमब्रह्म) की संतान हैं, अतः उसमें जाति भेद संभव नहीं है।[7]

भविष्य पुराण में कतिपय स्थलों पर परम्परया चली आ रही कुछ एक मान्यताओं का विरोध भी परिलक्षित होता है, यथा- एक स्थल पर आलोचित पुराण स्पष्ट रूप में कहता है कि ब्राह्मण

---

1. राधाकृष्णन, ब्राह्मपर्व, पृ0 152
2. भवि0 पु0, ब्राह्म पर्व,41.3-6
3. वही, 41.10
4. वही,41.8.9
5. वही, 41.41-42
6. वही, 41.51
7. वही, 41.44- 45

चन्द्रमा की किरणों की भाँति धवल, क्षत्रिय किंशुक पुष्प के समान रुद्रवर्ण, वैश्य हरिताल के समान पीतवर्ण, और शूद्र आधी जली हुई लकड़ी के समान काले नही होते।[1] संस्कार को ही जाति का आधार मानने वालों को भविष्य पुराण विरोध करता प्रतीत होता, क्योंकि आचार करने वाले व्यासादि महर्षियों में श्रेष्ठ हो गए। उनके गर्भाधान आदि कोई संस्कार नहीं हुए थे, यह बिल्कुल स्पष्ट है।[2] आलोचित पुराण ने इस धारणा को भ्रामक बताया कि संस्कार युक्त जीव को ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है। संस्कार युक्त द्विजाति यदि निन्दित कर्म करती है, निषिद्ध वस्तुएँ बेचती है, अभक्ष्य का सेवन करती है तो उसकी शुद्धि सैकड़ों यज्ञ करने पर भी नहीं हो सकती।[3] शास्त्र में बताए गए न्याय मार्ग से च्युत होने वाला ब्राह्मण विशिष्ट गोत्र एवं शुद्ध संस्कार युक्त होकर तथा वेद पढ़कर उसका अध्यापन करते हुए भी दुराचारी होने के नाते पतित माना गया है।[4]

भविष्य पुराण वर्ण व्यवस्था का आधार स्वाभाविक कर्म एवं स्वाभाविक गुण को ही मानने के पक्ष में है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के आपसी कर्म उनके स्वाभाविक गुणों द्वारा पृथक-पृथक हैं।[5] शांति, तप, दम, पवित्रता, सहनशीलता, सरलता, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिकता (स्वर्गादि में विश्वास एवं श्रद्धा) ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म कहे गए हैं।[6] क्रूरता, तेज, धैर्य, युद्ध में चतुरता

---

1. वही, 41.41
2. वही, 42.20
3. वही, 43.3-9
4. वही, 40.42-43
5. वही, 44.24
6. वही, 44.25

एवं युद्ध से न भागना, दान और प्रभुत्व ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं।[1] खेती, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्य के तथा सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।[2] अच्छे शील वाला शूद्र ब्राह्मण से उत्तम बताया गया है और आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी हीन कहा गया है।[3] आलोचित पुराण में मनु के कथन को उद्धृत करते हुए कहा है कि जिसमें ज्ञान रूपी शिखा (चोटी) एवं तप रूपी पवित्रता सन्निहित है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है।[4]

कर्म को ही प्रधान आधार मानने के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है। यास्क ने अपने निरूक्त में बताया है कि सन्तानु और देवापि दो भाई थे, उनमें से एक क्षत्रिय राजा बना और दूसरा पुरोहित। दास कन्या इलुषा के पुत्र कवष ने एक यज्ञ में ब्राह्मण पुरोहित का कार्य किया था।[5] जनक ने जो जन्म से क्षत्रिय थे, अपनी परिपक्व बुद्धि और सत्तजनोचित चरित्र के कारण ब्राह्मण पद प्राप्त कर लिया था।[6] भागवत मे बताया गया है कि धष्टु नामक क्षत्रिय जाति उन्नत होकर ब्राह्मण बन गई थी। जात्युत्कर्ष के लिए व्यवस्था रखी गई है। भले ही कोई शूद्र हो यदि वह अच्छे कर्म करता है तो ब्राह्मण बन जाता है।[7] हम ब्राह्मण जन्म के कारण, संस्कारों के कारण, अध्ययन या कुटुम्ब के कारण नहीं होते अपितु आचरण के कारण होते हैं।[8] आलोचित पुराण में भी

---

1. वही, 44.26
2. वही, 44.27
3. वही, 44.30-31
4. वही, 44.29
5. ऐतरेय ब्रा0, 2.19
6. रामायण, बालकाण्ड, 51.55
7. " एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
   शूद्रे ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ।।"
   विशेष द्रष्टव्य, राधाकृष्णन, धर्म और समाज, पृ0 153
8. विशेष द्रष्टव्य, राधाकृष्णन,धर्म और समाज, पृ0 153

उल्लिखित है कि व्यास कैवर्ती (केवट की स्त्री) से, पराशर चण्डालिनी से, वशिष्ठ वेश्या से उत्पन्न हुए, जिन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया।[1]

गौतम ने आत्मगुणों को सभी संस्कारों से बढ़कर माना है। इन्ही से मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है।[2] वशिष्ठ ने भी आचार पथ की उच्च प्रतिष्ठा का समर्थन किया है। उनके अनुसार सभी आश्रम के लोगों को ईर्ष्या, निन्दा, अभिमान, अहंभाव, कुटिलता, आत्मप्रशंसा, लोभ, प्रवंचना, मोह, क्रोध, द्रोह आदि छोड़ना चाहिये।[3] बृहदारण्यकोपनिषद् के शंकरभाष्य के अनुसार ब्रह्मा ने वर्णों की सृष्टि कर्म के लिए की तथा यह कर्म ही धर्म है। यही पुरूषार्थ का साधन तथा जगत का नियन्ता है।[4] हरिवंश पुराण भी कहता है कि पापकर्मों के फलस्वरूप ब्राह्मण भी नीच जाति में जन्म लेता है। इसके लिए विश्वामित्र के सात पुत्रों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें पापकृत्य के फलस्वरूप नीच व्याधकुल में जन्म लेना पड़ा।[5]

ग्यारहवीं शती में आचार्य अमित गति ने वर्ण व्यवस्था का आधार आचार को माना उनके अनुसार सत्य, शौच, तप, शील, ध्यान और स्वाध्याय से रहित कोई व्यक्ति किसी जाति का अधिकारी नहीं हो सकता। जातियों का भेद आचार मात्र से है।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 42.22-24
2. गौतम धर्मसूत्र, 8.23-24 ।
3. वशिष्ठ धर्मसूत्र, 10.30 तथा 30.1
4. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1.4.14 पर शंकर भाष्य
5. हरिवंश पु०, 1.19.5-7
6. धर्म परीक्षा परि०, 17

आलोचित पुराण के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इस पुराण के प्रणयन काल के समय समाज में वर्णसंकर जातियो का आधिक्य होने लगा था। भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि शूद्र भी विदेश में जाकर चारों या किसी भी एक वेद को पढ़कर किसी शुद्ध ब्राह्मण कन्या से विवाह कर लेता था। कोई भी क्षत्रिय या वैश्य वेद पढ़कर दक्षिण या द्रविड़ जाति में मिल जाता है उसी प्रकार शूद्र भी अनजाने में ब्राह्मण हो जाता है।[1] अतएव भविष्य पुराण में शरीर, जन्म, वेशभूषा, वेदाध्ययन को जाति का आधार न मानकर कर्म को महत्व प्रदान किया गया। साथ ही आचरण की शुद्धता पर भी बल दिया गया। अलोचित पुराण स्पष्ट रूप से कहता है कि अच्छे शील वाला शूद्र ब्राह्मण से उत्तम है और आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी हीन है।[2] भविष्य पुराण में आख्यात है कि ब्राह्मण एवं शूद्र की वर्णसंकर संतानों के कारण अब ब्राह्मण शूद्र में कोई भेद नहीं रह गया। इसी प्रकार चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) में परस्पर सम्पर्क के कारण वे अधम हो गए हैं, उनमें सभी धार्मिक कार्यों के द्वारा वर्ण संकर्य दिखाई देता है।[3] वस्तुत: भविष्य पुराण का मानना है कि मानव जाति में वर्ग भेद सम्भव नहीं है। व्यवहार रूप मे मानव जाति एक ही है, केवल धर्मों की भिन्नता है।[4]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 41.3-6
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 44.31
3. वही, 43.14-15, 43.38-45
4. वही, 44, 33

भविष्य पुराण में विभिन्न वर्णों की स्थिति

ब्राह्मण

भविष्य पुराण में ब्राह्मणों को सभी वर्णों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम कहा गया है।[1] आलोचित पुराण, वेदों में उल्लिखित ब्राह्मणों की उत्पत्ति को स्वीकार करते हुए कहता है कि स्वयंभू भगवान के पुनीत मुख से द्विजों की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ब्राह्मणों की उत्पत्ति हव्यों और कव्यों की रक्षा के लिए की।[2] ब्राह्मण जन्म से ही सर्वप्रधान है, अत. सभी भाँति की अर्चा के योग्य है।[3] केवल गायत्री जानने वाला ब्राह्मण भी पूज्य है।[4] आलोचित पुराण में आख्यात है कि जो मनुष्य किसी स्वार्थवश, भयवश अथवा स्नेहवश होकर एक ही पंक्ति में बैठे हुए ब्राह्मणों को भेद करके दान करता है, वह ब्रह्महत्या का भागी होता है।[5] अन्यश्च, समीपस्थ ब्राह्मण को त्याग कर जो अन्य ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे निकटस्थ ब्राह्मण के अपमान से निश्चित ही पाप के भागी होते हैं। अतएव निकटस्थ ब्राह्मण की सदा पूजा करनी चाहिये।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 2.171
2. वही, 3.125- 130
3. वही, मध्यम पर्व, 1.5.3
4. वही, ब्राह्मपर्व, 4.121
5. वही, 4.123
6. वही, 2.169- 170

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि ब्राह्मण का जन्म समस्त प्राणियों पर आधिपत्य करने तथा धर्मकोश की रक्षा करने के लिए हुआ है। ब्राह्मण सबसे बढ़कर पूजनीय है और वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।[1] जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं उसके ऊपर विष्णु निश्चित प्रसन्न होते हैं। इसलिए ब्राह्मण की पूजा करते समय विष्णु उसी समय प्रसन्न हो जाते हैं।[2] जो मनुष्य द्वेष के कारण श्रद्धाहीन होने के नाते ब्राह्मणों का अभिवादन नहीं करते उनकी आयु क्षीण हो जाती है और भूमिनाश एवं दुर्गति भी होती है।[3] आलोचित पुराण में आख्यात है कि दस वर्ष की अवस्था का ब्राह्मण सौ वर्ष की अवस्था का क्षत्रिय इन दोनों को परस्पर पिता पुत्र की भाँति जानना चाहिये।[4] महाभारत में भी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न दस वर्ष के बालक को सौ वर्ष के व्योवृद्ध क्षत्रिय के पिता तुल्य माना गया है।[5] आलोचित पुराण में यह भी कहा गया है कि जिस ग्राम में ब्राह्मण संतुष्ट हों वह ग्राम साम्कि (यज्ञभूमि) है।[6] जो मनुष्य ब्राह्मण धन का अपहरण करते हैं उन्हें पशुश्रेष्ठ खर बताया गया है।[7] ब्राह्मण के दाहिने हाथ में पाँच तीर्थ बताए गए हैं अतएव सर्वदेवमय ब्राह्मण सदैव पूज्य हैं।[8] इन उल्लेखों से प्रतीत होता हे कि ब्राह्मण का समाज में बड़ा आदर तथा सम्मान था।

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 2.132, 136, 138
2. वही, मध्यमपर्व, 1.5.11
3. वही,मध्यमपर्व, 1.5.20
4. वही, ब्राह्मपर्व, 4.68
5. महाभारत, अनुशासन पर्व, 35.1, शान्ति पर्व, 72.6
6. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 4.106
7. वही, मध्यमपर्व, 1.5.65-66
8. वही, ब्राह्मपर्व, 3.62-63

ब्राह्मणों के प्रति सम्मान एवं उनकी श्रेष्ठता के साक्ष्य अन्यान्य पुराणों में भी आख्यात हैं। मनुस्मृति के अनुसार मानववर्गों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है।[1] विष्णु धर्मसूत्र में उल्लिखित है कि देवता अदृश्य होते हैं किंतु ब्राह्मण दृश्यमान साक्षात देवता हैं। ब्राह्मणों के द्वारा ही समस्त लोक धारण किया जाता है। ब्राह्मणों की दया से ही देवता स्वर्ग में निवास करते हैं।[2] महाभारत में आख्यात है कि ब्राह्मण परम ज्योति है, वही सर्वश्रेष्ठ तप है। ब्राह्मणों को नमस्कार करने से ही सूर्य आकाश में विराजमान है।[3] मत्स्य पुरण में उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण का अंश समस्त प्राणिजगत में व्याप्त है तथापि ब्राह्मणों में उसका अंश विशेष होता है।[4] वामन पुराण में ब्राह्मण विद्वेषी को अधम बताया गया है चाहे वह श्रेष्ठ वर्ण का ही क्यों न हो।[5] वामन पुराण में ही एक अन्य स्थल पर आख्यात है कि श्रुतिशास्त्र से विहीन श्रेष्ठ ब्राह्मण पितामह की समानता प्राप्त करते है।[6] पद्म पुराण में लिखा है कि ब्राह्मण विष्णु का साक्षात स्वरूप है।[7]

भविष्य पुराण में आख्यात है कि सभी भूतों में प्राणधारी श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणों में बुद्धिमान ब्राह्मण श्रेष्ठ है, बुद्धिमान ब्राह्मणों में वे श्रेष्ठ हैं जो दृढ़ बुद्धि हैं, उनमें में भी वे श्रेष्ठ हैं जो वैसा आचरण करते है

---

1. मनुस्मृति, 1.96
2. विष्णु ध0सू0, 19.20-22
3. महाभारत, वनपर्व, 30.3.16
4. मत्स्य पु0, 109.13-14
5. वामन पु0, 64.17
6. वामन पु0,50.17
7. पद्म पु0, 61.47-58

किंतु उनमें भी ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ हैं।[1] पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में भी इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

ब्राह्मण अबध्य

ब्राह्मणों को अबध्य मानना ही उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा को स्पष्ट करता है। आलोचित पुराण में ब्रह्महत्या करने वाले, मद्यपान करने वाले, चोर, गुरू स्त्री का उपभोग और इन चारों के साथ सभी प्रकार का व्यवहार रखने वाले, ये पाँचों महापातकी कहे गए हैं।[3] क्रोध, द्वेष, भय एव लोभवश जो ब्राह्मण के लिए प्राण निकलने के समान दुःखदायी वाणी का प्रयोग करता है, वही महादोष करने वाला ब्रह्मघाती कहा गया है।[4] विष्णु पुराण में ब्राह्मणहन्ता एवं पापी लोगों के साथ सम्पर्क रखने वाले को नरकगामी घोषित किया गया है।[5] छान्दोग्य उपनिषद् में भी ब्राह्मण की हत्या करना महापातकों में स्वीकार किया गया है।[6] मनु ने स्पष्ट कहा हे कि सब पापों में लिप्त रहने पर भी ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिये।[7] मत्स्य पुराण भी कुछ इसी प्रकार का मत प्रस्तुत करता है कि ब्राह्मण चाहे पापचारी ही क्यों न हो वह अबध्य है।[8]

वैदिक काल में ही ब्राह्मणों को अबध्य माना जाने लगा था। शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मणों को कष्ट देने अथवा हत्या करने पर प्रायश्चित का विधान है।[9] वैधायन धर्मसूत्र में आख्यात है कि ब्राह्मण अपराधी होने पर अबध्य है।[10]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 2.129-130
2. पद्म पु०, 245.137-138
3. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व,189.39
4. वही, ब्राह्मपर्व,189.40
5. विष्णु पु०, 2.6.9
6. छान्दोग्य उप०,5.10.9
7. मनुस्मृति,8.380-381
8. मत्स्य पु०,80.12
9. शतपथ ब्रा०,13.3.5.4
10. बौधायन ध०सू०,16.19.15

आलोचित पुराण मे राजा परिमल एवं पृथ्वीराज की सेनाओं के मध्य हो रहे युद्ध के अवसर पर उल्लेख मिलता है कि चामुण्ड ने लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उससे महान युद्ध किया, किन्तु लक्षण ने उसके द्वारा पीड़ित होते हुए भी उसके ऊपर वैष्णवास्त्रों को प्रयोग नहीं किया क्योकि चामुण्ड ब्राह्मण जाति का था।[1] वामन पुराण में भी उल्लिखित है कि गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, यथार्थवक्ता, बालक, दोषरहित स्त्री तथा आचार्य आदि गुरूजनों के अपराध करने पर भी अबध्य माने गए हैं।[2] वायु एवं ब्राह्माण्ड पुराणों में ऐसी कथा का उल्लेख मिलता है जिसमें ऋषियों कों ब्राह्मणों को अबध्य रखने की शपथ लेनी पड़ी।[3]

ब्राह्मणों के कर्त्तव्य

आलोचित पुराण में अध्ययन, अध्यापन, यज्ञाराधन, यज्ञ का अनुष्ठान करना, दान लेना ये सब ब्राह्मण के कर्म निश्चित किए गए हैं।[4]

स्वाध्याय

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि वेदाभ्यास ही परम श्रेष्ठ तप है।[5] जिस ब्राह्मण के पास न वेद है, न जप है, न विद्या है, उसे शूद्र ही मानना चाहिये।[6] षडंग वेद का अधिकारी सबसे महान कहा गया है।[7]

---

1. भवि० पु०, प्रतिसर्ग पर्व, 3.32.186-187
2. वामन पु०, 32.92
3. " स कुर्याद् ब्रह्मबध्यां वै समयो न प्रकीर्तितः।" वायु पु०, 16.13, ब्रह्माण्ड पु०, 2.35.16
4. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 2.121
5. " वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोऽयते।" भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 4.133
6. "नयस्य वेदो न जपो नविद्याश्च विशाम्पते। स शूद्र एवं मन्तव्य इत्याह भगवान्वि भुः।" भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 4.136
7. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व,4.97

बिना अध्ययन का ब्राह्मण नामधारी मात्र है। आलोचित पुराण मे श्रुति और स्मृति ब्राह्मण के नेत्र आख्यात है।[1] जो ब्राह्मण समस्त पुराणादि एव महाभारत को भली-भाँति अधिगत कर लेता है, वह ब्राह्मण समुदाय का धारक नेता एव श्रेष्ठ जन कहा जाता है। मनुष्यों में वह सर्वज्ञ समझा जाता है।[2]

अध्ययन ब्राह्मण का प्रथम एवं अनिवार्य कर्त्तव्य था। इस संबंध में पुराणों में विपुल साक्ष्य उपलब्ध हैं। वामन पुराण में आख्यात है कि ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए स्वाध्याय करना उसका परम धर्म है।[3] आलोचित पुराण में भी द्विज के लिए वेदाध्ययन ही शिल्पवृत्ति बताया है, यही ब्राह्मण का लक्षण है।[4] मत्स्य पुराण में आख्यात है कि ब्राह्मण की श्रेष्ठता की कसौटी उसके विद्या बल से आँकनी चाहिये।[5] वैदिक काल से ही विद्या बल के आधार पर ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा आँकी जाती थी। छान्दोग्य उपनिषद् में अविद्वान ब्राह्मण के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है।[6] गौतम धर्मसूत्र में अध्ययन ब्राह्मण का परम कर्त्तव्य माना गया है।[7] आलोचित पुराण के अनुसार वेदज्ञाता,व्रती, स्नातक, एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर आने पर समस्त औषधियाँ क्रीड़ा करने लगती है।[8]

अध्यापन तथा उपदेश

आलोचित पुराण में आख्यात है कि देवों में इन्द्र तथा अस्त्रों में वज्र की भाँति ब्राह्मणों में कथा-वाचक ही सर्वश्रेष्ठ कहे गए हैं।[9] आलोचित पुराण में कथावाचक की पूजा को महान पुण्य कर्म स्वीकार करते हुए आख्यात है कि श्रद्धालु होकर एवं भक्ति पूर्वक जो मनुष्य कथावाचक की पूजा करता है उससे सूर्य की ही भाँति

---

1. भवि० पु०, मध्यमपर्व, 1.5.57
2. वही, ब्राह्मपर्व,4.89-90
3. वामन पु०, 14.4.5
4. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 41.8
5. मत्स्य पु०, 38.2
6. छान्दोग्य उप०, 6.1.1
7. गौतम ध०सू०, 10.1
8. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 184.44
9. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 94.61

ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी प्रसन्न होते हैं।[1] भविष्य पुराण में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि उपदेश केवल सत्पात्र को ही दिया जाए। एक स्थल पर विद्या ने ब्राह्मण से कहा कि तुम जिस ब्रह्मचारी को नियमनिष्ठ, पवित्र भावों तथा आचरण वाला समझना, उसी परम सावधान चेता एवं निधि की यथार्थ रक्षा करने वाले ब्राह्मण को ही मुझे सौंपना।[2] इसी प्रकार मध्यमपर्व के प्रथम खण्ड में भी उल्लेख आता है कि ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि योग्य पात्र को ही विद्या प्रदान करे। इसी स्थल पर पात्र के गुणों का भी उल्लेख किया गया है।[3] ब्रह्मवेत्ता को विद्या ही के साथ भले मर जाना पड़े किन्तु कठिन से कठिन परिस्थिति में अपात्र में विद्या का बीज न बोए।[4]

ब्राह्मणों की अध्यापन वृत्ति का उल्लेख वैदिक युगीन है, जो बृहदारण्यक उपनिषद[5] धर्मसूत्र[6] और स्मृतियो में अनेक स्थलों पर मिलता है।[7] पुराणों में भी इसके साक्ष्य उपलब्ध हैं। वायु एव ब्रह्माण्ड पुराणो मे आख्यात है कि वेद का प्रचार ब्राह्मणों ने ही किया था।[8] मत्स्य पुराण में कुण्डरीक नामक ब्राह्मण मन्त्री को वेद और शास्त्र का प्रवर्तक माना गया है।[9] शुक्राचार्य को वेद का श्रेष्ठ महामति कहा है।[10]

---

1. भवि0 पु0, 94.43
2. वही, 4.43
3. वही, मध्यम पर्व,1.8.9–12
4. वही, ब्राह्मपर्व, 4.40
5. बृहदारण्यक उप॰ 2.1.15
6. गौतम ध0सू0,10.2
7. " ब्राह्मणस्याध्यायनम् "–विष्णु स्मृति, 2.5
8. वायु पु0,57.60, ब्रह्माण्ड पु0 2.29.66
9. मत्स्य पु0, 21.31
10. वामन पु0,सरोमाहात्म्य, 10.3

ब्राह्मण और दान

आलोचित पुराण में कई ऐसे स्थल उपलब्ध हैं, जिसमें ब्राह्मणों के दान लेने की प्रथा का पता चलता है। एक स्थल पर उल्लिखित है कि जो ब्राह्मण को उपानह, काठ के दंड वाले छन्ते दान रूप में प्रदान करता है, वह धार्मिक होने के कारण सुखपूर्वक यमराज के यहाँ पहुँचता है।[1] व्रतानुष्ठान मे गुणवान एवं निर्धन ब्राह्मणों तथा विशेषकर दीन हीन, अंधे एवं नि:सहाय व्यक्तियों को शक्त्यानुसार दान, दक्षिणा तथा भाजन कराकर व्रत समाप्त करना चाहिये।[2] किंतु साथ ही यह भी आख्यात है कि जप हीन ब्राह्मण को दान देना भस्म की ढेर में हवन करने की भाँति व्यर्थ है।[3] अन्यश्च जो स्वयं पकवान को ब्राह्मण को दिए बिना भक्षण करता है, उसका पाक व्यर्थ है।[4] दान के प्रसंग में उल्लिखित है कि साधुगण अपने स्वार्थ के लिए किसी के द्वारा दी गई वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते, प्रत्युत देने वाले के उपकारार्थ उसका ग्रहण करते हैं।[5] उदारता, स्वागत करना, मैत्री, अनुकम्पा एवं मत्सरहीनता इन पाँचो गुणों द्वारा जो अभ्यागत को दान प्रदान करता है, उसके दान का महान फल बताया है।[6] भूमि दान का भी संकेत मिलता है कि देव, ब्राह्मण एवं गाए के लिए प्रदत्त भूमि का जो अपहरण करता है, चाहे वह कितनी खराब ही क्यों न हो, उसे ब्रह्मघाती बताया है।[7] वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों का कथन है कि ब्राह्मण देवों के मुख है, अत उन्हें दान उचित है।[8] मनुस्मृति में उल्लिखित है कि अविद्वान ब्राह्मण को दान देने से दाता और ब्राह्मण दोनों का विनाश होता है।[9] वामन पुराण में उल्लिखित है कि समर्थ श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दासी, दास, भृत्य, गृह, रत्न एवं अच्छे वस्त्र प्रदान करना चाहिये।[10]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 192.5
2. वही, 50.26
3. वही, 189.2
4. वही, 191.9
5. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व,189.7
6. वही, 189.22
7. वही, 189.42
8. वायु पु०, 50.116, ब्रह्माण्ड पु०, 2.21.149
9. मनुस्मृति, 4.190
10. वामन पु०, 52.79

ब्राह्मण और दक्षिणा

आलोचित पुराण में यज्ञ, दान व्रतादि कर्मों में प्रत्यक्ष दक्षिणा देने का विधान कहा गया है। बिना दक्षिणा के यज्ञादि प्रारम्भ कभी न करना चाहिये, अपितु अधिकाधिक दक्षिणा देने का प्रयत्न करना चाहिये।[1] मत्स्य पुराण में आख्यात है कि यदि ब्राह्मण को तत्काल दक्षिणा नहीं दी जाती है तो एक दिन बाद देय दक्षिणा की राशि दुगुनी, एक मास बाद सौगुनी एवं दो मास बाद हजार गुनी हो जाती है और यदि दाता एक वर्ष तक दक्षिणा दिए बिना समय बिता लेता है तो वह नरक में गिर जाता है।[2] वामन पुराण मे दक्षिणा ग्रहण के औचित्य के प्रसंग में कहा गया है कि चाण्डाल औ अन्त्यज से दक्षिणा लेने वाला याचक पुनर्जन्म में पत्थर पर कीड़ा होता है।[3] ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में उल्लिखित है कि दक्षिणा न देने एव न माँगने पर दाता एव ग्रहीता दोनों नरक में गिरते हैं और दाता पुनर्जन्म में व्याधियुक्त होता है।[4] माँगे जाने पर भी दक्षिणा न देने पर यजमान स्वयं तो ब्रह्म स्वहारी होकर कुम्भीपाक नरक में गिरता है, साथ ही इस कर्म से अपने सात पीढ़ी के पुरूषों का भी पतन कराता है।[5] वायु पुराण के अनुसार विप्र को दक्षिणा देना यज्ञ की प्रतिष्ठा का कारण है।[6]

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि देवताओं और ब्राह्मणों में जिसके लिए जो दान बताया गया है, संगोपांग दक्षिणा समेत वह दान उसी को समर्पित करना चाहिये। अनेकों की उपस्थिति में कुछ न कुछ देना ही चाहिये, अन्यथा उस माप द्वारा जोड़ी बिछुड़ जाती है।[7] एक गौ, गृह, शय्या या स्त्री को दान अथवा दक्षिणा देने के प्रसंग में पुराणों का कथन है कि इन्हें एक से अधिक व्यक्तियों को न दें, क्यों कि इस तरह दक्षिणा के बहुत से लोगों में विभक्त हो जाने के कारण दाता उसके फल का भागी नहीं हो पाता।[8] आलोचित पुराण में लिखा है कि दक्षिणाहीन यज्ञ कभी नहीं करना चाहिये।[9]

---

1. भवि0 पु0, मध्यमपर्व,2.3.17
2. विशेष द्रष्टव्य, लल्लन जी गोपाल, पुराण विषयानुक्रमणी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,जिल्द 2, 1978ई0
3. वामन पु0, 12.36
4. ब्रह्मवैवर्त्त पु0,4.75.38-41
5. वही,2.42.62-64
6. वायु पु0,106.42
7. भवि0पु0,मध्यमपर्व, 2.3.13-14

ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण

आलोचित पुराण में ब्राह्मणों के आठ स्वाभाविक गुणों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है- अनसूया, दया, शान्ति, अनायास, मंगल, अकार्पण्य, शौच, स्पृहा।[1] एक अन्य स्थल पर शान्ति, तप, दम, पवित्रता, सहनशीलता, ज्ञान- विज्ञान, आस्तिकता ये सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म कहे गए है, जो उनके स्वाभाविक गुणों के द्वारा निश्चित किए गए हैं।[2] ब्राह्मण को सर्वदा सम्मान एव प्रतिष्ठा से विष की भाँति उद्विग्न होना चाहिये।[3] ब्राह्मण को सदा अमृत की तरह अपमान की आकाक्षा करनी चाहिये। पद्म पुराण[4] तथा मनुस्मृति[5] में भी इसी प्रकार के विचारों को व्यक्त किया गया है।

आलोचित पुराण मे आख्यात है कि जो अनीति मार्ग का त्याग कर, इन्द्रियजित होकर मन एवं वाणी पर अधिकार रखते हैं, वे सदाचारी होते हैं। नियम और आचार को अपनाकर, हितान्वेषी, तत्वज्ञानी, क्रोधहीन, स्वाध्यायप्रेमी, आसक्तिरहित, मत्सरहीन, शांत, एकान्तवासी, तनमन से व्रती, निर्मोही, निरभिमानी, दानवीर, सत्यरूपी, ब्रह्म के ज्ञानी, सभी शास्त्रों के नैष्ठिक विद्वान को ब्रह्मा ने ब्राह्मण कहा है।[6] गीता मे स्थित प्रज्ञ के इन्हीं लक्षणों का उल्लेख है।[7]

ब्राह्मण की शुभ वृत्तियाँ

आलोचित पुराण में ऋत (उच्छवृत्ति-एक-एक दाने को खेतों से एकत्र करना), अमृत (आयाचित अन्न), प्रतिग्रह (दान) एवं वाणिज्यादि कर्म द्वारा ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह करना बताया गया है। इनमें प्रथम श्रेयस्कर और अन्य अप्रशस्त कहे गए हैं।[8]

---

1. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 2.155
2. वही, 44.24-25
3. वही,4.129
4. पद्म पु0, सृष्टि खण्ड, 19.341
5. मनुस्मृति,2.162
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 44.1-7
7. गीता,12.18-19
8. भवि0 पु0,ब्राह्मपर्व,186.9-10

ब्राह्मण के शुद्धि व्रत

आलोचित पुराण में निम्न कर्मों के करने पर तथा अपवित्र होने पर चान्द्रायण, सांतपन, संगम स्नान,' एवं समुद्र दर्शन, जल मिश्रित घी के प्राशन, वज्र के प्राशन तथा कृच्छ्र व्रत आदि द्वारा ब्राह्मण की शुद्धि का विवरण दिया गया है।[1]

ब्राह्मण के जाति भेद

भविष्य पुराण के मध्यम पर्व में ब्राह्मणों की जाति में चार प्रकार के भेदों का उल्लेख मिलता है- भोजक, कथक, शिव विप्र और सूर्य विप्र।[2] इनमें सूर्य विप्र को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि सूर्य विप्र (दाढ़ी वाला ब्राह्मण) कभी पतित नहीं होता। यज्ञ की सफलता में उसकी पूजा अवश्य करनी चाहियेे।[3] कथक ब्राह्मण को मध्यम, सूर्य विप्र को सर्वश्रेष्ठ एवं शिवलिंग की अर्चा में अनुरक्त होने के नाते शिव विप्र को निन्दित कहा गया है।[4] इसके अतिरिक्त देश चक्र वेत्ता (समस्त देशों के भली-भाँति ज्ञाता) तथा होरा चक्र के ब्राह्मण का भी उल्लेख किया गया है कि इन ब्राह्मणों की पूजा भी परमावश्यक है।[5]

मग ब्राह्मण

भविष्य पुराण चूँकि सौर प्रधान है अतएव इसमें मग ब्राह्मणों का विस्तार से उल्लेख मिलता है। आलोचित पुराण में कृष्ण पुत्र साम्ब की कथा का वर्णन मिलता है कि उसने कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के लिए सूर्याराधना की एवं सूर्य मंदिर का निर्माण करवाया।[6] इसी प्रसंग में सूर्यदेव की अर्चना का

---

1. भवि० पु०, 184.45-59
2. भवि० पु०, मध्यम पर्व, 1.5.87
3. वही, 1.5.86
4. वही, 1.5.88
5. वही, 1.5.90
6. भवि० पु०,ब्राह्मपर्व, अध्याय 127 से 138 तक

उल्लेख आता है तब नारद साम्ब से कहते हैं कि देवताओ के अन्न ग्रहण एव पूजन करने का एकमात्र अधिकार शाकद्वीपीय मग ब्राह्मणो को है।[1] इन्हें ही भाजक ब्राह्मण की सज्ञा प्रदान की गई है।

मगों की प्राचीनता

सामान्यत. यह स्वीकार किया जाता है कि मग ईरान के पुरोहित थे, जो सूर्य एवं अग्नि की संयुक्त उपासना करते थे।[2]

मगोकी प्राचीनता के विषय पर विद्वत्समुदाए एक मत नहीं है। मगो का भारत मे आगमन तीन शाखाओं में हुआ। प्रथम शाखा, शाखामनीषी आक्रान्ताओं के साथ उत्तर पश्चिम भारत में पाँचवी शताब्दी ई0 पू0 में आई। मगों की दूसरी शाखा शक कुषाण काल (द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 से प्रथम शता0 ई0) में आई। अन्तिम शाखा पारसियों के साथ सातवीं शताब्दी ई0 में आई।[3] पाँचवी शताब्दी ई0 के बाद से मगों का सौरोपासना के संदर्भ में भारतीय इतिहास के साहित्यिक एवं अभिलेखिक साक्ष्यों में उल्लेख प्राप्त होने लगता है।[4] नेपाल से 550 ई0 की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसमें मगों को ब्राह्मण के समस्तरीय निरूपित किया गया है।[5]

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पुरोहितो के एक विशिष्ट वर्ग अर्थात् शाकद्वीपीय ब्राह्मण मगों ने अपनी प्रचारात्मक परम्परा से सौरधर्म को विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया था। मग परम्परा ने सौरधर्म को सर्वाधिक प्रभावित किया, जिसका उल्लेख परवर्ती पुराणों

---

1. भवि0पु0,139.27-28
2. भण्डारकर, क्लेक्टेडवर्क्स, पृ0 219, आर0 सी0 मजूमदार, द एज ऑफ इम्पीरियल युनिटी, पृ0 465
3. वी0 सी0 श्रीवास्तव, सन वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 350
4. आर0 जी0 भण्डारकर, वैष्णविज़्म शैविज़्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स, पृ0153-154
5. इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1911, जनवरी,पृ0 18

ब्रह्माण्ड
में प्राप्त होता है। विष्णु, वायु और मत्स्य पुराण[1] में यह प्रतिपादित किया गया है कि सौरोपासना का विकास शतपथ ब्राह्मण[2] की भावभूमि मे हुआ। इतना ही नहीं, साम्ब पुराण[3] जिसमें मग पुरोहितों के उत्कृष्ट प्रभाव को मान्यता प्रदान की गई है, में वैदिक परम्परा को उपेक्षित नही किया जा सका है। अतएव कहा जा सकता है कि मगों का पूर्णतः भारतीयकरण हो गया था।

मगों की उत्पत्ति

भविष्य पुराण में मगों अथवा भोजकों की उत्पत्ति के संदर्भ में दो स्थलों पर उल्लेख मिलता है। एक स्थल पर उल्लिखित हे कि मग अग्नि रूप सूर्य तथा निक्षुभा की संतान हैं।[4] आलोचित पुराण में अग्नि जाति वाले मग, सोम जाति वाले द्विजाति एवं आदित्य जाति वाले भोजक कहे गए हैं।[5] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित हे कि मगों का विवाह भोजक वंश की कन्याओं से हुआ।[6] अतः उनसे उत्पन्न होने के नाते ये भोजक कहे जाते हैं।[7] साम्ब पुराण के अनुसार मग और भोजक एक थे। अन्तर मात्र इतना था कि मग 'म' अक्षर की पूजा करते थे, जबकि भोजक सूर्य की उपासना मंत्रोच्चारण करते हुए धूप दीप तथा अन्य उपहारों के माध्यम से करते थे। दोनों ही सूर्य के सकल और निष्कल रूप के उपासक थे।[8] भविष्य पुराण में भी इसी प्रकार का उल्लेख आता है कि सूर्यनारायण रूप मकार है, मकार का ध्यान करने से ही ये मग कहे जाते हैं। धूप, माल्य आदि से सूर्यनारायण का पूजन कर वे विविध पदार्थों का भोजन कराते हैं, अतः उनकी भोजक संज्ञा है।[9] महाभारत[10] तथा विष्णु पुराण[11]

---

1. एस0 एन0 राय, अर्ली पौराणिक एकाउण्ट ऑफ सन एण्ड सोलर कल्ट, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज,1963, पृ0 41–45
2. शतपथ ब्रा0, 7.4.1.10
3. आर0 सी0 हाजरा, स्टडीज इन द पुराणिक रेकार्ड्स, भाग 1,पृ0 63, साम्ब पुराण, 6.15, 12.8, 12.13, 24.7, 19.15, 30.18
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 139.30
5. वही, 139.44
6. वही, 140.8–10,140.17–19
7. वही, 140.35
8. साम्ब पु0,27.12, द्रष्टव्य, स्टेटनक्रान इण्डिआसोनन,प्रीस्टेर साम्ब एण्ड द शाकद्वीपीय ब्राह्मण, पृ0 276–281
9. भवि0 पु0, ब्राह्म पर्व, 144.25–26
10. महाभारत, 7.11.36–38
11. विष्णु पु0, 2.4.69–70

में मगों को शाकद्वीप की चार जातियो में उल्लिखित किया गया है। इसी प्रकार भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि शाकद्वीप में निवास करने वाले ब्राह्मण मग, क्षत्रिय मगग, वैश्य गानग तथा शूद्र मदंग नाम से ख्यात हैं।[1] भविष्य पुराण के अनुसार जम्बूद्वीप में सूर्य की पूजा के लिए शाकद्वीप से मग ब्राह्मणों को साम्ब द्वारा लाया गया।[2] मगों के आगमन एवं सूर्य मंदिर से उनके तादात्म्य का उल्लेख साम्ब पुराण[3] तथा ब्रह्मपुराण[4] में भी प्राप्त होता है। आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि इनके मूल कारण सूर्य हैं। ये सूर्य की नित्य पूजा करते हैं, अत. इन्हें पूजक कहा जाता है।[5] मग लोग वेदाध्ययन करते हैं, अतएव उन्हें वेदांग होना भी बताया गया है।[6] मगों को प्रधान सूर्य मंत्र द्वारा विधान पूर्वक यज्ञों को निष्पन्न करने के कारण याज्ञिक भी कहा गया है।[7] ब्राह्मणो के लिए जिस प्रकार अग्निहोत्र प्रसिद्ध है, उसी भाँति मगों के लिए अध्वहोत्र बताया गया है।[8] साम्ब पुराण में भी मगों को वेदवादी परम्परा के ब्राह्मणों में रखा गया है।[9] नेपाल से प्राप्त हुई पाण्डुलिपि (550 ई0) मे भी उन्हें ब्राह्मणों के समान ही विशेष महत्व एवं सम्मान प्रदान किया गया है।[10] टॉलमी (द्वितीय शती ई0) ने भी मगों को ब्राह्मण प्रतिपादित किया है।[11] मग प्राचीन भारतीय समाज में सम्यक् रूपेण घुल मिल गए थे। आज भी राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा उत्तर भारत के अन्य भागों में फैले हुए हैं।[12]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 139.70-74
2. वही, 139 82,140.1
3. साम्ब पु0, 26.27-29
4. ब्रह्म पु0--अध्याय 20
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व,140.34
6. वही, 140.38
7. वही, 140.47-48
8. वही, 140.49
9. साम्ब पु0,26.48
10. इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1911, जनवरी, पृ018
11. जे0 डब्ल्यू0 मैक्रेन्डिल, एन्शिएण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाई टॉलमी, पृ0 170
12. डी0 मित्र, फॉरेन एलीमेण्ट्स इन इण्डियन पापुलेशन, पृ0 1613- 1615

मग धर्म

भविष्य पुराण के अनुसार सभी जाति के लोग मग धर्म अपना सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा स्त्री कोई भी मग धर्म अपना कर सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती हैं।[1] मगों को चाहिये कि प्रयत्न पूर्वक मुखाच्छन्न कर शक्त्यानुसार तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा एवं अग्निकार्य सम्पन्न करते रहें।[2] मगों को सूर्य की पूजा किए बिना कभी भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिये।[3] मगों को अपनी आय के तिहाई भाग से जीविका निर्वाह करना चाहिये।[4] न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करना चाहिये।[5] भोजकों को अव्यड्.ग अवश्य धारण करना चाहिये।[6] अन्यश्च भोजकों को 'अष्टव्रत' धारण करना चाहिये।[7] सूर्य भक्त को सदैव क्षमा, अहिंसा, शान्ति, संतोष, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि इन्हें अपनाते हुए मनसा वाचा तथा कर्मणा यथा शक्ति सूर्य की पूजा करनी चाहिये।[8] भोजकों को पवित्र देश में विधिपूर्वक आचमन के उपरान्त सूर्य को नमस्कार करने से पवित्रता प्राप्त होती है, अन्यथा वह नास्तिक कहा जाता है।[9] जो भोजक विधिपूर्वक एवं विस्तारपूर्वक धूप दान करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।[10] धूप माला एवं उपहार प्रदान पूर्वक सूर्य को भोजन कराने के नाते वे भोजक कहे जाते हैं।[11]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 171.4
2. वही, 171.5
3. वही, 171.6
4. वही, 171.13
5. वही, 171.14
6. वही, 171.19
7. वही, 171.23
8. वही,171.24-25
9. वही, 143.12
10. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 143.49
11. वही, 144.26

आलोचित पुराण में आख्यात है कि भोजकों के शरीर में सूर्य सदैव सन्निहित रहते हैं, अत. जो कोई भी भोजकों का त्याग करते हैं, वे समस्त पाप कर्म के भागी होते हैं तथा नरकगामी होते हैं।[1]

अव्यड्.ग

आलोचित पुराण में अव्यड्.ग के बारे में आख्यात है कि वासुकी ने अपने केंचुल को सूर्य के प्रसन्नार्थ, समर्पित किया था, इसे ही अव्यड्.ग कहते है।[2] भोजकों को अव्यड्.ग अवश्य धारण करना चाहिये। जो भोजक विधानपूर्वक उसे धारण नही करता वह सदाचार से भ्रष्ट हो जाता है और वह सूर्य की पूजा नहीं कर सकता।[3] भोजकों के संस्कार किए जाने पर भी बिना उसे धारण किए वे पवित्र नहीं होते।[4] यह ऋद्धि, वृद्धि एवं शरीर शुद्धि करने वाला सर्वदेवमय तथा सर्ववेदमय है।[5]

अव्यड्.ग, पतितांग, अर्हक और सार ये सभी अव्यड्.ग के नाम हैं।[6] इसे एक ही रंग का बनाना चाहिये। इससे कार्य की सफलता प्राप्त होती है। यह अंगुल के प्रमाण से दो सौ अंगुल का होता है। यही सर्वोत्तम प्रमाण कहा गया है।[7]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 188.21
2. वही, 142.2-3
3. वही, 142.6-7
4. वही, 142.13
5. वही,142.20 -24
6. वही, 142. 14- 15
7. वही, 142.9-10

अभोज्य ब्राह्मण

भविष्य पुराण मे कतिपय ऐसे ब्राह्मणों का भी उल्लेख मिलता है, जिन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, यथा– रंगोपजीवी, नक्षत्रसूचक, निन्दक और देवलक ब्राह्मण। जो ब्राह्मण किसी सभा आदि जनसमूहों में उच्च स्वर से गायन करता है उसे 'रंगोपजीवी' कहते हैं।[1] जो ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन करके नक्षत्रों की सूचना देते फिरते हैं, उन्हें 'नक्षत्र सूचक' कहा जाता है।[2] ये भी अभोज्य बताए गए हैं। अकारण जो परोक्ष में किसी दोष का वर्णन एवं गुण का छिपाव करते हैं, उन्हें 'निन्दक' कहा जाता है।[3] जो ब्राह्मण जीविका के नाते देवालयों में देवता के पूजन आदि का कार्य करते हैं तथा वहाँ के आधिपत्य स्वीकार कर देवता के लिए समर्पित किए गए नैवेद्य का भक्षण भी करते हैं, वे भी अभोज्य हैं। ऐसे ब्राह्मणाधम 'देवलक ब्राह्मण' कहे जाते हैं।[4]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 210.42

2. वही, 210.43, 210.47– 48

3. वही, 210.49

4. वही, 210.49–51

क्षत्रिय

आलोचित पुराण में क्षत्रिय को ब्रह्मा की भुजाओं से उत्पन्न बताया है।[1] क्रूरता, तेज, धैर्य, युद्ध में चतुरता और युद्ध से न भागना, दान और प्रभुत्व क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म बताए गए हैं।[2] एक अन्य स्थल पर आख्यात है कि क्षत्रिय अपने पराक्रम से ज्येष्ठ होते हैं।[3] वैदिक काल से ही क्षत्र शब्द पराक्रम के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है।[4] यदाकदा क्षत्रिय शब्द देवताओं के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।[5] कतिपय ऋचाओं में क्षत्रिय का अर्थ राजा या उच्च वर्ग का व्यक्ति है। पुरूष सूक्त में 'राजन्य' शब्द का प्रयोग मिलता है।[6] अथर्ववेद मे यह क्षत्रिय के अर्थ में गृहीत किया गया है।[7] धर्मसूत्रों एव स्मृतियों मे क्षत्रिय शब्द का ही अधिकांशत प्रयोग हुआ है। यही परम्परा पुराणों में भी विद्यमान रही है।

भविष्य पुराण में आख्यात है कि जो अधिक शक्तिशाली होने के नाते सभी (जनता) को अपनाने एवं उन्हें नष्ट होने से बचाने का कार्य करेंगे वे क्षत्रिय कहलाएँगे।[8] मनु ने भी क्षत्रिय धर्म का उल्लेख करते हुए कहा है कि क्षत्रिय का धर्म जनता की रक्ष करना है।[9] पद्म पुराण में उल्लिखित है

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व,
2. वही, 44.24-27
3. वही, 4.99
4. ऋग्वेद, 1.157.2
5. अथर्ववेद, 7.64.2
6. "बाहु. राजन्य· स्मृतः।"
7. अथर्ववेद, 10.109.3
8. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 44.20
9. मनुस्मृति, 10.80, "क्षत्रियस्य च रक्षणम्।"

कि युद्ध माँगने पर यदि वीर पुरूष शत्रु से नहीं लड़ता तो उसे सहस्त्रयुग तक कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ता है।[1] अतः युद्ध में लड़ना क्षत्रिय का परम धर्म है।[2] श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा कि क्षत्रिय का कर्त्तव्य युद्ध क्षेत्र में जूझ कर मर जाना है।[3] वामन पुराण में आख्यात है कि क्षत्रिय का प्रमुख कर्त्तव्य युद्ध है।[4] मत्स्य पुराण में क्षत्रियों के लिए धनुर्वेदमें निपुणता अनिवार्य मानी गई है।[5] ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि जो क्षत्रिय लड़ाई के मैदान से नहीं भागते उन्हे इन्द्र लोक में स्थान मिलता है।[6] विष्णु पुराण में यह वर्णन आता है कि क्षत्रिय को चाहिये कि वह शस्त्र को ही अपनी जीविका समझे।[7]

वैश्य

भविष्य पुराण में लिखा है कि वैश्य ब्रह्मा के उरू से उत्पन्न हुए हैं।[8] आलोचित पुराण में पशुओं की रक्षा, दान, यज्ञाराधन, अध्ययन, वाणिज्य, व्याज लेकर कर्ज देना और कृषि ये सभी वैश्यों के कर्म बताए गए हैं।[9] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि जो लोग निर्बल होते हुए भी पृथ्वी की

---

1. "परेण याचितं युद्धं न ददाति यदा भट.।
   कुम्भीपाके स नरके वसेत् युगसहस्रकम्।।"
   पद्म पु0, भूमिखण्ड, 42.52–53
2. "क्षत्रियाणां परो धर्मो.युद्धं देयो न संशय ।" पद्म पु0, भूमिखण्ड, 42.54
3. "स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
   धर्म्याद्धियुद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।।" गीता, 2.31
4. वामन पु0, 13.12.13
5. मत्स्य पु0, 215.8
6. ब्रह्माण्ड पु0, 2.7.165
7. विष्णु पु0, 3.8.27
8. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 2.120
9. वही, 2.123

गहरी जुताई, कृषि कार्य एवं व्यापार करते हैं वे वैश्य हैं।[1] वैश्य धन से ज्येष्ठ होता है।[2] अत वैश्यों का धन संयुक्त नाम रखना चाहिये, यथा–धनवर्धन।[3]

प्राक्पौराणिक ग्रंथो में वैश्य के लिए 'विश्' शब्द उल्लिखित मिलता है। ऋग्वेद में वैश्य शब्द मात्र पुरूष सूक्त में प्राप्त होता है, परन्तु विश् शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। ऋग्वेद में एक स्थल पर 'विश्' का अर्थ समस्त आर्य लोगों से है।[4] विश् के साथ जन का प्रयोग भी पाया जाता है। ये दोनों शब्द प्राय समानार्थी हैं। कतिपय पुराणों में यथा वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों में वैश्य के लिए 'विश' का प्रयोग हुआ है।[5] मत्स्य पुराण में भी एक स्थल पर वैश्य के अर्थ में 'विश्' शब्द का प्रयोग किया गया है।[6]

वैश्यों के कर्त्तव्यों का उल्लेख करते हुए विष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने पशुपालन, वाणिज्य और कृषि वैश्य को जीविका के रूप मे दिया था।[7] वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में भी पशुपालन, वाणिज्य और कृषि वैश्यों के लिए ब्रह्मा द्वारा जीविका बताई गई है।[8] मत्स्य पुराण में वैश्य का कर्त्तव्य वाणिज्य और कृषि बताया है।[9] मनु ने लिखा है कि व्यापार, सूदखोरी, खेती और पशुओं

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, . 44.22
2. वही, 4.9
3. वही, 3.9
4. ऋग्वेद, 8.63.7
5. वायु पु०, 59.21, ब्रह्माण्ड पु०, 2.31.22
6. मत्स्य पु०, 142.50
7. विष्णु पु०, 3.8.30
8. वायु० पु०, 8.165, ब्रह्माण्ड पु०, 2.7.162
9. मत्स्य पु०, 2.7.162

की रक्षा करना वैश्यों का कर्त्तव्य था।[1] वैश्यों को अपने कर्त्तव्य का पालन प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये क्यों कि उनके धर्म से च्युत हो जाने पर यह संसार क्षुब्ध हो जाता है।[2] खेती, गायों का पालना तथा व्यापार वैश्यों का स्वाभाविक कर्म बताया है। आलोचित पुराण में भी खेती, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्य के स्वाभाविक कर्म उल्लिखित हैं।[3]

आलोचित पुराण में एक स्थल पर आख्यात है कि भेड़, बकरी एवं भैंस पालने वाले, वृषली पति, स्वधर्महीन क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, शिल्पी, राजगीर, वेश्याएँ आदि नरकगामी होते हैं।[4] एक अन्य स्थल पर सूर्य स्वयं कहते हैं कि मेरे अंग में लगे हुए गन्ध, पुष्पादि को वैश्य या शूद्र को कभी न दें।[5] उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में वैश्यों का स्थान पूर्व की अपेक्षा निम्न समझा जाने लगा था तथा वैश्यों को भी शूद्र के समकक्ष रखा जाने लगा था।

शूद्र

आलोचित पुराण में यद्यपि शूद्रों की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं दर्शाई गई है तथापि उन्हें उन्नति के अधिकार भी प्रदान किए गए हैं। विभिन्न कालखण्डों में शूद्रों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन की सूचना प्राचीन ग्रंथो में प्राप्य है। ऋग्वेद के पुरूष सूक्त मे शूद्रों की उत्पत्ति पुरूष के

---

1. मनुस्मृति, 8.140, "वाण्ज्यि कारयेत् वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च। पशुनां रक्षणं चैवं।"
2. मनुस्मृति, 8.418
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 44.26
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 191.14-15
5. वही, 117.65-66

पैरों से बताई गई है– पदम्यां शूद्रोऽजायत्। अत पैरों से उत्पन्न होने के कारण उनकी स्थिति समाज में नीची समझी जाती थी। आलोचित पुराण में भी आख्यात है कि शूद्रो की उत्पन्ति ब्रह्मा के चरणों से हुई।[1] तीनों वर्णों की सेवा करने वाले निस्तेज एवं अल्पशक्ति वालों को शूद्र कहा गया है।[2] सेवा करना शूद्रों का स्वाभाविक कर्म उल्लिखित है।[3] गीता में भी लिखा है कि शूद्र का कार्य इतर तीनों वर्णों की सेवा करना है।[4] आपस्तम्ब ने भी इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है।[5] स्मृति चन्द्रिका में उशनस् का उद्धरण देते हुए कहा गया है कि शूद्र का धर्म द्विजों की सेवा करना, शिल्पों की जानकारी तथा विभिन्न वस्तुओं को बेचना है।[6]

शूद्रों की स्थिति समाज में हीन एवं नीच थी। वे वेद का अध्ययन नहीं कर सकते थे। व्यास की शतसाहस्री संहिता में लिखा है कि चूँकि शूद्र तथा स्त्रियों के लिए वेदों का सुनना निषिद्ध है, अत व्यास मुनि ने कृपा करके भारत महाभारत. नामकआख्यान की रचना की। इस प्रकार शूद्रों की स्थिति स्त्रियों के समान थी। आलोचित पुराण में आख्यात है कि शूद्र, म्लेच्छ और स्त्री के हाथ से हवन के लिए अग्नि नहीं लेनो चाहिये।[7] किसी शूद्र अथवा ब्राह्मण ब्रुव को मण्डल रचना नहीं करनी चाहिये।[8] शूद्रों को तप अध्यापन आदि कोई भी धार्मिक प्रवचन न करना चाहिये, उसी भाँति परलोक

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 2.120
2. वही, 44.23
3. वही, 44.27
4. गीता, 18.44
5. आपस्तम्ब ध0सू0, 1.1.1.7
6. स्मृति चन्द्रिका, पृ0 171
7. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.15.4–5
8. वही, 2. 1. 20

धर्म एवं उत्तम गति की प्राप्ति के लिए चेष्टा भी नहीं करनी चाहिये।[1] शूद्रों को विशेषकर शब्दशास्त्र (व्याकरण) का अध्ययन वर्जित है क्योंकि ब्रह्मयोनि ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणों का दास बनाया है।[2] आलोचित पुराण में आख्यात है कि शूद्रों के मुख से निकले धार्मिक संस्कृत शब्द श्रवण मनन के अयोग्य हैं।[3] राजाओं को शास्त्रीय अथवा वैदिक धर्मों के उपदेष्टा शूद्रों का वध तथा चक्र अस्त्र द्वारा उनकी जिह्वा काट लेनी चाहिये।[4] कहीं भी किसी भोज में ब्राह्मण के यहाँ शूद्र देने वाला एवं शूद्र के यहाँ ब्राह्मण भोजन देने वाला (परोसने वाला) हो तो उन दोनों के अन्न अभोज्य बताए गए हैं।[5] शूद्र के अन्न, शूद्र के साथ सम्पर्क रखना, शूद्र के साथ निवास करना एवं शूद्र द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करना ये सभी अग्नि के समान ब्राह्मण का भी अधः पतन करा देते हैं।[6] शूद्र को कपिला गौ का अपहरण कभी नहीं करना चाहिये। जो शूद्र कपिला गौ का दूध पीता है वह महाघोर नरक में समुद्र मे चिरकाल तक संतप्त रहता है।[7] उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भले ही वे विभिन्न पेशों में निपुण बन चुके हों, किंतु शूद्र को सदैव तीनों वर्णों की तुलना में हेय स्थिति में ही रखा गया है।

अन्यान्य धर्मशास्त्रों में भी शूद्रों की हेय स्थिति का उल्लेख मिलता है। जैमिनीय ब्राह्मण में कहा गया है कि शूद्र की उत्पत्ति प्रजापति के चरणों से हुई है। गृहस्वामी उसके देवता हैं और उनका

---

1. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, . 1.7.117
2. वही, 1.7.11 8
3. वही, 1.7.11 9
4. वही, 1.7.120 – 121
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 184.1–19
6. वही, 184.21
7. वही, 17.50–51, 163.12

चरण पखार कर ही उसे अपना जीवन निर्वाह करना चाहिये।[1] उपनयन, वेदाध्ययन और अग्निस्थापन केवल उन्हीं लोगों के लिए फलदायक हो सकते हैं, जो शूद्र नहीं हैं और कुकर्मों में नहीं फँसे है।[2] दौहायप श्रौत सूत्र में उल्लिखित है कि उपनीत छात्र को शूद्र से बातचीत नही करनी चाहिये।[3]

धर्मसूत्रो मे शूद्र के लिए वेदाध्ययन निषिद्ध था। जिसके फलस्वरूप वे यज्ञों एवं धार्मिक कृत्यो मे भाग नहीं ले सकते थे। क्योंकि इनमे केवल वैदिक मत्रो का प्रयोग होता था।[4] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी उल्लिखित है कि यज्ञ के लिए शूद्र अग्नि स्थापन नही कर सकता था।[5] वह किसी संस्कार का अधिकारी नही था।[6] वैदिक यज्ञ से तो उसका बहिष्कार इस सीमा तक कर दिया गया कि कुछ धार्मिक कृत्यों मे तो उसकी उपस्थिति वर्जित थी और उसे देखना भी मना था।[7] बौधायन सूत्र में वर्णित शूद्रों की हीनावस्था का अनुमान इस उल्लेख से किया जा सकता है कि शूद्र की हत्या करने वाले को मात्र वही दण्ड दिया जा सकता है, जो श्वान, मार्जार, मेढक, काक अथवा उलूक की हत्या करने वाले को दिया जाता है।[8]

---

1. जैमिनीय ब्रा0, 1.68–69, विशेष द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 43
2. सत्याषाढ़ श्रौ0 सू0, 26.1.6, विशेष द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों प्राचीन इतिहास, पृ0 43
3. दौहायण श्रौ0 सू0, 7.3.14. विशेष द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 43
4. आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 109
5. आपस्तम्ब ध0सू0, 1.1.1.6, द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन प्राचीन इतिहास, पृ0 110
6. वशिष्ठ ध0 सू0, 4.3, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 110
7. पारस्कर गृ0 सू0,2.8.3, द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 110
8. बौधायन ध0 सू0, 110.19, 1.6

वह श्मशान के सदृश अपवित्र एवं तिरस्कृत था।[1] गौतम धर्मसूत्र की व्यवस्थानुसार शूद्र निजी धन संग्रह का अधिकारी नही था। न ही अपने संग्रहीत धन को अपने उपयोग में खर्च कर सकता था। उसके द्वारा संचित धन उसके स्वामी अर्थात् द्विज वर्ण वाले व्यक्ति का होता था।[2] बौद्ध ग्रंथों में बार-बार प्रथम तीन वर्णों के लोगों को धन-धान्य से परिपूर्ण बताया गया है, किंतु दासें, शूद्रों एवं कम्मकारों की चर्चा भी नहीं की गई है।[3]

मनु ने उच्चवर्णों के लोगों के प्रति अपराध करने वाले शूद्रों के लिए कठोर दण्ड विहित किए हैं। कोई शूद्र यदि किसी द्विज को गाली देकर अपमानित करता है तो उसकी जीभ काट ली जाएगी।[4] यदि कोई शूद्र द्विज के नाम और जातियों की चर्चा तिरस्कार पूर्वक करे तो दस अंगुल लम्बी गर्म लाल लोहे की काँटी उसके मुँह में ठूँस दी जाएगी।[5] मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि ब्राह्मण के शव को शूद्र नहीं ढोएगा, क्योंकि शवरूप में भी शूद्र के स्पर्श से दूषित हो जाने पर उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।[6] इस प्रकार वे ब्राह्मण और शूद्र में मरने के बाद भी विभेद करना नही छोड़ते। जायसवाल की राय है कि ये नियम धर्म प्रचार करने वाले विद्वान शूद्रों, अर्थात् बौद्धों या जैन शूद्रों और उसी तरह अन्य शूद्रों के लिए बनाए गए हैं जो उच्च

---

1. बौद्धायन ध0 सू0, 4.3
2. गौतम ध0 सू0, 10.64-65
3. अंगुन्तर निकाय, भाग 4, पृ0 239, संयुक्त निकाय, भाग 4, पृ0 239, जातक, भाग 1, पृ0 49, विशेष द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 122
4. मनुस्मृति, 8.270
5. मनुस्मृति, 8.271
6. मनुस्मृति, 5.104

वर्णों के साथ समानता का दावा करते है।[1] के0 वी0 रगास्वामी आयंगर के अनुसार ये नियम मनु के उन राजनीतिक विरोधियों के प्रति उद्दिष्ट हैं जो सुस्थापित व्यवस्था का निरादर करते हैं।[2] किंतु बाशम का कथन है कि इस तरह के नियम कट्टरपंथियों के प्रलाप थे और उनपर शायद ही अमल किया गया हो।[3]

शूद्रों को उन्नति के अधिकार

आलोचित पुराण में शूद्रों को उन्नति के अधिकार भी प्रदान किए गए हैं। वे अपनी तपस्या, त्याग, सदाचार तथा व्रत से महात्मा के पद को भी प्राप्त कर सकते थे। शूद्रों को पुराण श्रवण का अधिकार दिया गया।[4] भास्कर की विधि-पूर्वक पूजा करने से शूद्र भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सकता है।[5] आलोचित पुराण में आख्यात है कि अपने से निम्न कोटि के व्यक्ति से भी कल्याणदायिनी विद्या श्रद्धापूर्वक लेनी चाहिये। शूद्र के पास भी यदि कोई श्रेष्ठ धर्म है तो उसे लेना चाहिये।[6] इसी पुराण में ययाति के कुल में उत्पन्न चक्रवर्ती एवं महाबली सत्राजित नामक राजा की कथा उल्लिखित है, जो पूर्व जन्म में शूद्र था। उसने सूर्य का अनन्य भक्त होकर निष्काम भाव से नित्य उनकी पूजा की जिसके फलस्वरूप वह इस जन्म में उसे

---

1. के0 पी0 जायसवाल, 'मनु एवं याज्ञवल्क्य', पृ0 150
2. के0 वी0 रंगास्वामी आयंगर, आस्पेक्ट्स ऑफ दि पॉलिटिकल एण्ड सोशल सिस्टम ऑफ मनु, पृ0 132
3. ए0 एल0 बाशम, वण्डर दैट वॉज इण्डिया, पृ0 80
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 1.72-73
5. वही, 64.58-60
6. वही,4.207

अतुलनीय सम्पत्ति प्राप्त हुई तथा वह राजा हुआ।[1] प्रस्तुत पुराण में आख्यात है कि सूर्यमण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं कुलीन शूद्र तथा स्त्रियाँ दीक्षित होती हैं।[2] पद्म पुराण मे शूद्रों को देवताओं का नाम लेकर अर्चन करने का अधिकार भी दिया है।[3]

भारतीय संस्कृति में शिल्प व्यवसाय प्रधानत: शूद्रों के हाथ में था, यद्यपि अन्य जातियों के लोग भी शिल्प सीखते थे। जातक साहित्य में अनेक शिल्पाचार्यों के नाम मिलते हैं जो शूद्र ही थे।[4] परवर्ती युग में भी केवल वैदिक साहित्य ही शूद्रों को नहीं पढ़ाया जाता था। पञ्चम वेद, नाट्यशास्त्र और महाभारत आदि तो सभी वर्णों के अध्यापन के लिए नियत हुए।[5] गौतम के एक परिच्छेद की टीका करते हुए मस्करिन ने इसी तरह की शिक्षा का उल्लेख किया है। उन्होंने स्मृतियों से उद्धरण प्रस्तुत किए हैं जिनमें बताया है कि निषाद को हस्तिप्रशिक्षण (पीलवानी) की शिक्षा दीक्षा दी जानी चाहिये।[6] इस आधार पर आर0 एस0 शर्मा का विचार है कि शूद्रों को कला और शिल्प का प्रशिक्षण तो दिया जा सकता था, किंतु वेद के अध्ययन से वंचित रखा गया।[7] वायु पुराण में भी शूद्रों के दो प्रधान कर्म उल्लिखित हैं-शिल्प कर्म एवं भृत्य

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 116.1–93
2. वही, 149.22
3. पद्म पु0, पातालखण्ड, 84.53
4. सूची जातक– 387, उपाहन जातक–231, दुब्बच जातक– 116, विशेष द्रष्टव्य, राम जी उपाध्याय, भारत की संस्कृति साधना, पृ0 61
5. राम जी उपाध्याय, भारत की संस्कृति साधना, पृ0 61
6. गौतम ध0 सू0, 4.26, द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 43
7. आर0 एस0 शर्मा, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, पृ0 109

कर्म।[1] मनु ने काष्ठ शिल्प, धातु शिल्प, भाण्ड शिल्प तथा चित्रकला आदि शिल्पों के लिए शूद्रों को अनुमति प्रदान की थी।[2] मनु ने यह व्यवस्था दी थी कि श्रद्धायुक्त होकर अपने से अवर वर्ण से भी द्विज वर्ण के लोगों को उत्तम विद्या ग्रहण करनी चाहिये।[3] यह अनुमति एवं मान्यता उस स्थिति में प्रदान की गई जब शूद्रों का एक वर्ग उक्त शिल्पों में सफलता एवं श्रेष्ठता स्थापित कर लिया होगा। आलोचित पुराण में भी शूद्रों के दो वर्ग प्रतीत होते हैं। एक स्थल पर 'कुलीन शूद्रों' का उल्लेख है जिन्हें सूर्य-मण्डल में दीक्षा लेने का अधिकार दिया है।[4] इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर आख्यात है कि जो दुकान या घर मे शराब न रखे, न उसका व्यापार करे वह सत् (स्पृश्य) शूद्र बताया गया है।[5] जिससे प्रतीत होता है कि शूद्रों के स्पृश्य एवं अस्पृश्य दो वर्ग थे।

चाण्डाल

ब्राह्मण स्त्री तथा शूद्र पुरूष से उत्पन्न संतान को चाण्डाल कहा गया है।[6] आलोचित पुराण के अनुसार यदि कुलटा(व्यभिचारिणी) ब्राह्मणी नित्य अपने पति का त्याग कर किसी अन्य ब्राह्मण के घर जाती है तो उस ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न संतान को चाण्डाल एवं महाचाण्डाल कहा जाता है।[7] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है किसी धर्मानुष्ठान में पतित होने

---

1. वायु पु0, 8.163, ब्रह्माण्ड पु0, 2.7.163
2. मनुस्मृति, 10.100
3. मनुस्मृति, 5.238
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 149.22
5. वही, 44.32
6. मनुस्मृति, 10.12
7. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 184. 15-16

वाले ब्राह्मण की संतान एवं वृषल ब्राह्मण इन दोनों को ही चाण्डाल जानना चाहिये।[1] चाण्डाल के साथ भाषण करना अच्छा नहीं माना जाता था।[2] उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि आचरण से च्युत व्यक्ति भी, चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो, अपने निकृष्ट कर्मों से चाण्डाल जाति को प्राप्त होता था।

मनु के अनुसार ये मनुष्यों में सबसे नीच थे।[3] चारों वर्णों के लिए विहित धार्मिक कृत्यों से बहिष्कृत थे – सर्वधर्मबहिष्कृतः।[4] उशनस् के मतानुसार चाण्डालों का आभूषण सीसा व लोहे का बना होना चाहिये। उनको अपने गले में झांझ या मजीरा पहन कर चलना चाहिये या चमड़े का पट्टा डालना चाहिये।[5] विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार इनका पेशा जल्लाद का है और ये लोग मृत व्यक्ति के वस्त्रों को लेकर पहनते है।[6] बाण ने कादम्बरी में अलौकिक सौंदर्य से सम्पन्न किसी चाण्डाल कन्या का उल्लेख किया है जो अस्पृश्य जाति की थी।[7] फाह्यान ने लिखा है कि चाण्डाल लोग गाँव के बाहर रहते थे। वे नगर या बाजार मे जाते समय अपने जाने की सूचना लकड़ी के दो टुकड़ों को बजाकर किया करते थे, जिससे लोग उनका स्पर्श न कर सकें।[8]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 184.14
2. वही, मध्यमपर्व, 1.5.71
3. मनुस्मृति, 10.12
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.93
5. उशनस् स्मृति, 9.10
6. विष्णु ध0 सू0, 16.11–14
7. कादम्बरी प्रथम उच्छ्वास
8. लेगी, रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट किंगडम्स, पृ0 43

भविष्य पुराण में वर्णित आश्रम व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था का महत्व

वर्णाश्रम भारतीय संस्कृति का प्रधान स्वरूप है। मनुष्यों के विकास के लिए चार आश्रमों की सीढ़ियाँ बताई गई हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम। सन्यास अन्तिम ध्येय है। अन्त में अनासक्त जीवन ही प्राप्तव्य है। भारतीय संस्कृति कहती है कि मनुष्य जन्मत. तीन ऋण लेकर आता है– ऋषि ऋण, पितृ ऋण और ईश्वर ऋण। ब्रह्मचर्य आश्रम में उत्तम ज्ञान सम्पादन करके हम ऋषि ऋण से उऋण होते है। गृहस्थाश्रम में सन्तति पैदा करके उसका ठीक तरह से पालन पोषण करके हम पितृ ऋण से उऋण होते हैं। वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम द्वारा सारे समाज की सेवा करके हम ईश्वर ऋण से उऋण होते हैं।

आलोचित पुराण में आख्यात है कि चारों वर्णों एवं आश्रमों में रहने वाले का शास्त्रों पर मुख्य एवं अमुख्य रूप से अधिकार जानना चाहिये।[1] वामन पुराण में उल्लेख आता है कि चारों वर्ण अपने आश्रम में अवस्थित होकर धर्म कार्य में प्रवृत्त हुए।[2] महाभारत के अनुसार उक्त चारों आश्रम ब्रह्म तत्व की प्राप्ति के सोपान हैं।[3] वामन पुराण में वर्णाश्रम धर्म की महत्ता इस दृष्टि से स्थापित की गई है कि इसका जो त्याग करता है उस पर सूर्य क्रुद्ध होते हैं, जिससे रोगवृद्धि एवं कुलनाश होता है।[4] वर्णाश्रमोक्त धर्मों का इस लोक में त्याग नहीं करना चाहिये।[5]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 9.14
2. वामन पु०, 7.25
3. महाभारत (क्रिटिकल एडिशन), 12.34.15
4. वामन पु०, 15.64–65
5. वही, 15.64

विष्णु पुराण में यम अपने अनुचरों को हिदायत देते हैं कि वे विष्णु के उपासकों को हाथ न लगाएँ क्योंकि वे वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं।[1] भविष्य पुराण में चारों आश्रमों में चार प्रकार के सुखों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मानन्द महान उत्तम बताया गया है। गृहस्थाश्रम में विषयानन्द कहा गया है, जिसे विद्वानों ने मध्यम श्रेणी का रखा है। वानप्रस्थ में धर्मानन्द कहा गया है। सन्यासाश्रम में शिवानन्द कहा गया है, वही सर्वोत्तम एवं परमोत्तम आनन्द है।[2]

आश्रमों की प्राचीनता के संबंध में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत दिए हैं। रिज डेविड्स[3] का मत है कि जीवन के चारों आश्रमों का प्रचलन बुद्ध के पश्चात् हुआ अथवा पिटक की रचना के बाद हुआ क्योंकि इन रचनाओं में आश्रमों का उल्लेख नहीं किया है। अपने मत की पुष्टि में वे कहते हैं कि प्राचीन उपनिषदों में चारों आश्रमों के नाम भी नहीं पाए जाते। ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। यति का सन्यासी अर्थ में दो या तीन स्थानों पर लेकिन गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षु का कहीं नहीं। किंतु इनका मत उचित प्रतीत नहीं होता। डा0 जैकोबी के अनुसार चारों आश्रम जैन और बौद्ध धर्म से पुराने हैं।[4] नरेन्द्र नाथ ला[5] का कथन है कि आश्रम शब्द का व्यवहार आरम्भिक समय से तो नहीं है परन्तु इस बात से असहमति नहीं रखी जा सकती कि इसका अस्तित्व आर्यों के आरम्भिक समाज से है। ब्रह्मचारी[6] गृहस्थ[7]

---

1. विष्णु पु0, 3.7.20
2. भवि0 पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 2.11.4-7
3. रिज डेविड्स, द डायलॉग ऑफ द बुद्ध, भाग 1, पृ0 212
4. जैकोबी, जैन सूत्राज (अनुवादक जैकोबी) इन्ट्रोडक्शन, पृ0 29
5. नरेन्द्र नाथ ला, स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ0 3
6. ऋग्वेद, 10.109.5
7. "---ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे।" ऋग्वेद, 2.1.2, 10.85.36

और मुनि या यति[1] के उदाहरण वैदिक ग्रन्थो में मिलते है। काणे[2] के अभिमत से निश्चित होता है कि 'जाबालोपनिषद्' मे सबसे पहले चारों आश्रमो का उल्लेख हुआ है। अत. व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के चार भागों में विभाजित होने के संदर्भ में प्राचीनतम है।

ब्रह्मचर्य

भारतीय शिक्षण में विद्यार्थी जीवन तपोमय माना गया है। लोगों की धारणा रही है कि तप के द्वारा ही मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ ज्ञान की ओर प्रवृत्त हो सकती हैं। विद्या प्राप्ति के लिए मार्ग के सांसरिक बन्धन भोग- विलास अथवा मनोरंजन को बाधक माना गया है। 'ब्रह्मचर्य' शब्द उसी तपोमय जीवन का प्रतीक है।[3] अमरकोश में वेद को ही ब्रह्म कहा गया है और ब्रह्म के संबंध में आचरण को स्वाभाव बना लेना ही ब्रह्मचर्य है।[4] इस आश्रम का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से ही होता है।[5] पौराणिक युग मे विद्याध्ययन के अधिकारी की योग्यता का मानदण्ड पूर्ववत् मिलता है। कृतज्ञ, द्रोह न करने वाले, मेधावी, गुरू बनाने वाले, विश्वासपात्र और प्रिय व्यक्ति अध्यापन के योग्य समझे जाते थे।[6] स्कन्द पुराण के अनुसार साधु, विश्वासपात्र, ज्ञानवान, धन देने वाले, प्रतिभाशाली, दोष दृष्टि न रखने वाले तथा पवित्र विद्यार्थी को धार्मिक कर्त्तव्य समझकर पढ़ाने का विधान था।[7]

---

1. ऋग्वेद, 8.3.9
2. पी0 वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग 2, पृ0 422
3. ब्रह्मचर्य वह चर्य है जो ब्रह्म प्राप्ति के लिए आवश्यक है। महाभारत में ब्रह्मविद्या के संबंध में कहा गया है कि " विद्या हि सा ब्रह्मचर्येणाभ्या।" उद्योगपर्व, 44.21
4. अमरकोश- "ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थं व्रतमुपचाराद् ब्रह्म। ब्रह्मचरितुं शीलमस्य।"
5. मनुस्मृति, 2.173
6. पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड, 53वाँ अध्याय। विशेष द्रष्टव्य, राम जी उपाध्याय, भारत की संस्कृति साधना, पृ0 58
7. स्कन्द पु0, काशीखण्ड, पूर्वार्ध, 36.15

ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य

आलोचित पुराण में आख्यात है कि ब्रह्मचारी को शनै शनै परिशुद्ध आत्मा होकर गुरू के आश्रम में निवास करते हुए ब्रह्मा को प्राप्त करने वाले तप का संचयन करना चाहिये।[1] ब्रह्मचारी को गुरू के समीप निवास करते हुए अपनी तप. शक्ति को बढ़ाने के लिए अपने इन्द्रिय समूहों को वश में करना चाहिये।[2] आलोचित पुराण में भिक्षाटन के उन नियमों का भी उल्लेख मिलता है, जिनका पालन ब्रह्मचारी को करना चाहिये। जो अपने कर्म में निरत हों, वेदों में आस्था रखते हों, यज्ञादि करने वाले और श्रद्धालु प्रकृति के हों उनके घर से ब्रह्मचारी को भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।[3] अपने गुरू के एवं परिवार वर्ग के घर भिक्षाटन नहीं करना चाहिये।[4] ब्रह्मचारी भिक्षाटन और अग्नि में हवन कार्य इन दोनो नैतिक कर्मों का पालन यदि नहीं करता तो उसे सात रात तक सुस्थिर एवं व्यवस्थित चित्त से अवकीर्ण प्रायश्चित का पालन करना चाहिये।[5] आँख में अंजन लगाना, शरीर में उबटन लगाना, जूता, छाता, कामजनित संकल्प, क्रोध, लोभ, गीत, वादन, नाचना, द्यूत क्रीड़ा, असत्य प्रचार, असत्य भाषण तथा परकीय निन्दा, इन सबको ब्रह्मचारी को दूर से ही छोड़ देना चाहिये।[6] गौतम धर्मसूत्र[7] तथा मनुस्मृति[8] में भी आख्यात है कि काम, क्रोध, विषयासक्ति, नृत्य संगीत, धूत-क्रीड़ा, परनिन्दा, असत्य भाषण, मद्यपान, स्त्रीस्पर्श अथवा स्त्रीसंसर्ग आदि ब्रह्मचर्य में पूर्णतया वर्जित थे। आपस्तम्ब[9] ने तो यहाँ तक व्यवस्था दी है कि ब्रह्मचारी को स्त्रियों से वार्तालाप तभी करना चाहिये जब अतिआवश्यक हो जाए। भविष्य पुराण

---

1. भवि0 पु0, ब्रह्मपर्व, 4.131
2. वही, 4.143
3. वही, 4.153
4. वही, 4.154
5. वही, 4.158
6. वही, 4.147-148
7. गौतम ध0 सू0, 2.14-25
8. मनुस्मृति, 2.177-179
9. आपस्तम्ब ध0 सू0, 1.1.2.26

मे ब्राह्मण ब्रह्मचारी, क्षत्रिय ब्रह्मचारी एवं वैश्य ब्रह्मचारी के लिए ब्रह्मचर्य व्रत के नियम भिन्न-भिन्न कहे गए हैं।[1]

ब्रह्मचारियों को गुरू के कल्याण की सर्वदा चिन्ता करनी चाहिये।[2] गुरू के समीप रहने पर ब्रह्मचारी को किस प्रकार का आचरण करना चाहिये, इसका विस्तृत वर्णन भविष्य पुराण में प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह गुरू की निन्दा न तो स्वयं करें और न ही सुने।[3] उसे गुरू के प्रतिकूल एवं समान स्थिति मे नहीं बैठना चाहिये।[4] गुरू के गुरू यदि वर्तमान हो तो उनके साथ भी गुरूवत् व्यवहार करना चाहिये। इसी प्रकार श्रेष्ठ गुरू पुत्रों एवं गुरू के परिवारवर्ग वालों के साथ भी गुरूवत् व्यवहार करना चाहिये।[5] ब्रह्मचारी को सत्पुरूषों के चलाए गए धर्म का स्मरण कर प्रतिदिन गुरूपत्नी के चरणस्पर्श एवं अभिवादन करना चाहिये।[6] ब्रह्मचारी को ग्राम में शयन करते समय सूर्य का अस्त एवं उदय नहीं देखना चाहिये। समाहित चित्त हो दोनों संध्याओं को विधिपूर्वक पवित्र देश में बैठकर आचमन कर जाप एवं उपासना करनी चाहिये।[7] ब्रह्मचारी को सर्वदा माता-पिता तथा आचार्य का कल्याण साधन करना चाहिये।[8] ये तीनों ही तीनों लोक है, तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं और तीनों अग्नियाँ हैं। अतएव इन तीनों की शुश्रूषा ही परम तपस्या कही गई है1 इनकी आज्ञा को बिना प्राप्त किए हुए किसी अन्य धर्म का पालन

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.161
2. वही, 4.162
3. वही, 4.171-172
4. वही, 4.174
5. वही, 4.176
6. वही, 4.186
7. वही, 4.188-191
8. वही, 4.197

नहीं करना चाहिये।[1] गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि गुरू की आज्ञा का पालन करना ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है। ब्रह्मचारी का यह भी धर्म है कि वह गुरू के नीचे आसन पर बैठे।[2] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार गुरू के सो जाने के बाद ब्रह्मचारी को सोना चाहिये और प्रात. गुरू के उठने से पूर्व उठ जाना चाहिये।[3] गुरू की निन्दा अथवा अपमान अथवा उपहास करने के ब्रह्मचारी को अगले जन्म में निकृष्ट पशुयोनि प्राप्त होती है।[4] ब्रह्मचारी को मनवचन कर्म से गुरू का हित करना चाहिये।[5]

आलोचित पुराण में ब्रह्मचारी के निमित्त आपद धर्म का भी उल्लेख मिलता है, यथा– अब्राह्मणा से भी अध्ययन करने का विधान बताया है। जब तक अब्राह्मण गुरू के समीप अध्ययन चले तब तक उसकी सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये।[6] जो ब्राह्मण शिष्य अपने शरीर के त्याग पर्यन्त गुरु की शुश्रूषा करता है वह शीघ्र ही ब्रह्म के शाश्वत पद को प्राप्त करता है।[7] प्रस्तुत उल्लेख से प्रतीत होता है कि विशेषकर ब्राह्मण के लिए ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना अनिवार्य नहीं था। इसी प्रकार के संकेत वामन पुराण से भी प्राप्त होते हैं, जिसमें आख्यात है कि ब्राह्मण चाहे तो जीवन पर्यन्त गुरु के समीप ब्रह्मचर्याश्रम में ही निवास करे।[8] ब्रह्मचारी को दीक्षा स्नान के लिए गुरू की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर यथा शक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.194-205
2. गौतम ध0 सू0, 2.20-21, 30-32
3. आपस्तम्ब ध0 सू0, 1.2.5.26, 1.2.6.1-12, मनुस्मृति, 2.194-198, महाभारत, 12.242.17

4विष्णु ध0 सू0, 28.26, मनुस्मृति, 2.200-201
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 25.6
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.210
7. वही, 4.213
8. वामन पु0, 14.9

श्वेत, सुवर्ण, गौ, अश्व छत्र, जूता, धान्य, वस्त्र, शाकादि गुरू के प्रसन्नार्थ लाना चाहिये।[1] यदि गुरू की मृत्यु हो जाय तो गुणयुक्त गुरूपुत्र, गुरूपत्नी तथा गुरू के सपिण्डज के साथ भी गुरूवत् व्यवहार करना चाहिये।[2] इसी प्रकार का कथन वामन पुराण में भी उल्लिखित है।[3] भविष्य पुराण के अनुसार जो विप्र उपरोक्त नियमों के अनुसार अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।[4] पाणिनी ब्रह्मचारी को 'वर्णी' की संज्ञा प्रदान करते हैं, जो संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में अप्राप्य है।[5] किंतु भारवि ने वर्णी के स्थान पर वर्ण लिंगी संज्ञा का व्यवहार किया है, जिस पर भाष्य करते हुए मल्लिनाथ इसे ब्रह्मचारी के अर्थ में स्वीकार करते है।[6] काशिक के अनुसार तीन उच्च वर्णों के ब्रह्मचारी 'वर्णी कहलाते थे।[7] विष्णु[8], वायु[9] एवं ब्रह्माण्ड[10] पुराणों के अनुसार उपनयन के बाद ब्रह्मचारी को गुरू के आश्रम में ही आश्रय लेना चाहिये। इसीलिए उसे गुरूगृहवासी कहा गया है।

भविष्य पुराण में आख्यात है कि तीनो वेदों का या दो वेदों का अथवा एक वेद का विधिवत् अध्ययन कर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करे।[11] इससे स्पष्ट है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश के पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करना अनिवार्य था। क्यों कि इससे उत्कृष्ट गृहस्थाश्रम की स्थापना होती है।

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 214-215
2. वही, 2.216
3. वामन पु0, 14.9
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.218
5. 'वर्णाद् ब्रह्मचारिण:', अष्टाध्यायी, 5.2.134
   विशेष द्रष्टव्य, वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, पृ0 96
6. किरातार्जुनीयम्, 1.1, पर मल्लिनाथ की टीका
7. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, पृ0 96
8. विष्णु पु0, 3.9.1, 1.6.36
9. वायु पु0, 8.194
10. ब्रह्माण्ड पु0, 2.7.186
11. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 5.2

गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम सारे समाज का आधार है। गृहस्थाश्रम भविष्य का निर्माण करता है। मनु कहते है जिस प्रकार समस्त जीव वायु के कारण जीवित है, उसी प्रकार अन्य तीन आश्रम गृहस्थाश्रम पर अवलम्बित होकर अपनी स्थिति धारण करते है। तीनो आश्रम गृहस्थाश्रम के ऊपर ही आश्रित है, अत गृहस्थाश्रम ही सबमें श्रेष्ठ है।[1] आश्रम कर्म में यह मनुष्य जीवन का दूसरा भाग है।[2] शिक्षा समाप्त करके समावर्तन संस्कार के उपरान्त स्नातक उपयुक्त कन्या से विवाह करके गृहस्थाश्रम आरम्भ करता है और गृहस्थ कहलाता है।[3] आलोचित पुराण मे आख्यात है कि तीनों वेदों का या दो वेदो का अथवा एक वेद का विधिवत् अध्ययन कर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करे।[4] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि कुलीन, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, सत्य प्रतिष्ठा, दृढ़व्रत, विनीत, धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न एव त्यागी पुरुष को आश्रम (गृस्थाश्रम) के योग्य समझना चाहिये।[5] वामन पुराण में आख्यात है कि व्यक्ति को ब्रह्मचर्याश्रम से उपावृत्त होकर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करना चाहिये।[6] गृस्थाश्रमी को चाहिये कि उक्त आश्रम धर्म के सम्यक् निर्वाह हेतु असमान ऋषि वाले कुल में उत्पन्न कन्या से ही विवाह संस्कार सम्पन्न करे।[7]

इस आश्रम की बहुमुखी प्रशंसा संस्कृत शास्त्र एवं काव्य में आद्यन्त व्याप्त है। यह प्रशंसा वस्तुत इस आश्रम के लिए विहित विशिष्ट धर्मों के कारण ही है। कतिपय कर्त्तव्य ऐसे है, जिनका पालन गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त अन्य आश्रमों में हो ही नहीं सकता।त्रिऋण से उऋण होना तथा पञ्च

---

1. मनुस्मृति 3.77- 78
2. मनुस्मृति, 4.1 'द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्।'
3. गौतम धर्मसूत्र, 9.1
4. भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, 5.2
5. वही, 8.7
6. वामन पुराण, 14.11
7. वामन पुराण, 14.11

महायज्ञ सम्पादित करना गृहस्थाश्रम के ऐसे ही विशिष्ट कर्त्तव्य है।

महाभारत मे लिखा है कि जिस प्रकार सभी जीव माता के अवलम्ब पर जीवित रहते हैं उसी प्रकार अन्य आश्रम गृहस्थ का आश्रय पाकर जीते है।[1] शान्ति पर्व के अनुसार यदि तराजू मे गृहस्थाश्रम को तौला जाए तो वह तीनों आश्रम के बराबर है।[2] पद्मपुराण मे आख्यात है कि पुण्यवती स्त्री की प्राप्ति से गृहस्थी सुन्दर रीति से चलती है। गृहस्थाश्रम से अच्छा कोई आश्रम इस संसार मे नही है। गृहस्थ के आश्रय से ही वास्तव मे सभी जीव जीते हैं।[3] धर्मसूत्रो, स्मृतियो, पुराणों तथा परवर्ती धर्मशास्त्र निबन्ध ग्रन्थो मे गृहस्थ धर्म की विशद् व्याख्या मिलती है।[4]

आलोचित पुराण मे आख्यात है कि एकमात्र गृहस्थाश्रम ही तीनो आश्रमो का द्रष्ट प्रसव स्थान है। अत धार्मिक शासन से आबद्ध एकमात्र गृहस्थ धर्म की जानकारी प्राप्त करना परमावश्यक है।[5] एक अन्य स्थल पर गार्हस्थ्य कर्म सभी कर्मों मे श्रेष्ठ बताया गया है।[6]

<u>गृहस्थाश्रमः विहित कर्म</u>

गृहस्थाश्रम के दैनिक करणीय पञ्चमहायज्ञ पर यदि विवेचनात्मक विचार करें तो स्पष्ट होता है कि गृहस्थाश्रम मे विभिन्न तत्वो का सामञ्जस्य उपस्थित किया गया है। आलोचित पुराण में आख्यात है कि गृहस्थाश्रमी सर्वदा पञ्चमहायज्ञों तथा पाक का विधान सम्पन्न करे। गृहस्थ को सर्वदा पाँच हिंसाए लगती हैं, जिनके कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता। वे पाँचो हिंसाए हैं कण्डवी, पेषणी, चुल्ली,

---

1. महाभारत, शान्तिपर्व, 270.6 "यथामातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तव·।
एवं गृहस्थाश्रमाश्रित्य वर्तन्त इतराश्रमा.।।"
2. शान्तिपर्व, 12.12
3. पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 59.16– 18
4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.1.1– 2, वशिष्ठ धर्मसूत्र 8.1.17, मनुस्मृति, अध्याय– 4, याज्ञवल्क्य स्मृति 1.96.127, मार्कण्डेय पु0, 29.30 महाभारत, द्रोणपर्व, 82
5. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.1.16
6. वही, प्रतिसर्ग पर्व, 2.30.7

उदकुम्भी और प्रकार्जनी। अतएव इन सब हिंसाओ से शुद्धि प्राप्त करने के लिए बुद्धिमानो को क्रमश· पञ्चमहायज्ञ करने का विधान बताया गया है। गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन उनका अनुष्ठान करना चाहिये। शिष्यो को विद्यादान करना ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। पितरो का तर्पण करना पितृयज्ञ कहा है। हवन करना दैवयज्ञ, बलिदेना भौमयज्ञ तथा अतिथियों की पूजा करना अतिथि यज्ञ कहा गया है।[1] इन पाँचो पाक यज्ञो को जो गृहस्थाश्रमी अपनी शक्ति के अनुकूल कभी नहीं छोड़ता, नित्य प्रति करता है वह गृहस्थ होने पर भी इन पाँचो हिंसाओं के दोषो से लिप्त नहीं होता। इसके विपरीत जो देवता, अतिथि, भृत्य, पितर एव अपने कल्याण के लिए इन पाँचो यज्ञो का विधान नहीं सम्पन्न करता वह जीवन धारण करके भी मृतक है।[2] डा0 शिवदत्त ज्ञानी के शब्दो मे वेदाध्ययन द्वारा बुद्धि और आत्मा का विकास, पितृयज्ञ द्वारा मृत पितरों की स्मृति का नवीनीकरण, देवयज्ञ द्वारा धार्मिक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन, भूतयज्ञ द्वारा जीवभाग के प्रति दया का भाव तथा अतिथियज्ञ द्वारा नागरिकता के भाव की पुष्टि आदि द्वारा प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवन के विभिन्न अगों की परिपुष्टि करके विकसित करता है।[3] गृहस्थ जीवन एक सार्वजनिक सामाजिक कर्त्तव्य था। इस आश्रम का उचित परिपालन करने वाले को अपने घर में ही समस्त तीर्थों की प्राप्ति कही गई है।[4] गृहस्थाश्रम की यह श्रेष्ठता इसके सामाजिक मूल्य पर आधारित है। इसलिए महाभारत ने एक गृहस्थाश्रम को अन्य तीनो आश्रमो के सम्मिलित महत्व के सदृश माना है।[5] गृहस्थाश्रम ही एकमात्र ऐसा आश्रम हे जिसमे व्यक्ति परस्पर विरोधी धर्म, अर्थ, काम– इस त्रिवर्ग का एकमात्र सेवन करता है।[6]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 16.4–7
2. भवि0 पु0 ब्राह्मपर्व 16.8–9
3. ज्ञानी शिवदत्त, वेदकालीन समाज, पृ0 101
4. व्यास स्मृति 4.2 "गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुन. पुन.।
   सर्व तीर्थ फलं तस्य यथोक्त यस्तु पालयेत्।।"
5. महाभारत 12.12.11 " आश्रमास्तुलया सर्वान् घृतानाहुर्मनीषिण:।
   एकतस्ते त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकत:।।"
6. महाभारत, 3.313.101– 102

<u>गृहस्थाश्रम में स्त्रियों की दिनचर्या</u>

अलोचित पुराण में गृहस्थाश्रम मे स्त्रियो की दिनचर्या को निम्नवत् निवृन्त किया गया है। स्त्रियो को पुरूषो की अपेक्षा पहले जग जाना चाहिये और अपने कर्म में लग जाना चाहिये। नौकरों चाकरों के भी बाद मे उन्हे भोजन और शयन करना चाहिये।[1] पति तथा ससुर आदि के उपस्थित न रहने पर स्त्री को घर की देहली पार नही करनी चाहिये।[2] पति से पहले जगकर एव पति के समीप बैठकर ही सब सेवकों को काम की आज्ञा दें, बाहर न जाए।[3] पति के जाग जाने पर वहाँ के सभी आवश्यक कार्य करके घर के अन्य कार्यों को प्रमादरहित होकर करे।[4] रात्रि के पहले ही उत्तम वस्त्राभूषणों को उतार कर घर के कार्यों को करने योग्य साधारण वस्त्रों को पहनकर तत्तत समय मे करने योग्य कार्यों को यथाक्रम करना चाहिये।[5] उसे चाहिये कि सबसे पहले रसोई, चूल्हा आदि को भलीभाँति लीपपोत कर स्वच्छ करे।[6] रसोई के पात्रों को माँज धो और पोंछकर वहाँ रखे तथा अन्य सब रसोई की सामग्री भी वहाँ एकत्र करे। रसोईघर न तो अधिक बन्द हो और न एकदम खुला ही हो।[7] रसोई घर स्वच्छ, विस्तीर्ण और जिसमें से धुआँ निकल जाए ऐसा होना चाहिये।[8] रसोई घर के भोजन पकाने वाले पात्रो को तथा दूध, दही के पात्रो को दिन मे धूप के द्वारा शोधित एवं रात में धुआँ देना चाहिये।[9] बिना शोधित पात्रों में रखा दूध, दही विकृत हो जाता है।[10] तेल, गोरस एव पाक क्रिया आदि की अच्छी तरह देखभाल कर पति का भोजन स्वयं तैयार करना चाहिये।[11] उसे विचार

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 13.1
2. वही, 13.2
3. वही, 13.3– 4
4. वही, 13 5
5. वही, 13.6
6. वही, 13.7
7. वही, 13.7– 8
8. वही, 13.8–9
9. वही, 13.10
10. वही, 13.11
11. वही, 13.12

करना चाहिये कि मधुर, क्षार, अम्ल रसों में कौन- कौन सा भोजन पति को प्रिय है, किस भोजन से अग्नि की वृद्धि होती है, क्या पथ्य है और क्या अपथ्य है, उत्तम स्वास्थ्य किस भोजन से प्राप्त होगा और कौन सा भोजन काल के अनुरूप होगा आदि बातों का भलीभाँति विचार कर और निर्णय कर उसे वैसा ही भोजन प्रीतिपूर्वक बनाना चाहिये।[1] रसोई घर मे सदा से काम करने वाले विश्वस्त तथा आहार का परीक्षण करने वाले व्यक्ति को ही सूपकार के रूप मे नियुक्त करना चाहिये। रसोई के स्थान मे किसी अन्य दुष्ट स्त्री – पुरूषों को न आने दें।[2] स्वय बनाए हुए सुस्वाद सुरक्षित अच्छी तरह से परोसे गए पति के भोजन पानादि को समुचित ढग से सावधानी पूर्वक प्रस्तुत करना चाहिये।[3] रसोई घर से निवृत्त होकर पसीने आदि को पोछकर, स्वच्छ गध, ताम्बूल, माला, वस्त्र आदि से अपने को थोड़ा सा भूषित करके भोजन के निमित्त यथोचित समय पर विनयपूर्वक पति को बुलाएँ।[4] सब प्रकार के व्यञ्जन परोसें, जो देश काल के विपरीत न हो और जिनका परस्पर विरोध भी न हो। जिस पदार्थ मे पति की अधिक रूचि देखे उसे और परसें, इस प्रकार पति को प्रीति पूर्वक भोजन कराएँ।[5] सपत्नियो को अपनी बहन के समान तथा उनकी संतानो को अपनी सतान से अधिक प्रिय समझें। उनके भाई – बन्धुओ को अपने भाइयों के समान ही समझे।[6] भोजन, वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल आदि जब तक सपत्नियों को न दे दें, तब तक स्वय भी न ग्रहण करें।[7] अपने, उनके और आश्रित लोगो के बीमार होने पर अत्यन्त आदर पूर्वक चिकित्सा के लिए औषधियों का प्रबन्ध करना चाहिये।[8] अपने बन्धु, नौकर और सपत्नी इन तीनों के दुख एव सुख को अपने ही समान अनुभव करें।[9] इस प्रकार नित्य कर्मों से अवकाश प्राप्त कर गृहणी रात में शयन करे और सोकर पहले उठे। निपुण गृहणी

---

1 भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 13.13
2. वही 13.15
3 वही, 13.16
4. वही, 13.17
5. वही, 13.18- 20
6. वही, 13.21
7. वही, 13.22
8. वही, 13.23
9. वही,13.24

व्यर्थ के कामो मे अपव्यय करने वाले पति को नम्रता पूर्वक एकान्त में समझाए।[1] सपत्नियों के ऐसे अनुचित आचरणों की चर्चा, जो कहने योग्य न हो, स्वयं न कहे, यदि उनके आचरण सम्बधी दोष बहुत विकृत हो गए हों तो एकान्त में उनके दूर करने के उपायों के साथ पति से भी उनकी चर्चा करे।[2]
दुर्भगा, नि सतान तथा पति द्वारा तिरस्कृत पत्नियो को सदा आश्वासन दे।[3] यदि किसी नौकर आदि पर पति कोप करे तो उसे भी आश्वस्त करना चाहिये, परन्तु यह अवश्य विचार कर लेना चाहिये कि इसे आश्वासन देने से कोई हानि नहीं होने वाली है।[4]

इस प्रकार स्त्री अपने पति की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करे। अपने सुख के लिए जो अभीष्ट हो उसका भी परित्याग कर पति के अनुकूल ही सब कार्य करे।[5] क्योंकि स्त्रियों के देवता पति हैं।[6]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 13.25
2. वही, 13.26
3. वही, 13.27
4. वही, 13.28
5. वही, 13.29- 34

6. वही,13.35

गृहस्थाश्रम में स्त्रियों के अन्यान्य कर्त्तव्य

उत्तम स्त्री पति को मन, वचन तथा कर्म से देवता के समान समझे उसकी अर्धाङ्गिनी बनकर सदा उसके हित करने में तत्पर रहे।[1] देवता एव पितरों के कार्यों मे पति के स्नान, भोजनादि कार्यों मे अतिथियों के स्वागत सत्कारादि में उसे औचित्य की रक्षा करनी चाहिए।[2] रहने का घर और शरीर – ये दो, गृहणियों के लिए मुख्य हैं इसलिए प्रयत्नपूर्वक वह सर्वप्रथम अपने घर तथा शरीर को सुसंस्कृत (पवित्र) रखे। शरीर से अधिक स्वच्छ और भूषित घर को रखे।[3] तीनों कालो मे पूजा–अर्चना करे और व्यवहार की सभी वस्तुओ को यथाविधि साफ रखे।[4] प्रात , मध्याह्न और सायकाल के समय घर को मार्जनकर स्वच्छ करे।[5] गोशाला आदि को स्वच्छ करवा ले।[6] दास- दासियो को भोजनादि से संतुष्ट कर उन्हे अपने कार्यों में लगाए।[7] स्त्री को उचित है कि वह प्रयोग में आने वाले शाक कन्द मूल फल आदि बीजों का समय–समय पर अपनी शक्ति के अनुरूप सग्रह करे।[8] ताँबे, काँसे, लोहे, काष्ठ बाँस एव मिट्टी के गृहस्थी के उपयोगी विविध पात्रो का भी विधिवत् सग्रह करे।[9] जल रखने तथा जल निकालने और जल पीने के कलशादि पात्र, शाक भाजी आदि से सम्बद्ध विभिन्न पात्र, घी, तेल, दूध, दही आदि से सम्बद्ध बर्तन, मूसल ओखली, झाड़ू, चलनी, सड़ँसी, सिल, लोढ़ा, चक्की, चिमटा, कढ़ाही, तराजू बाट, पिटार चौकी आदि गृहस्थी के प्रयोग में आने वाले आवश्यक उपकरणो की प्रयत्नपूर्वक व्यवस्था करनी चाहिये।[10] गृहणी को चाहिये कि वह हीग, जीरा, पिप्पल, राई, मरिच, धनिया तथा सोंठ आदि प्रकार के मसाले, लवण, अनेक प्रकार के क्षार पदार्थ सिरका, अचार

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 11.1
2. वही, 11.4
3. वही, 11.5
4. वही, 11.6
5. वही, 11.7
6. वही, 11.8
7. वही, 11.9
8. वही, 11.10
9. वही, 11.11
10. वही, 11.12– 15

आदि, अनेक प्रकार की दालें, सब प्रकार के तेल, सूखा काष्ठ, विविध प्रकार के दूध दही से बने पदार्थ और अनेक प्रकार के कन्द आदि जो- जो भी वस्तु नित्य तथा नैमित्तिक कार्यों मे अपेक्षित हों, उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्नपूर्वक पहले से ही संग्रह करना चाहिये, जिससे समय पर उन्हे ढूँढना न पडे।[1] जिस वस्तु की भविष्य मे आवश्यकता पडे उसे पहले से ही संग्रह में रखना चाहिये। सूखे, गीले, पिसे, कच्चे और पक्के अन्नादि पदार्थों का अच्छी तरह हानि-लाभ विचार कर ही संग्रह करना चाहिये।[2]

गृहणी को चाहिये कि गुरू, बालक, वृद्ध, अभ्यागत और पति की सेवा में आलस्य न करे। पति की शय्या स्वयं बिछाए। देवर आदि के द्वारा पहने हुए वस्त्र, माला तथा आभूषणों को वह कभी न धारण करे और न इनके शय्या, आसन आदि पर बैठे। खली, अन्न के टुकड़े, सूखे हुए अन्न तथा बासी बचे हुए अन्न को गौ आदि के खाने के लिए रखना चाहिये। दही से घी निकाल लेना चाहिये, गौओं को यथा समय दुहना चाहिये किन्तु दुहते समय बछ्डों को पीड़ित नही करना चाहिये।[3] वर्षा, शरद और बसन्त ऋतु में गाय को दो बार दुहना चाहिये, शेष ऋतुओं मे एक ही बार दुहें।[4] चरवाहे, ग्वाले आदि को चरवाही के बदले रूपए, सुवर्ण अथवा अनाज दें।[5] गोदोहक बछ्ड़ों का भाग अपने प्रयोग में न ला सके, यह देखते रहें। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि दूध दुहने वाला समय पर दूध दुह रहा है या नहीं, क्योंकि दोहन के यथोचित समय पर ही गाए को दुहना चाहिये।[6] यथासमय तिल की खली, कोमल हरी घास, नमक तथा जल आदि से बछ्ड़ों का पालन करना चाहिये।[7] बूढ़ी, गर्भिणी, दूध देनेवाली, बछ्डे वाली, तथा बछिया वाली तथा सद्योजात गौ, शिशु इन पाँचों गायों का घास आदि के द्वारा समान रूप से बराबर पालन पोषण करते रहना चाहिये। किसी को भी न्यून तथा अधिक न समझें। गोचर भूमि से घर तथा आने में सर्पादि जीवों को डराने के लिए, शोभा वृद्धि एवं

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 11.16-19
2. वही, 11.20- 21
3. वही, 11.30-35
4. वही, 11.36
5. वही, 11.37
6. वही, 11.38
7. वही, 11.39- 40

रक्षा के लिए गौओं के गले मे घण्टी बाँधनी चाहिये।[1] सर्वदा सर्पादि दुष्ट जीव जन्तुओं से विहीन, पशुओ के लिए लाभदायी, अधिक घास वाले, चोरों से रहित ग्राम्य स्थान में अथवा जगल में गौओ के दिन में बैठने व चरने का स्थल निश्चित करना चाहिये।[2] कृषि कार्य मे लगे सेवको के कार्यों की बराबर देखरेख रखनी चाहिये। कामों के अनुसार यथा समय उन्हें भोजन वेतनादि का लाभ देना चाहिये।[3] खेत, खलिहान अथवा वाटिका आदि में जहाँ भी सेवक काम पर लगे हो वहाँ बार-बार जाकर उनके कार्य एव कार्य के प्रति उनके मनोयोग की जानकारी करनी चाहिये। उनमे से जो योग्य हो, अच्छा कार्य करता हो उसका अधिक सत्कार करे और उसके लिए भोजन आदि की ओर से विशेष व्यवस्था करे। समय-समय पर सब प्रकार के अन्न और कन्द मूल के बीजो का संग्रह करें तथा यथासमय उनकी बुआई कर दें।[4]

गृह की सर्वस्व मूलभूत स्त्रियाँ कही जाती हैं, गृहस्थाश्रम अन्न का मूल स्वरूप कहा जाता है, इसलिए अन्न को विशेषतया भोजन को मुक्त हस्त होकर दान नहीं देना चाहिये।[5] अर्थात् अन्न को वृथा नष्ट न करे, सदा संजोकर रखें। गृहणी को मितव्ययी होना चाहिये। अन्नादि में मुक्त हस्त होना गृहणियों के लिये अच्छा नहीं माना जाता। वह संचय करने में और खर्च करने में मधुमक्खी, वल्मीक और अञ्जन के समान हानि-लाभ देखकर अन्न को थोड़ा सा समझकर उसकी अवज्ञा न करे। क्यों कि थोड़ा-थोड़ा ही मधु एकत्र करती हुई मधुमक्खी कितना एकत्र कर लेती है। इसी प्रकार दीमक जरा-जरा सी मिट्टी लाकर कितना ऊँचा वल्मीक बना लेती है। किन्तु इसके विपरीत बहुत सा बनाया गया अञ्जन भी नित्य थोड़ा-थोड़ा आँख में डालते रहने से कुछ दिनों में समाप्त हो जाता है। इसी रीति से सभी वस्तुओं का संग्रह और खर्च हो जाता है। इसमें थोड़ी वस्तु की अवज्ञा नही करनी चाहिये। घर के सभी कार्य स्त्री-पुरुष के एकमत होने पर ही अच्छे होते हैं।[6]

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 11.41-43
2. वही, 11.44
3. वही, 11.45
4. वही, 11.48- 51
5. वही, 11.52
6. वही, 11.53- 55

गृहस्थाश्रम में धन का महत्व

आलोचित पुराण में गृहस्थाश्रम के अन्तर्गत धन के विशेष महत्व को स्वीकार करते हुए उल्लिखित है कि जिस प्रकार स्त्रीविहीन पुरूष को गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट होने का कोई अधिकार नही है उसी प्रकार धन विहीन पुरूष को भी गृहस्थ बनने का अधिकार नही है।[1] निर्धन व्यक्तियो के लिए गृहस्थी एक बड़ी बाधा एवं विडम्बना के रूप मे दु खदायिनी हो जाती है अत गृहस्थी की इच्छा रखने वाले को प्रथमत धन का उपार्जन करना चाहिये।[2]

अर्थ की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महाभारतकार का उल्लेख है कि अर्थ पर ही शेष पुरूषार्थ आश्रित है तथा वही उच्चतम धर्म है।[3] वस्तुत · अर्थ पर ही धर्म और काम भी आधारित है। धार्मिक कृत्य अर्थ पर ही अन्तत आश्रित होते हैं।[4] आलोचित पुराण में भी इसी सन्दर्भ में आख्यात है कि इष्ट अर्थात् अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि कार्य तथा पूर्त अर्थात् बावली, कुआँ, तालाब, देवमंदिर, धर्मशाला, बगीचा आदि का निर्माण करवाना ये दोनों धर्म कार्य (इष्ट और पूर्त) स्त्री के बिना नहीं सम्पन्न हो सकते। धन तो इन सबका मुख्य सहायक ही है, अत दोनो धर्मों का एकमात्र साधन धन को ही जानना चाहिये।[5]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6.14
2. वही, 6.6
3. महाभारत, उद्योग पर्व, 72.23.4
   "धनमाह· परं धर्मं धने सर्वप्रतिष्ठितम्।
   जीवन्ति धनिनं लोके भूता येत्वधना. नरा·।।"
4. महाभारत, शान्तिपर्व, 90.18,
   "धनात् स्रवति धर्मो हि धारणाद्वेति निश्चय.।"
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6.16

वामन पुराण में धर्मपूर्वक धनार्जन करने पर विशेष बल प्रदान किया है।[1] इसी पुराण मे आख्यात है कि देशविहित धर्म, श्रेष्ठ कुल धर्म और गोत्रधर्म का त्याग नहीं करना चाहिये उसी से अर्थ सिद्धि करनी चाहिये।[2]

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि सर्वप्रथम गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाला व्यक्ति यथाविधि विद्याध्ययन करके सत्कर्मों द्वारा धन का उपार्जन करे तदन्तर सुन्दर लक्षणों से युक्त और सुशील कन्या से शास्त्रोक्त विधि से विवाह करे।[3] मनुष्य के लिए घोर नरक की यातना सहनी अच्छी है किन्तु घर में क्षुधा से तडपते हुए स्त्री पुत्रों को देखना अच्छा नहीं।[4] फटे और मैले कुचैले वस्त्र पहने, अति दीन और भूखे स्त्री पुत्रो को देखकर जिनका हृदय विदीर्ण नही होता वे वज्र के समान अति कठोर हैं। उनके जीवन को धिक्कार है, उनके लिए तो मृत्यु ही परम उत्सव है अर्थात् ऐसे पुरूष का मर जाना ही श्रेष्ठ है।[5] अत स्त्री ग्रहण करने वाले अर्थहीन पुरूष के त्रिवर्ग की सिद्धि कहाँ सम्भव है। उनके लिए स्त्री केवल दु.ख देने वाली ही होगी।[6]

लोग अपने ही दरिद्र भाई से लज्जा करते है और दूसरी ओर ऐश्वर्य के कारण दूसरे के साथ भी जिसका अपने साथ कोई संबंध नही है स्वजन की भाँति व्यवहार करते हैं।[7] धन ही त्रिवर्ग का मूल है।[8] धनवान में विद्या, कुल, शील अनेक उत्तम गुण आ जाते हैं और निर्धन में विद्यमान होते हुए भी ये गुण नष्ट हो जाते हैं।[9] शास्त्र, शिल्प, कला और अन्य भी जितने कर्म हैं उन सबका तथा धर्म का साधन भी धन ही है। धन के बिना पुरूष का जन्म व्यर्थ ही है।[10]

---

1. वामन पु0, 15.52
2. वही, 48.37
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6.5
4. वही, 6.7
5. वही, 6.8– 12
6. वही, 6.13
7. वही, 6.17
8. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 6.19
9. वही, 6.20
10. वही, 6.21– 22

पूर्वजन्म में किए गए पुण्यो से ही इस जन्म मे प्रभूत धन की प्राप्ति होती है और धन से धर्मादि पुण्य होता है। इसलिए धन और धर्म का अन्योन्याश्रय संबंध है।[1] इसलिए बुद्धिमान, विद्वान मनुष्य को इसी रीति से त्रिवर्ग साधन करना चाहिये।[2]

इस प्रकार गृहस्थाश्रम में धर्म मे धन की उपयोगिता को समझते हुए आलोचित पुराण में उल्लिखित हे कि प्राप्त धन का संग्रह कर एवं क्रियाओं को सम्पन्न करने मे समर्थ बनकर स्त्री ग्रहण करना चाहिये।[3] वामन पुराण में भी एक स्थल पर प्रहलाद के द्वारा अर्थ की महत्ता कहलाई गई है।[4] वामन पुराण मे उल्लिखित है कि भविष्य के लिए समर्थ संसार के लिए हितकर एवं धर्म कर्म के लिए अनुकूल अर्थ का उपार्जन सभी मनुष्यो के लिए वाञ्छित है। अर्थोपार्जन श्लाधनीय एव यशस्वी बनने के लिए परमोपयोगी साधन माना गया है।[5] श्रेष्ठ व्यक्ति इसलिए उत्कृष्ट लक्ष्मी की आकांक्षा करते है, जिससे विपत्तिग्रस्त कुलीन व्यक्ति, धनहीन मित्र, वृद्ध जाति गुणी ब्राह्मण तथा यशयुक्त कीर्ति की रक्षा की जा सके।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 6.23
2. वही, 6.24- 25
3. वही, 6.27
4. वामन पु०, 48.36
5. वही, 48.38
6. वही, 48.39- 40

वानप्रस्थ एवं सन्यासाश्रम

सामान्यतया अष्टादश पुराणों में चतुराश्रम व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। आलोचित पुराण मे केवल दो आश्रमों का ही उल्लेख प्राप्त होता है- ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम। ध्यातव्य है कि वैदिक काल तक संभवत आश्रम व्यवस्था अपने मूल रूप में सेवनीय एवं आदर्श बनी हुई थी, परन्तु धीरे-धीरे इनमें से वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम क्रमश कम सेवनीय होते गए। वामन पुराण में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणो के लिए चतुराश्रम व्यवस्था, क्षत्रियों के लिए तीन आश्रमों की व्यवस्था (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ), वैश्यों के लिए दो आश्रम (ब्रह्मचर्य एव गृहस्थ) तथा शूद्रो के लिए केवल एक गृहस्थाश्रम की व्यवस्था लोकसेव्य बनी हुई थी।[1] भविष्य पुराण में केवल ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थाश्रम को ही सर्वसेवनीय बताया गया है।

---

1. वामन पु0, 15.63, 48.33

भविष्य पुराण में वर्णित प्रमुख संस्कार

भारतीय संस्कृति के अजस्र प्रवाह मे जिन अवधारणाओं ने शनै शनै· एक निश्चित स्वरूप ग्रहण करके भारत के भारत के मानव जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया और जो हिन्दू धर्म का एक अनिवार्य अग बन गई उनमे से एक अवधारणा 'संस्कार' की थी। जैमिनी के सूत्रों में सस्कार शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ हे।[1] 'संस्करोति' शब्द बनाने या चमका देने के अर्थ मे उपनिषदो में प्रयुक्त हुआ है।[2] तन्त्रवार्तिक के अनुसार सस्कार ऐसी क्रियाएँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं।[3] शतपथ ब्राह्मण में सस्कार को लक्ष्य करके संस्कुरू तथा संस्कृत शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[4] कात्यायन श्रौत सूत्र मे संस्कार को पवित्रीकरण का एक सहायक कृत्य माना गया है, जिसे श्रौत या गृह कर्मणि के अन्तर्गत किया जाता है।[5] गृह्य सूत्र मे भी संस्कार का लक्षित अर्थ उपनयन माना गया है।[6] जैमिनी सूत्र की शबर टीका[7] में सस्कार शब्द का इस प्रकार अर्थ किया गया हे कि संस्कार वह है जिसके हो जाने पर पदार्थ (या व्यक्ति) किसी कार्य के योग्य हो जाता है। क्रमश. शबर कथित अर्थ ही सस्कार शब्द के लिए रूढ़ हो गया। पी० वी० काणे के अनुसार संस्कार का मनोवैज्ञानिक महत्व भी था। सस्कार करने वाला व्यक्ति एक नए जीवन का आरम्भ करता था, जिसके लिए वह नियमों के पालन हेतु प्रतिश्रुत होता था।[8] डा० राम जी उपाध्याय के मत में संस्कार वस्तुत. उस मानवीय योजना को अभिव्यक्त

1. जैमिनी सूत्र, 3 1.3, 3.8 3, 9.2.9, 9.4.33, 10 1.2 आदि
2. छान्दोग्य उप०, 4.16.1- 2
   "तस्मादेष एवं यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्तिनी।
   त्योरन्यतरांमनसा सस्करोति ब्रह्मा वाचा होता।।"
3. पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1, पृ० 176 ।
4. शतपथ ब्रा०, 1.1.5- 10, 3.2, 1.22
5. कात्यायन श्रौ० सू०, 1.8.34
6. पारस्कर गृ० सू०, 2.5.42- 43
7. जैमिनी सू०, 3.1.3 पर शबर की टीका-
   संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य।
8. पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 177

करता है, जो उसकी मानसिक एवं शारीरिक शुद्धि के साथ उसके समक्ष भावी जीवन की उत्थानपरक परम्परा प्रस्तुत करता है।[1] डा0 बैशम के अनुसार सस्कार मानवीय जीवन को पूर्णतया आवृत किये रहते है तथा जन्म से मृत्यु तक उसे प्रभावित करते हैं।[2] डा0 राजबली पाण्डेय के अनुसार सस्कार का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओ तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों में से है, जिनसे वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके। किन्तु हिन्दू सस्कारों मे अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक विधि विधान, उनके सहवर्ती नियम तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट है जिनका उद्देश्य केवल दैहिक संस्कार ही न होकर संस्कार्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार शुद्धि और पूर्णता भी है।[3]

सस्कार किए जाने से उत्पन्न योग्यता, दो प्रकार की मानी जाती है। प्रथमत सस्कार किए जाने से व्यक्ति वेदाध्ययन या गृहस्थाश्रम प्रवेश आदि क्रियाओं के योग्य हो जाता था। द्वितीयत सस्कार करने से वीर्य अथवा गर्भादि के विभिन्न दोषों का परिहरण हो जाता था। इन दोनों योग्यताओ पर बल दिए जाने के कारण धीरे-धीरे भारत के जनजीवन मे संस्कारों की अनिवार्यता प्रारम्भ हो गई। स्मृति काल में यह अनिवार्यता इतनी बढी कि संस्कार (उपनयन) होने से ही द्विजत्व सिद्ध होने लगा (जन्मना जायते शूद्र: सस्कारात् द्विज उच्यते)। डा0 राजबली पाण्डेय के अनुसार उपनयन संस्कार वस्तुत द्विजातियो के लिए धार्मिक साहित्य मे प्रविष्ट एव प्रतिष्ठित होने का एक प्रकार का प्रवेशपत्र था।[4]

भारत वर्ष मे वेदों को हिन्दू धर्म का आदि स्रोत माना जाता है। किन्तु वेदों में न तो संस्कार शब्द प्राप्त होता है और न ही किसी भी संस्कार के प्रति निश्चित विधि या निषेध मिलते हैं

---

1. राम जी उपाध्याय, भारत की संस्कृति- साधना, पृ0 20 ।
2. ए0 एल0 बैशम, द वण्डर दैट वॉज इण्डिया, पृ0 151 ।
3. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 19

4. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 30- 33

तथापि ऋग्वेद में गर्भाधान[1], विवाह[2] तथा अन्त्येष्टि[3] के मंत्र अवश्य प्राप्त होते है। अथर्ववेद[4] में उन संक्षिप्त सूक्तों का और भी विस्तृत रूप प्राप्त है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के ये ही मन्त्र स्मृति काल मे तन्तद् सस्कारों के अवसर पर प्रयोग किए गए प्रतीत होते है।

वेदो के व्याख्या रूप ब्राह्मण ग्रन्थ मुख्यत श्रौत भागो से संबद्ध रहे। अत इन ग्रन्थो में भी साक्षात् रूप से तो सस्कारों का विवेचन नही हुआ है किन्तु उपनयन सस्कार से जुड़ी अनेक विधियाँ इनमें अवश्य वर्णित हैं। यही स्थिति आरण्यकों एवं उपनिषदों की है। इन ग्रंथों में भी केवल उपनयन सस्कार तथा ब्रह्मचर्य से संबद्ध कतिपय प्रसग प्राप्त होते हैं।

प्रयोजन

सस्कार विवेचन की दृष्टि से सूत्र साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। गृह्य सूत्रो मे गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक सारे संस्कारों का विविध एवं विस्तृत वर्णन है। धर्मसूत्रां मे संस्कारों की विधि का वर्णन तो अत्यल्प है किन्तु संस्कारो की सामाजिक उपयोगिता को भली प्रकार प्रगट किया गया है।[5]

---

1. ऋग्वेद, 10.183
2. वही, 10.85
3. वही, 10.14
4. अथर्ववेद, 18.1- 4, 15.1.2

5. गौतम ध0 सू0, 8.8, आपस्तम्ब ध0 सू0, 1.1.1.9, वशिष्ठ, ध0 सू0, 4.1

गृह्य सूत्रो मे संस्कार विवेचन प्राय· विवाह से प्रारम्भ हुआ है। वस्तुत· इन संस्कारो का संबध व्यक्ति विशेष मात्र से न होकर सम्पूर्ण समाज से था। ये संस्कार वैवाह्कि जीवन के दायित्वो के प्रतीक भी थे। इसीलिए कहा गया है कि ' जो माता– पिता अपनी सतान के संस्कार नही करते वे जनक मात्र है तथा पशु सदृश है (जो इन्द्रिय तृप्ति के लिए सतान उत्पन्न करते हैं)।' इस विषय मे मनु का कथन नितान्त स्पष्ट है[1] तदनुसार गर्भाधान तथा अन्य संस्कारो की क्रियाएँ शरीर को शुद्ध करती है तथा इहलोक और परलोक मे भी मनुष्य को पाप से विमुक्त कराती हैं। विशिष्ट संस्कारो के किए जाने से व्यक्ति के जन्मजात दोष नष्ट हो जाते है। शंकर ने भी वेदान्त सूत्र के भाष्य मे यही अभिमत प्रगट किया है।[2] मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही संस्कारों का प्रयोजन है। जीवन की प्रगति मार्ग मे ये संस्कार सुन्दर सोपान के सदृश हैं, जो मनुष्य के मनोविचारो तथा प्रवृन्तियों को शुद्ध करते हुए उसे निरन्तर ऊँचा उठाते जाते है। बाल्यावस्था में इन संस्कारो का विशिष्ट प्रयोजन है। बालक के अपरिपक्व मस्तिष्क पर संस्कारो की विभिन्न क्रियाएँ अपना दृढ एव दूरगामी प्रभाव छोडती है। विभिन्न संस्कारो से शुद्ध हुआ शरीर ही ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो पाता है।[3] मेधातिथि ने

---

1. मनुस्मृति, 2.26–27
   "वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
   कार्य शरीरसंस्कार पावनः प्रेत्य चेह च।।
   गार्भैर्हो मै जति कर्म चौडमौ जीनिबन्धनै ।
   बैजिकं गार्भिक चैनो द्विजनामपमृज्यते।।"

2. वेदान्त सूत्र, 1.1.4 पर शंकर भाष्य– " संस्कारो हि नाम गुणाधानेन
   वा स्याद दोषापनयनेन वा।।"

3. मनुस्मृति, 2.28,
   " स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै ।
   महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।"

मनु के श्लोक की व्याख्या मे सस्कारो से केवल शरीर की ही शुद्धि नही अपितु आत्मा को भी सस्कृत माना।[1] शुद्ध शरीर में ही पवित्र आत्मा निवास करती है अशुद्ध शरीर में नहीं। वीरमित्रोदयसंस्कार प्रकाश ने हारीत के वचनो को उद्धृत किया है कि ' ब्राह्म संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ऋषि पद प्राप्त कर लेता है तथा दैव संस्कार सम्पन्न व्यक्ति देव पद प्राप्त करता है आदि।[2] भारतीय ऋषियों ने संस्कारो के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व को परिष्कृत करने और एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर प्रेरित करने का प्रयत्न किया था,' जिस प्रकार कोई चित्र सुन्दर रगो के समायोजन से शनै शनै अपने सौन्दर्य उद्घाटित करता है, उसी प्रकार विधि विधान पूर्वक किए गए संस्कारो से व्यक्ति मे ब्राह्मण्य प्रतिष्ठित होता है।[3] डा0 राजबली पाण्डेय के अनुसार सस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्व और पवित्रता प्रदान करते हैं। वे इस बात पर जोर देते हे कि जीवन के विकास का प्रत्येक चरण केवल शारीरिक क्रिया नहीं किन्तु इसका संबंध मनुष्य की बुद्धि भावना और आत्मिक अभिव्यक्ति से है, जिनके प्रति व्यक्ति को जागरूक रहना चाहिये। अतिपरिचय के कारण जीवन की घटनाओ की तरफ प्राय उदासीनता और असावधानी उत्पन्न हो जाती है और कुछ व्यक्तियो के प्रति अवज्ञा भी। सस्कार इस तन्द्रा और अवज्ञा का निराकरण करता है और जीवन के विकास क्रमो के महत्व का स्पष्टीकरण सामूहिक तथा सामाजिक स्तर पर करता है। सस्कारों के अभाव में जीवन की घटनाएँ शरीर की दैनिक आवश्यकताओ और आर्थिक व्यापार के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के भावुक संगीत से रहित हो जाती हैं।[4]

---

1. मनुस्मृति, 2.28 पर मेघातिथि – न हि कर्मभिरेव केवलै ब्रह्मत्व– प्राप्तिः प्रज्ञानकर्मसमुच्चयात् किल मोक्ष·। एतैस्तु संस्कृत अरत्मनोपासनास्वाधि क्रियते।

2. वीरमित्रोदयसंस्कार प्रकाश, खण्ड–1, पृ0 139

3. पराशरस्मृति, 8.19, " चित्रकर्मयथाऽनेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः। ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकैः।।"

4. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, प्रस्तावना, पृ0 5

<u>संस्कार- पौराणिक प्रवृत्ति</u>

पुराणो मे भी सस्कारो के महत्त्व को विशेष रूप से स्वीकार किया गया है। आलोचित पुराण मे आख्यात है कि गर्भाधान आदि सस्कार जिस ब्राह्मण के शास्त्रीय विधि के अनुसार हुए रहते है वही ब्राह्मण ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त करता है और वही सच्चे ब्रह्मत्व की भी प्राप्ति करता है।[1]
संस्कारो से पाप हरण की पौराणिक मान्यता की पुष्टि याज्ञवल्क्य- स्मृति में विहित है, जिसमे चूडाकर्म आदि सस्कार पाप- अपहार के कारण बताए गए है।[2] शुचिता- सन्निवेश एव धर्मार्थ समाचरण के कारण सस्कार समाज मे विशेष लोकप्रिय थे।[3] पुराणो मे उत्सवो, परम्पराओं, व्रतो, उपवासो तथा विभिन्न क्रियाविधियो के प्रचलनो का उल्लेख मिलता है, जिनमे हिन्दू सस्कारो की परम्परा एव उनकी महन्ता पर प्रकाश पडता है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र सम्मत विचारों के जन-जीवन मे विशिष्ट प्रयोग एव सन्निवेश भी पौराणिक समाज में संस्कारो एव उनकी विधियों की परम्परा की जानकारी की जा सकती है।[4]

<u>विहित संस्कार</u>

सस्कारों की सख्या के सबंध में भारतीय विचारक सहमत नहीं है। गौतम ने सस्कारों की सख्या 40 कही है।[5] जिनमें अनेक पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ तथा वेदव्रत सम्मिलित कर दिए गए हैं। आलोचित पुराण मे भी ब्राह्मणों के संस्कारों की संख्या चालीस बताई गई है। जिसके अन्तर्गत देव, पितर, मनुष्य, भूत एवं ब्रह्म इन सबके अष्टकाकर्म, सात प्रकार के हविर्यज्ञ एवं सात प्रकार के

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 2.142- 43, 2.165- 166
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.13
3. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ० 33
4. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार,पृ० 16
5. गौतम धर्म सूत्र, 8.14- 24

सेमयज्ञ आदि की भी परिगणना की गई है।[1] मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि मे संस्कारों की कोई सख्या नहीं दी गई है। अपितु गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक के सस्कारों का सम्पूर्ण विधि विधानो के साथ वर्णन अवश्य किया गया है। परवर्ती निबन्धकारो ने ही अधिकांशतया सेलह संस्कारो को मान्यता दी और 'संस्कार' शब्द को शारीरिक शुद्धता के अर्थ में रूढ कर दिया। डा0 राजबली पाण्डेय ने इन समस्त सस्कारों को पाँच विभागो मे विभाजित किया है- (i) जन्म से पूर्व के सस्कार, (ii) शिशु के सस्कार, (iii) शिक्षा सबधी संस्कार, (iv) विवाह, (v) अन्त्येष्टि।[2] आलोचित पुराण मे गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन आदि सस्कारो का उल्लेख आया है।[3]

गर्भाधान

इस सस्कार को निषेक[4] अथवा चतुर्थी कर्म[5] भी कहा गया है। किन्तु वैखानस ने निषेक तथा गर्भाधान को भिन्न-भिन्न माना है।[6] इस संस्कार के द्वारा माता के गर्भ मे बीज रूप से शिशु प्रतिष्ठित किया जाता है।[7]

---

1 भवि0 पुराण, ब्राह्मपर्व, 2.145- 154
2. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, प्रस्तावना, पृ0 7
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.2- 6
4. मनुस्मृति, 2.16- 26, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.10- 11
5. पारस्कर गृह्यसूत्र, 1.11, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 8.10- 11
6. वैखानस धर्मसूत्र, 3.10
7. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश में उद्धृत पूर्वमीमांसा, 1.4.2,
" गर्भ· संधार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम्।"

आलोचित पुराण में आख्यात है कि स्त्री- पुरूष दोनो को प्रसन्नचित होकर ऋतु काल के पश्चात मन्त्र पूर्ण गर्भाधान करना चाहिये।[1] वैदिक युग मे इस संस्कार के कोई प्रमाण नही हैं, किंतु उसमें भी गर्भाधान के संकेत अवश्य हैं।[2] सूत्र काल मे इस संस्कार के विधि विधान अत्यन्त बढ गए। इस संबध मे शास्त्रकारों ने तिथियो का भी बडा विचार किया है। पुरूष संतति पैदा करने के लिए सम और कन्या संतान के लिए विषम तिथियों का विधान पाया जाता है।[3] वामन पुराण में उल्लिखित है कि सन्ध्या एव दिन में तथा प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, पचमी, दशमी, पूर्णिमा तिथियों में समागम वर्जित है।[4] इस संस्कार की पवित्र तिथियाँ द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी मानी गई है।[5] आलोचित पुराण में आख्यात है कि ऋतुकाल में स्त्री के साथ समागम करना चाहिये।[6]

पुंसवन

पुंसवनका शाब्दिक अर्थ हुआ ' पुरूष पुत्र की प्राप्ति हेतु किया गया यज्ञ कर्म।' वस्तुत· यही इस संस्कार का अभिप्राय भी है। होने वाली संतति पुत्र ही हो इसलिए यह संस्कार किया जाता है।[7] इस संस्कार को गर्भ स्थिति के तृतीय, चतुर्थ अथवा आठवें मास तक कभी भी किया जा सकता है।[8]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.5
2. ऋग्वेद, 10.184, अथर्ववेद, 6.9.1- 2 14 2 2
3. मनुस्मृति, 3 49
4. वामन पुराण, 14.40
5. वामन पुराण, 14.48
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 8.40- 41
7. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग 1, पृ0 166 पर उद्धृत शौनक-
   "पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम्।"
8. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1, पृ0 168
   "तृतीये मासि कर्त्तव्यं गृष्टेरन्यत्रशोभनम्।
   गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मासेऽथवाऽष्टमे।।"

आलोचित पुराण के अनुसार तीन मास के गर्भ हो जाने पर माता का पुंसवन संस्कार हो जाना चाहिये।[1] सुश्रुत के अनुसार इस संस्कार के समय विशिष्ट औषधियो का तनिक सा रस गर्भवती स्त्री के दाहिने नासापुर मे डाला जाना चाहिये, जिससे बालक को आरोग्य और स्वास्थ्य प्राप्त होता है।[2] आपस्तम्ब गृह्य सूत्र, हिरण्यकेशिनृगृह्यसूत्र एवं भारद्वाज गृह्यसूत्र के अनुसार पुसवन का संस्कार सीमन्तोन्नयन के उपरान्त होता है।[3]

<u>सीमन्तोन्नयन</u>

इस संस्कार का यह विशिष्ट नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इस संस्कार मे गर्भवती स्त्री के केशो में पति स्वयं सीमन्त (माँग) निकालता है।[4] यह एक सामान्य धारणा सर्वत्र प्रचलित है कि गर्भावस्था में विभिन्न भूतादि योनियाँ स्त्री पर आक्रमण कर सकती हैं।[5] मानवगृह्य सूत्र ने सीमन्तोन्नयन की चर्चा विवाह संस्कार में भी की है।[6] किन्तु आपस्तम्ब, बौधायन, भारद्वाज एवं पारस्कर ने स्पष्ट लिखा है कि यह केवल एक बार गर्भाधान के समय मनाया जाना चाहिये।[7]
गृह्यसूत्रों मे इस संस्कार को करने का समय गर्भस्थिति के चौथे या पाँचवे मास में कहा गया है।[8]

आलोचित पुराण में आख्यात है कि गर्भस्थिति के सातवों मास में या छठे मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार करें।[9]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.5
2. सुश्रुत, शरीर स्थान, अध्याय- 2
3. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 188
4. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1, पृ0 172-
   "सीमन्त· उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत्सीमन्तोन्नयनमिति कर्मनामधेयम्।", बौधायन गृह्यसूत्र, 1.10.7
5. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1,पृ0 172 पर उद्धृत आश्वलायनाचार्य
6. मानवगृह्यसूत्र, 1.12.2
7. पी0वी0काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 190
8. बौधायन गृह्यसूत्र, 1.10.1, आश्वलायनगृह्यसूत्र, 1.14.1, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, 14.1
9. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.6

जातकर्म

आलोचित पुराण के अनुसार यह संस्कार पुरूष बालक का ही होता है। मन्त्र पूर्वक सुवर्ण (शलाका) द्वारा उत्पन्न बालक का प्राशन करना जातकर्म कहलाता है। उसमे उसका नाम गुहा रहता है। नाम का प्रकाश (नाम का उच्चारण) ग्यारहवे दिन करना चाहिये।[1] संस्कार समाप्त होने पर ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी जाती थी। ब्रह्म तथा आदित्य पुराण मे कहा गया है कि "पुत्र के जन्म होने पर द्विजाति के घर पर संस्कार को देखने के लिए देव और पितर आते हैं।" अत यह दिन शुभ तथा महत्वपूर्ण है।[2] उस दिन सुवर्ण, भूमि, गौ, अश्व, छत्र, अज, माला, शय्या, आसन आदि का दान करना चाहिये।[3] व्यास के अनुसार पुत्र जन्म की रात्रि मे दिए हुए दान से अक्षय पुण्य होता है (पुत्रजन्मनि यात्राया शर्वर्या दत्तमक्षयम् ।व्यास)

यह संस्कार अत्यन्त प्राचीन है। वेदों मे इस संस्कार का नाम नही है। किन्तु बालक के सुरक्षित तथा सरल जन्म के लिए अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त ही प्राप्त होता है, जिसमे विविध प्रार्थनाएँ एवं अभिचार विधियाँ हैं।[4] बृहदारण्यकोपनिषद् में इस जातकर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन है।[5]

गृह्यसूत्रो में जातकर्म का पूरा स्वरूप उपलब्ध होता है। किन्तु समय विधि तथा विविध मन्त्रो के प्रयोग के सम्बन्ध में सूत्रों में परस्पर मतैक्य नही है। इसमें पिता द्वारा शिशु के उत्तम तथा शतवर्ष जीवन की कामना तथा बालक में तीव्र मेधा सम्पन्न होने की प्रक्रिया निहित थी। अत: यह संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आलोचित पुराण में आख्यात है कि पुरूष संतान के नाल काटने से पहले जातकर्म संस्कार किया जाता है और वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुवर्ण, मधु और घृत प्राशन कराया जाता है।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 182.7-8
2. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ० 98
3. वीरमित्रोदयसंस्कार प्रकाश, खण्ड-1, पृ० 199
4. अथर्ववेद, 1 11
5. बृहदारण्यकोपनिषद, 1.5.2
6. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.5

नामकरण

आलोचित पुराण में नामकरण संस्कार की अनेक तिथियो का उल्लेख मिलता है यथा दसवी तिथि, बारहवी तिथि, अठारहवें दिन अथवा एक मास पूरा होने पर भी किया जा सकता है अथवा पुण्य तिथि, अच्छे नक्षत्र और शुभ मुहुर्त में भी इस संस्कार को कर सकते है।[1] मनु ने भी इसी प्रकार का विधान प्रस्तुत किया है कि जन्म से दसवें अथवा बारहवे दिन किया जा सकता है। यदि इन दोनो दिन सम्भव न हो तो अन्य किसी शुभ तिथि अथवा पवित्र मुहूर्त एवं नक्षत्र में नामकरण किया जा सकता है।[2]

गृह्य सूत्रो में नामो के विषय में अनेक नियमो का निर्धारण कर दिया गया।[3] नाम मे कितने अक्षर हों, पुरूष अथवा स्त्री के नामों मे क्या वैशिष्ट्य हो, विभिन्न वर्णो के नामो में क्या–क्या अभिप्राय निहित हो आदि, अनेक प्रकार के विवेचन गृह्यसूत्रो मे प्राप्त होते हैं। मनु ने गृह्यसूत्रो के विभिन्न जटिल नियमों का परित्याग कर दिया और नामकरण के अत्यन्त सरल नियम दिए। ब्राह्मण का नाम मांगल्यपूर्ण, क्षत्रिय का नाम बलयुक्त, वैश्य का नाम धनवाचक तथा शूद्र का नाम जुगुप्सित होना चाहिये।[4] आलोचित पुराण मे मनु का कथन प्रस्तुत किया गया है कि ब्राह्मण के साथ शर्मा, क्षत्रिय के साथ रक्षार्थक (वर्मा), वैश्य के साथ पुष्टि प्रदायक नाम तथा शूद्र के साथ दास्यभाव युक्त कोई नाम हो।[5] स्त्रियों के नाम सुख देने वाले, मृदु भावना के प्रतीक, सरल, स्पष्ट, मनोहारी, मांगलिक अन्त में दीर्घवर्णयुक्त तथा आशीर्वाद व्यंजित करने वाले हों।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.6– 7
2. मनुस्मृति, 2.30,
   "नामधेयं दशम्या तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्।
   पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।"
3. आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.15.4– 10
4. मनुस्मृति, 2.31,
   " मंगल्यम् ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
   वैश्यस्य धनेसंयुक्त शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।।"
5. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.10– 11
6. वही, 3.11– 12

भविष्य पुराण मे स्पष्टोल्लेख है कि ब्राह्मण का शिव शर्मा इस प्रकार मागलिक नामकरण सस्कार करना चाहिये, क्षत्रियों का इन्द्र वर्मा, वैश्य का धन सयुक्त यथा धनवर्धन एवं शूद्र का जुगुप्सित नामकरण करना चाहिये यथा सर्वदास।[1]

बृहस्पति के अनुसार 'नाम ही सम्पूर्ण व्यवहार का हेतु रूप है, समस्त कार्यों मे शुभावह है भाग्य का कारण है। नाम से ही मनुष्य यश प्राप्त करता है अतएव नामकरण सस्कार अत्यन्त प्रशस्त है।[2]

निष्क्रमण

बालक को प्रथम बार घर से बाहर लाने का संस्कार ही निष्क्रमण है। वेदों अथवा वैदिक साहित्य मे इस संस्कार का कोई संकेत अथवा प्रसग प्राप्त नहीं होता। गृह्यसूत्रो मे भी यह सस्कार अत्यन्त सरल एवं संक्षिप्त रूप मे वर्णित है।[3] बालक का निष्क्रमण संस्कार प्राय तीसरे या चौथे मास में सम्पन्न किया जाता था।[4] पद्म पुराण में चौथे मास में निष्क्रमण का उल्लेख है।[4+1] आलोचित पुराण में आख्यात है कि शिशु का निष्क्रमण संस्कार बारहवें दिन किया जाता है अथवा इसे चौथे मास में भी कर सकते हैं।[5] तृतीय मास में सूर्यदर्शन तथा चतुर्थ मास में चन्द्रदर्शन कराने का विधान भी उपलब्ध है।[6] परवर्ती निबन्धों एवं धर्मशास्त्रो ने इस संस्कार मे अनेक लोकाचारों का भी समावेश कर दिया।

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.8-9
2. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1, पृ0 241 पर उद्धृत बृहस्पति-
   "नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतु ।
   नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म।।"
3. पारस्कर गृह्यसूत्र, 1.17, मानवगृह्यसूत्र, 1.19.1-6
4. मनुस्मृति,2.34
   "चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्। "

4+1-पद्मपुराण,उत्तरखण्ड, 236.22

5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व 3.12-13
6. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1,पृ0 250

<u>अन्नप्राशन</u>

प्राय सभी सूत्रों तथा स्मृतियों ने लगभग छ मास की आयु मे बालक के अन्नप्राशन संस्कार का विधान किया है।[1] मनु[2] तथा याज्ञवल्क्य[3] आदि प्राचीन स्मृतिकारो का भी यही मत है। नारद ने लिखा हे कि अन्नप्राशन संस्कार जन्म से छठे सौर मास में अथवा स्थगित होने पर आठवें, नवें या दसवे मास मे करना चाहिये किंतु कतिपय आचार्यों के अनुसार यह बारहवे मास मे अथवा एक वर्ष सम्पूर्ण होने पर भी किया जा सकता है।[4] लौगाक्षि ने छठे मास के साथ एक विकल्प भी दिया हे कि जब दाँत निकलने लगे तब अन्नप्राशन करना चाहिये।[5] अन्नप्राशन के समय बालक को मास, भात,मधु, घी दूध या इनमें से कुछ वस्तुओ का मिश्रण देना चाहिये। वस्तुत अन्नप्राशन लघु एव हितकारी आहार से कराना चाहिये। आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि छठे मास में अन्नप्राशन करने से परिवार में यथेष्ठ मगल की प्राप्ति होती है।[6] पद्म पुराण में भी छ मास के बाद अन्नप्राशन करने का वर्णन मिलता है।[7]

---

1 पारस्कर गृह्यसूत्र 1.19, आश्वलायन गृह्यसूत्र, 1.16 1-6, भारद्वाज गृह्यसूत्र,1.27

2. मनुस्मृति, 2.34

3 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 12

4 डा0 राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 115

5. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1, पृष्ठ 267 पर उद्धृत लौगाक्षि

6. भवि0 पु0 ब्राह्म पर्व, 3.13

7. पद्म पुराण/ उत्तर,236.22.

<u>चूडाकरण</u>

धर्मशास्त्रो के अनुसार दीर्घ आयु, सौन्दर्य तथा कल्याण की प्राप्ति के लिए बालक के लिए चूडाकरण संस्कार अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेद संबंधी ग्रंथो से भी चूडाकरण के धर्मशास्त्रोक्त प्रयोजन की पुष्टि होती है।[1] चूडाकरण संस्कार के मूल में स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य की भावना ही मुख्य है। गृहयसूत्रो के अनसार चूडाकरण जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त में अथवा तृतीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व करना चाहये।[2] मनु ने लिखा है कि वेदों के नियमानुसार धर्मपूर्वक समस्त द्विजातियों का चूडाकर्म प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में सम्पन्न करना उचित है।[3] परन्तु कुछ आचार्यों की सम्मति में यह स्स्कार पञ्चम तथा सप्तम वर्ष तक करने का विधान है। आश्वलायन का कथन है कि तृतीय या पञ्चम वर्ष में चौलकर्म प्रशस्त माना जाता है किन्तु यह सप्तम वर्ष में अथवा उपनयन के साथ भी किया जा सकता है।[4]

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि शिशुओं का चूडाकर्म संस्कार प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिये।[5] पद्म पुराण में शिशु के जन्म के ढाई वर्ष पश्चात् चूडाकरण करने का उल्लेख पाया जाता है।[6]

---

1 सुश्रुत,चिकित्सा स्थान, 24.72

2. पारस्कर गृह्य सूत्र, 2.1.1-2

3 मनुस्मृति, 2.35

4. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग-1,पृ0 296 पर उद्धृत आश्वलायन

5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.14

6 पद्म पुराण, उत्तर, 236.22

उपनयन संस्कार

अथर्ववेद में उपनयन शब्द का प्रयोग ब्रह्मचारी को गृहण करने के अर्थ में किया गया है।[1] यहाँ इसका आशय आचार्य के द्वारा ब्रह्मचारी की वेद विद्या मे दीक्षा से है। अपरार्क ने लिखा है कि उपनयन शब्द से अन्तेवासी छात्र और गायत्री के बीच का सम्पर्क अभिप्रेत है, जिसकी स्थापना आचार्य करता है।[2] विष्णु पुराण में वर्णित है कि उक्त संस्कार से संस्कृत होकर ब्रह्मचारी को विद्या लाभ करना चाहिये।[3] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी निरूपित है कि उपनयन संस्कार विद्यार्थी के लिए श्रुति विहित संस्कार है।[4] उपनयन संस्कार से सुसंस्कृत होने के उपरान्त आचार्य के आश्रम में नैष्ठिक जीवन यापन तथा विद्या लाभ करने का उल्लेख अनेक पुराणो में हुआ है।[5] डा० राजबली पाण्डेय के अनुसार उपनयन संस्कार के बाद ही बालक का अनुशासित एवं गम्भीर जीवन प्रारम्भ होता था।[6] मिताक्षरा का उल्लेख है कि यदि प्राकृतिक आवश्यकता के समय यज्ञोपवीत नहीं किया गया तो प्रायश्चित करना पड़ता है।[7] अपरार्क ने लघु हारीत का उद्धरण देते हुए यह निर्देश दिया है कि ब्राह्मण यदि यज्ञोपवीत के बिना भोजन करता है तो उसे प्रायश्चित करना चाहिये।[8]

---

1. अथर्ववेद, 11 5.3
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.14 पर अपरार्क की व्याख्या।
3. विष्णु पु०, 3.10.12
4. आपस्तम्ब ध०सू० 1.1.9
5. विष्णु पु०, 3.10.12, 4.3.37, 2.13.39, 5.21.19
   ब्रह्माण्ड पु०, 3.35.3
6. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ० 99–110
7. मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति, 3.2.49
8. अपरार्क, 1171, 1173, दृष्टव्य बौधायन ध०सू० 2.21

आयु

भविष्य पुराण मे उल्लिखित है कि ब्राह्मण शिशु का उपनयन संस्कार गर्भ से आठवे वर्ष मे करना चाहिये, क्षत्रिय का उपनयन सस्कार गर्भ से ग्यारहवे वर्ष मे करना चाहिये। वैश्यों के लिए यह व्रत बारहवे वर्ष में भी वैध माना गया है।[1] गृह्य सूत्रो मे भी इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] आलोचित पुराण मे आख्यात है कि अधिक ब्रह्मवर्चस की कामना हो तो ब्राह्मण शिशु का यज्ञोपवीत संस्कार पाँचवे वर्ष में करना चाहिये[3] राजाओ के शिशुओ को अधिक बली होने की कामना से छठे वर्ष में यज्ञोपवीत करा लेना चाहिये। इसी प्रकार विशेष धन उपार्जित करने की कामना से वैश्य का आठवें वर्ष में उपनयन सस्कार सम्पन्न करना चाहिये।[4] जैसा कि मनु का कथन है।[5] भविष्यपुराण का कथन है कि सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्राह्मण कुमार की सावित्री अतिक्रमण नही करती, उसी प्रकार क्षत्रियो का बाइस वर्ष से पूर्व तथा वैश्यो का चौबीस वर्ष की अवस्था तक भी उपनयन सस्कार हो सकता है।[6] किन्तु इसके ऊपर हो जाने पर भी जिनका उपनयन सस्कार नहीं होता वे असंस्कृत हैं। सावित्री के पतित होने के कारण व्रात्य हो जाते हैं और व्रात्यस्तोम यज्ञ करने से ही प्रायश्चित सम्भव है।[7] मनु स्मृति में भी इसी प्रकार का विधान मिलता है।[8] ऐसे अपवित्र के साथ कभी भी आपत्ति मे भी

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.15-16
2. पारस्कर गृ0सू0 2.2 शांखायन गृ0सू0, 2.1
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3 16
4. वही, 3.17
5. मनुस्मृति, 2.37
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व 3.18
7. वही, 3.19
8. मनुस्मृति, 2.39

अध्ययन, अध्यापन किसी ब्राह्मण को नही रखना चाहिये।[1]

चर्म

आलोचित पुराण में उपनयन व्रत पालन करने वाले व्रतियों के लिए तीन प्रकार के चर्म का उल्लेख मिलता है– ब्राह्मण के लिए कृष्ण मृग चर्म, क्षत्रिय के लिए रूरू मृग चर्म और वैश्य के लिए बकरे का चर्म।[2] इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यो को सन, रेशमी आदि विविध प्रकार के वस्त्र क्रमानुसार धारण करने चाहिये।[3]

प्राचीन काल में पशुओ के चर्म का वस्त्र के रूप मे प्रयोग अजिन– वासिन्[4] इस विशेषण से सूचित होता है तथा चर्मकारो के व्यापार का उल्लेख मिलता है।[5] मरूद्गण भी मृग चर्म धारण करने के लिए प्रसिद्ध थे।[6] पारस्कर गृह्य सूत्र मे कहा गया है कि ब्राह्मण का उत्तरीय कृष्ण मृग चर्म का होना चाहिये, राजन्य का उत्तरीय उस मृग के चर्म का होना चाहिये जिसके चर्म पर छोटी–छोटी बुंदकी हों और वैश्य का बकरे का हो।[7] गोपथ ब्राह्मण कहता है कि सुन्दर मृगचर्म वर्चस्व तथा बौद्धिक और अध्यात्मिक सर्वोच्चता का प्रतीक है।[8]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3 20
2. वही, 3.21
3. वही, 3.22
4. शतपथ ब्रा०, 3.9.1.12
5. वाजसनेय संहिता, 30 15
6. ऋग्वेद, 1.166.10
7. पारस्कर गृ०सू०, 2.5.2
8. विशेष द्रष्टव्य, राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ० 172

मेखला

भविष्य पुराण मे आख्यात है कि ब्राह्मण की मेखला मूँज की बनी हुई, त्रिसूती, तीन लडियो वाली, समान तथा चिकनी होनी चाहिये। क्षत्रिय के लिए मूर्वा की बनी होनी चाहिये तथा वैश्य के लिए सन के रेशों की होनी चाहिये।[1] मूँज न मिलने पर ब्राह्मणों के लिए कुश, अश्मन्तक अथवा बल्वज (बगही) की मेखला बनानी चाहिये।[2]

गौतम[3], आश्वलायन गृह्य सूत्र[4], बौधायन गृह्य सूत्र[5], मनुस्मृति[6] तथा काठक गृह्य सूत्र[7] आदि मे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय एव वैश्य बच्चे के लिए क्रमश मुञ्ज, मूर्वा एवं पटुआ की मेखला का विधान है। बौधायन गृह्यसूत्र ने मुञ्ज की मेखला सबके लिए मान्य कही है।[8]

यज्ञोपवीत

भविष्य पुराण के अनुसार ब्राह्मण का उपवीत कपास का होना चाहिये जो तीन लड़ियों मे हो और उर्ध्ववृत हो, राजाओ एव क्षत्रियों का यज्ञोपवीत सन के सूतों से बना होना चाहिये, वैश्यो का भेड़ के रोम के सूतों का बना हुआ होना चाहिये।[9] अन्यान्य धर्मशास्त्रों के नियमानुसार भी ब्राह्मण को कपास का, क्षत्रियों को सन का तथा वैश्य को भेड़ के ऊन का उपवीत धारण करना चाहिये।[10] किन्तु समस्त वर्णों के लिए कपास का यज्ञोपवीत विकल्प के रूप में विहित है।[11]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.23
2. वही, 3.24
3. गौतम गृ0सू0, 1.15
4. आश्वलायन गृ0सू0, 1.19.11
5. बौधायन गृ0सू0, 2.5.13
6. मनुस्मृति, 2.42
7. काठक गृ0सू0, 41.12
8. बौधायन गृ0सू0, 2.5.13
9. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.25
10. मनुस्मृति, 2.44, बौधायन ध0सू0, 1.5.5, विष्णु ध0सू0, 27.29
11. पैठीनसि, वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, भाग-1, पृ0 415,"कार्पासमुपवीतं सर्वेषाम्।"

दण्ड

आलोचित पुराण में लिखा है कि ब्रह्मचारियों के दण्ड भी तीन प्रकार के होने चाहिये। ब्राह्मण बेल, पलाश अथवा पाकर का दण्ड ग्रहण करे। क्षत्रिय बरगद, खदिर अथवा बेंत का तथा वैश्य पीलु वृक्ष का गूलर अथवा पीपल का दण्ड ग्रहण करे।[1] इन दण्डो को उपनयन संस्कार के समय धर्मत धारण करना चाहये। ब्राह्मणो का दण्डमाप उनके केशान्त (भाग) तक होना चाहिये। राजाओ का दण्ड ललाट पर्यन्त तक तथा वैश्यो का नासिका के अन्त तक होना चाहिये।[2] वे सब दण्ड देखने मे सीधे तथा सुन्दर हों जिनके देखने से मनुष्यो के मन मे किसी प्रकार की उद्वेग भावना न फैले। उन पर उत्तम बकला लगा हो, कहीं अग्नि से जले हुए न हो। इस प्रकार अपनी इच्छानुसार दण्ड ग्रहण कर भास्कर की उपासना कर भली-भाँति गुरू की पूजा कर ब्रह्मचारी यथा विधि भिक्षाटन करे।[3]

आश्वलायन गृह्य सूत्र[4] के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए क्रम से पलाश, उदुम्बर एव बिल्व का दण्ड होना चाहिये, किन्तु विकल्प मान्य थे जो प्रादेशिक प्रथाओं और स्थान विशेष की सुविधा पर आधारित थे। गौतम के अनुसार दण्ड घुना हुआ नहीं होना चाहियो। उसकी छाल लगी रहनी चाहिये और ऊपरी भाग टेढा होना चाहिये।[5] किन्तु मनु के अनुसार दण्ड सीधा, सुन्दर एव अग्निस्पर्श से रहित होना चाहिये।[6]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.26-27
2. वही, 3.28- 29
3. वही, 3.29- 31
4. आश्वलायन गृ0सू0, 1.19.13, 1.20.1
5. गौतम ध0सू0, 1.26
6. मनुस्मृति, 2.47

भिक्षाटन

आलोचित पुराण मे आख्यात है कि उपनीत ब्राह्मण पहले भवत् शब्द का प्रयोग कर भिक्षाटन करे, क्षत्रिय वाक्य के मध्य में भवत् शब्द का प्रयोग करे और वैश्य वाक्य के अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करे। माता, बहन अथवा अपनी मौसी से सर्वप्रथम भिक्षा की याचना करनी चाहिये। जो ब्रह्मचारी की अवमानना न करे।[1] भविष्य पुराण मे यह भी लिखा है कि जो अपने कर्म मे निरत हों, वेदो मे आस्था रखते हो, यज्ञादि करने वाले और श्रद्धालु प्रकृति के हों उनके घर से ब्रह्मचारी अपनी भिक्षा संग्रह करे।[2] प्रतिदिन चित्त एव इन्द्रियो को निरूद्ध कर उसे गृहस्थो के घरों से भिक्षा की याचना करनी चाहिये।[3] यदि अन्यत्र मिलना एकदम असम्भव हो तो शूद्र को छोड़कर ग्राम भर मे भिक्षाटन करना चाहिये।[4] यदि सर्वथा असम्भव हो तो चारों वर्णों मे भिक्षाटन करना चाहिये।[5] ब्रह्मचारी को सर्वदा भिक्षा द्वारा ही जीविका निर्वाहित करनी चाहिये। एक व्यक्ति का अन्न खाने वाला व्रती नहीं कहा जा सकता।[6] भिक्षाटन द्वारा जीविका चलाने वाले ब्रह्मचारी का भोजन भी उपवास की भाँति स्मरण किया जाता है। यही कथन मनुस्मृति, बौधायन धर्मसूत्र एवं याज्ञवल्क्य स्मृति मे भी प्राप्त होता है।[7]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र[8] एव गौतम धर्मसूत्र[9] के अनुसार ब्रह्मचारी अपपात्रों (चाण्डाल आदि) एवं अभिशस्तों (अपराधियों) को छोड़कर किसी से भी भोजन माँग सकता है। किन्तु पराशर माधवीय ने

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.31 – 33
2. वही, 4.153
3. वही, 4.154
4. वही, 4.155
5. वही, 4.156
6. 4.159
7. वही, 4.160, मनुस्मृति 2.189, बौधायन ध०सू०, 1.5.56, याज्ञवल्क्य स्मृति,1.187
8. आपस्तम्ब ध०सू०, 1.1.3.25
9. गौतम ध०सू०, 2.41

लिखा है कि आपात् काल मे भी शूद्र के यहाँ का पका भोजन भिक्षा के रूप में नहीं लेना चाहिये।[1]

डा0 राजबली पाण्डेय का मत है कि भिक्षा के इस कृत्य द्वारा विद्यार्थी के मन पर यह अंकित करने का प्रयत्न किया जाता था कि समाज की एक अ- वित्तीय इकाई होने के कारण वह अपने निर्वाह के लिए सार्वजनिक सहायता पर निर्भर है तथा उसे उस समय तक समाज से अपना पोषण लेना चाहिये जब तक कि वह उसका अर्जन करने वाला सदस्य न हो जाए।[2]

भोजन

आलोचित पुराण में लिखा है कि पूर्वाभिमुख होकर भोजन करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है, दक्षिण मुख से यश की प्राप्ति होती है, पश्चिम मुख करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और उत्तर मुख करने से ऋत की प्राप्ति होती है।[3]

द्विज समाहित चित्त होकर विधिपूर्वक आचमन कर अन्न का भक्षण करे। भोजन करने के उपरान्त भी जल से अच्छी तरह आचमन कर सब इन्द्रियो का स्पर्श करें।[4] अन्न की सदा पूजा करे। कुत्सित भावना का सर्वथा परित्याग कर उसका भक्षण करे।[5] आलोचित पुराण मे मनु का कथन उद्धृत करते हुए उल्लिखित है कि अन्न का अभिनन्दन करने के बाद भोजन करे। पूजित अन्न सदा बल

---

1. पी0वी0 काणे, धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 226
2. राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, पृ0 179
3. भवि0 पु0, 3.35
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.36
5. वही, 3.37

एव ओज प्रदान करता है।[1] और अपूजित अन्न के भोजन से उन दोनों का विनाश होता है। अपना झूठा किसी को न दें और न स्वय किसी का झूठा खाएँ।[2] अपने ही बचे हुए जूठे अन्न को कुछ देर बाद फिर से न खाए। जो कोई लोभवश ऐसा करता है वह दोनों लोको में नष्ट होता है।[3] इस सदर्भ मे धनवर्धन नामकवैश्यकी कथा उल्लिखित है जो बचे हुए भोजन का फिर से भक्षण करने के कारण उसी क्षण सौ टुकड़ो मे परिणत हो गया।[4] अत्यधिक भोजन करना आरोग्य, आयुष्य और स्वर्ग इन सबको प्रदान नहीं करता।[5]

उपनयन संस्कार (कर्मयोग)

सर्वप्रथम गुरु शिष्य का उपनयन सस्कार करके शौच का आदेश करे।[6] फिर आचमन अग्नि कार्य और सन्ध्योपासन का आदेश करे। आचार्य सर्वदा उत्तराभिमुख हो आचमन करके योग्य शिष्यो को पढ़ाए।[7] शिष्य सर्वथा अपनी इन्द्रियों को वश मे रख ब्रह्माञ्जलि बाँधकर अध्ययन करे, लघु वस्त्र धारण करे, एकाग्रचित रहे, मन प्रसन्न रखे तथा दृढ़ रखे।[8] वेदाध्ययन के प्रारम्भ और समाप्ति पर सर्वदा गुरू के चरणों की पूजा करनी चाहिये। दोनो हाथो को जोड़कर रखना चाहिये यही ब्रह्माञ्जलि कही जाती है।[9]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.38
2. वही, 3.39
3. वही, 3.40
4. वही, 3.40- 47
5 वही, 3.48 - 51
6 वही, 4.5
7. वही, 4.6
8. वही, 4.7
9. वही, 4.8

शिष्य को अपने हाथों से गुरू के चरणो का स्पर्श करना चाहिये अर्थात् उस समय अपने दाहिने हाथ से गुरू के दाहिने चरण तथा बाएँ हाथ से गुरू के बाएँ चरण का स्पर्श करना चाहिये।[1] सर्वदा पढाते समय गुरू निरालस भाव से शिष्य को यह आज्ञा करे कि 'अब पाठ प्रारम्भ करो' और इसी प्रकार पाठ समाप्ति पर 'अब पाठ बन्द करो' ऐसी आज्ञा दे।[2]

समय

इस संस्कार को सम्पन्न करने के समय का भी निश्चित निर्धारण किया गया है। सामान्यत सूर्य की उन्तरायण स्थिति मे यह संस्कार किया जाता था।[3] किन्तु वैश्य बालक का उपनयन सूर्य के दक्षिणायन रहते समय भी किया जा सकता था।[4]

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार सर्वदा वसन्त ऋतु मे प्रशस्त माना गया है। मनु ने क्षत्रियों का यज्ञोपवीत संस्कार ग्रीष्म ऋतु में श्रेयस्कर बतलाया है। वैश्यवर्ण का उपनयन संस्कार सर्वदा शरद ऋतु के आने पर श्रेष्ठ है।[5] आपस्तम्ब धर्मसूत्र[6] हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र[7] में भी उपयुक्त ऋतुओं का उल्लेख मिलता है। परवर्ती धर्मशास्त्रों ने उपनयन संस्कारों के लिए मासें, दिनों तथा तिथियों के विषय में ज्योतिष का विस्तृत विधान प्रस्तुत कर दिया है।

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.9
2. वही, 4.10
3. पारस्कर गृ0सू0, 2.2, आश्वलायन गृ0सू0 1.19
4. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड-1, पृ0 354 पर उद्धृत बृहस्पति।
   "दक्षिणे तु विशां कुर्यात्।"
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.221- 222
6. आपस्तम्ब ध0सू0, 1.1.1.19
7. हिरण्यकेशि गृ0सू0, 1.1

आचमन एवं उपस्पर्श विधि

भविष्य पुराण मे ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए आचमन एव उपस्पर्श का पवित्रता की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व उल्लिखित है। ब्राह्मण को हाथ पैर धोकर, पूरब की ओर या उत्तर की ओर मुँह करके, पवित्र स्थान पर बैठकर दाहिनी भुजा को दक्षिण की ओर करके, कन्धे पर यज्ञोपवीत को धारण करके, अपने चरणो को समान करके, शिखा को बाँध करके, न तो बैठते हुए, न बात करते हुए, न तो देखते हुए, न तो क्रुद्ध होकर, न तो दूर से किसी वस्तु का परित्याग कर, अत्यन्त निर्मल एव समुज्जवल जल से आचमन करने से ब्राह्मण पवित्र हो जाता है। न तो गर्म, न फेनयुक्त, न तो कुलषित, न तो वर्ण एव रसगन्ध से हीन तथा न तो बुदबुद करती हुई जलबिन्दुओ से पण्डित को आचमन करना चाहिये।[1]

तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र[3] के अनुसार पृथिवी के गढ्ढे के जल से आचमन नहीं करना चाहिये।

आलोचित पुराण में ब्राह्मण के दाहिने हाथ मे पाँच तीर्थों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिन्हें देवतीर्थ, पितृतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, प्रजापत्यतीर्थ तथा सौम्य तीर्थ कहा जाता है।[4] कतिपय शास्त्रो मे सौम्य तीर्थ को ही आग्नेय कहा गया है।[5] अँगूठे के मूल भाग से जो रेखा प्रारम्भ होती है, उसे वशिष्ठ

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.57-61
2. तैत्तरीय ब्राह्मण, 1.5.10
3. आपस्तम्ब ध०सू०, 1.5.15.5
4. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.62- 63
5. वैखानस गृ०सू०, 1.5

आदि द्विजोन्तम ब्राह्मतीर्थ कहते है। कनिष्ठिका के मूल में प्राजापत्यतीर्थ एव अंगुलियो के अग्रभाग मे देवतीर्थ विद्यमान है।[1] तर्जनी एवं अंगूठे के मध्य भाग पितृतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। देवकार्य मे प्रशस्त सौम्यतीर्थ हाथ के मध्य भाग में स्थित है।[2] देवता की अर्चना करना, बलि का हरण तथा उसका प्रक्षेपण करना इत्यादि को देवतीर्थ से करना चाहिये।[3] अन्न का दान सम्व्य तथा लाजाहोम आदि सौम्य कार्य प्राजापत्य तीर्थ से करना चाहिये।[4] कमण्डलु का उपस्पर्श एव दधि का सेवन विचक्षण व्यक्ति को सदैव सौम्यतीर्थ से करना चाहिये।[5] पितरों का तर्पण पितृतीर्थ से करना चाहिये। श्रेष्ठ उपस्पर्श को सदैव ब्राह्मतीर्थ से करना चाहिये।[6] अँगुलियो को घना करके एकाग्र होकर एव बिना मुँह से शब्द किये तीन बार जल पीना चाहिये। जिससे तीनों वेद प्रसन्न होते हैं।[7] पहले पहल जो दाहिने हाथ के अँगूठे के मूल भाग से मुँह को साफ करता है उससे अथर्ववेद प्रसन्न हो जाता है।[8] जो दो बार मार्जन करता है उससे इतिहास पुराण प्रसन्न होते हैं। जो ब्राह्मण अपने मस्तक का अभिषेक करता है तथा अपनी शिखा का स्पर्श करता है, उससे रूद्र एवे ऋषिगण प्रसन्न हो जाते है। जो अपनी आँखों का स्पर्श करता है उससे सूर्य देवता प्रसन्न हो जाते हैं[9] नासिका का स्पर्श करने से वायु, कान का स्पर्श करने से दिशाएँ, भुजाओं का स्पर्श करने से यम, कुबेर, वसु, वरूण तथा अग्नि प्रसन्न हो जाते है।[10] जो प्राणों की ग्रन्थि एवं नाभि का स्पर्श करता है उससे राजेन्द्र, जो अपने पैरों का अभिषेक करता है उससे विष्णु, जो पृथ्वी पर चारो तरफ से ढक लेने वाले जल का विसर्जन करता है

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.63- 64
2. वही, 3.65
3 वही, 3.66
4. वही, 3.67
5. वही, 3.68
6. वही, 3.69
7. वही, 3.70- 72
8. वही, 3.73
9. वही,3.74-75
10. वही, 3.76-77

उससे सूर्य एव जिसके जल की बूँदे पृथ्वी के अन्तरतम मे गिरती है उससे चारो भूतग्राम प्रसन्न हो जाते है। अँगूठे एवं अगुली से आँख का स्पर्श करना चाहिये।[1] अनामिका एवं अँगूठे से नाक का स्पर्श करना चाहिये। मध्यमा एवं अँगूठे से मुख का, कनिष्ठिका एवं अँगूठे से कान का, अगुली से हाथ का तथा अँगूठे से समूचे मण्डल का स्पर्श करना चाहिये।[2] नाभि तथा सिर का स्पर्श सभी अँगुलियो से करना चाहिये। अँगूठा अग्नि कहा गया है, तर्जनी वायु, अनामिका सूर्य तथा कनिष्ठका इन्द्र कही गई है। मध्यमा को प्रजापति कहा गया है।[3]

इस उपर्युक्त विधि से आचमन करके ब्राह्मण समग्रलोक को, संसार को, देवताओ को नि.संदिग्ध रूप से निरन्तर प्रसन्न करता है।[4] ब्राह्म विप्र रूपी तीर्थ के द्वारा प्रतिदिन काल का उपस्पर्श करना चाहिये। इस पैत्रिक शरीर एव त्रैदेशिक (मन) द्वारा कभी भी नहीं। हृदय के गीतो (स्तोत्रों) द्वारा ब्राह्मण पवित्र (संतुष्ट) होते है। कण्ठ मे विद्यमान गीतो (स्तोत्रो) द्वारा राजा पवित्र (सतुष्ट) होता है।[5]

मेखला, चर्म, दण्ड, उपवीत और कमण्डलु – इनमे से किसी के नष्ट होने पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल प्राशन करने से पवित्रता प्राप्त होती है। यज्ञोपवीत को बाँए कन्धे पर रखकर दाहिने हाथ को दोनो जानुओं के मध्य भाग मे रखकर आचमन करने वाला ब्राह्मण पवित्रता को प्राप्त होता है एव उप्युर्क्त विधिपूर्वक आचमन करके सभी लोकों में निवास करने वाला स्वर्ग को प्राप्त करता है।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 3.78 – 81
2 वही, 3.82 – 83
3. वही, 3.84 – 85
4. वही, 3.86
5. वही, 3.87 – 88
6. वही, 3.90 – 95

प्रणव एवं सावित्री का माहात्म्य

भविष्य पुराण मे आख्यात है कि ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते समय आरम्भ और समाप्ति पर सदा प्रणव का उच्चारण करे। क्योंकि वेदाध्ययन के पूर्व ओंकार का उच्चारण न करने से पाठ व्यर्थ हो जाता है और समाप्ति पर न करने पर सारा पाठ विशीर्ण हो जाता है।[1]

ओम् शब्द प्राचीनकाल से ही परम पवित्र माना जाता रहा है और परमात्मा का प्रतीक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] मे ओंकार की स्तुति पायी जाती है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार 'ओम' शब्द 'ब्रह्म' है।[3] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार ओंकार स्वर्ग का द्वार है।[4]

आलोचित पुराण मे ओंकार के लक्षणो को उल्लिखित किया गया है कि अकार, उकार तथा मकार प्रजापति ने तीनो वेदो से तथा भू , भुव , स्व को ग्रहण कर इन तीनो वेदो से ही इनके एक एक पादों का दोहन किया है। इस सावित्री की ये तीनों ऋचाएँ है। इन तीनों अक्षरो को व्याहृति पूर्वक दोनो सन्ध्याओ के अवसर पर जप करने वाला ब्राह्मण वेदाध्ययन का पुण्य प्राप्त करता है।[5]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.11
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2.11
3. तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.8
4. आपस्तम्ब ध0सू0, 1.4.13.6
5. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 4.13-16

मार्कण्डेयपुराण, वायुपुराण, वृद्धहारीतस्मृति[1] तथा कतिपय अन्य स्मृतियों में ओम् शब्द के तीनो अक्षरो की अयुक्ति के साथ विष्णु लक्ष्मी एवं जीव के तथा तीनो वेदों एवं तीनों लोकों के समानुरूप माना गया है।[2] कठोपनिषद् में 'ओम्' को तीनों वेदों का अन्त (परिणाम), ब्रह्मज्ञान का उद्गम एवं इसका प्रतीक माना गया है। आलोचित पुराण के अनुसार ओंकारपूर्वक ये तीनों अक्षय महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा का परमोन्तममुख है।[3] एकान्त में बाहर जाकर इस त्रिक् अर्थात् व्याहृति पूर्वक प्रणव का एक सहस्र बार जप करने वाला ब्राह्मण एक मास मे घोर से घोर पाप से भी उसी प्रकार छूट जाता है जैसे सर्प अपने पुराने चर्म से।[4] इस ऋचा से तथा अपनी क्रिया से विहीन होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सत्पुरूषों में निन्दा के पात्र बनते हैं।[5] जो ब्राह्मण निरालस भाव से तीन वर्षों तक प्रतिदिन सावित्री का अध्ययन करता है, वह आकाश की भाँति व्यापक मूर्तिमान वायु का स्वरूप धारण कर परमब्रह्म मे विलीन हो जाता है।[6]

आलोचित पुराण में ब्रह्मचारी के लिए यह विधान दिया गया है कि ब्राह्मण को जप अवश्य ही करना चाहिये क्योंकि जप यज्ञ करने से ही वह ब्राह्मण कहलाता है।[7] प्रातः काल सूर्य के दर्शन होने तक खड़े/ गायत्री का जप करना चाहिये और उसे इसी प्रकार सायंकाल की सध्या को भी भली-भाँति नक्षत्रों के आकाश मे समुदित हो जाने तक बैठकर करना चाहिये।[8] जो ब्राह्मण इस पूर्वा और परा संध्याओं की उपासना नहीं करता वह द्विजाति के सभी अधिकारों से शूद्र के समान बाहर कर

---

1. वृद्धहारीत स्मृति, 6.59- 62
2. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1,पृ0 223
3. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 4.19
4. वही, 4.17
5. वही, 4.18
6. वही, 4.20- 21
7. वही, 4.26- 27
8. वही, 4.27-28

देने योग्य है।[1] जो ब्राह्मण नियमपूर्वक सविधि एव ऋचा का भी अध्ययन करता है उसे वह ऋचा पवित्र दूध, घृत, मधु देती है।[2] पारस्कर गृह्य सूत्र मे भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए छन्द निश्चित किए गए है, जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण के लिए सावित्री मन्त्र का उपदेश क्रमश गायत्री, त्रिष्टुप तथा जगती छन्दों में किया जाना चाहिये।[3] किन्तु भविष्य पुराण मे ऐसे किसी नियम का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

मनुस्मृति में लिखा है कि इस मंत्र का उपदेश होने पर बालक का दूसरा जन्म सिद्ध होता है। जिसमे उसकी माता सावित्री तथा पिता आचार्य है।[4] आलोचित पुराण भी कुछ इसी प्रकार का कथन प्रस्तुत करता है कि मौञ्जीबन्धन के समय बालक का दूसरा जन्म होता है, जिसमें उसकी माता सावित्री और पिता आचार्य होता है।[2] आलोचित पुराण मे सावित्री के माहात्म्य को उल्लिखित करते हुए कहा गया है कि केवल सावित्री का ज्ञान रखने वाला भी सयमी ब्राह्मण जो अनियन्त्रितचिन्त, सर्वभक्षी तथा सर्वविक्रमी है उस त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है।[6]

अभिवादन

अभिवादन तीन प्रकार का होता है- नित्य (प्रतिदिन के लिए आवश्यक), नैमित्तिक (विशिष्ट अवसरों पर ही करने योग्य) एवं काम्य (किसी विशिष्ट काम या अभिकाक्षा से प्रेरित होने पर किया जाने वाला)।[7] नित्य के विषय में आपस्तम्ब धर्मसूत्र[8] ने लिखा है कि "प्रतिदिन विद्यार्थी को रात्रि के

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.30- 31
2. वही, 4.34- 35
3. पारस्कर गृ0सू0, 2.3
4. मनुस्मृति, 2.170 " तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते।"
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.138- 139
6. वही, 4.47
7. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 237
8. आपस्तम्ब ध0सू0, 1.2.5.12- 13

अन्तिम प्रहर मे उठना चाहिये और गुरू के सन्निकट खडे होकर यह कहना चाहिये कि 'यह मै......प्रणाम करता हूँ' उसे अन्य गुरूजनो एव विद्वान ब्राह्मणो को प्रात भोजन के पूर्व प्रणाम करना चाहिये।[1] मनु ने लिखा है कि जो ज्येष्ठ एव श्रद्धास्पदो को प्रणाम करता है वह दीर्घ आयु, ज्ञान, यश एव शक्ति प्राप्त करता है।[2]

भविष्य पुराण मे अभिवादन के नियमो का विस्तृत उल्लेख मिलता है। यदि ब्रह्मचारी शय्या पर स्थित हो तो भी गुरू के आने पर उठकर अभिवादन करे।[3] सर्वदा वृद्धो अर्थात् गुरूजनो की सेवा मे निरत रहने वाला तथा उन्हे अभिवादन करने वाले की आयु, बुद्धि, यश और बल इन चार वस्तुओ की वृद्धि होती है।[4] अपने से बडे लोगो को प्रणाम करने से पूर्व 'असौ नाम अहमस्मि' इस प्रकार अपना परिचय देते हुए अभिवादन करे।[5] अपने नाम का उच्चारण कर प्रणाम करते समय अन्त में 'भौ ' अर्थात् अभिवादन में 'असौ नाम अहमस्मि भौ ' शब्द का उच्चारण करना चाहिये। नाम का स्वरूप ही भौः शब्द का स्वरूप है।[6] अभिवादन करने पर ब्राह्मण को 'हे सौम्य। दीर्घायु हो' ऐसा आर्शिवाद देना चाहिये।[7] यदि कोई ब्राह्मण अभिवादन करने पर प्रत्याभिवादन करना नहीं जानता तो उसे शूद्रवत् जानना चाहिये।[8]

---

1. देखिये, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.26
2. मनुस्मृति, 2.120 - 121
3. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 4.48
4. वही, 4.50
5. वही, 4.51
6. वही, 4 53
7. वही, 4 54
8. वही, 4.55

अभिवादन करने से विष्णु एव शकर ये दोनो देवता पूजित होते है।[1] ब्राह्मण को अभिवादन करने पर 'कुशल' शब्द कह कर वार्ता पूछनी चाहिये। क्षत्रियों को अनाश्य, वैश्य को क्षेम तथा शूद्र को आरोग्य पूछना चाहिये।[2] ये नियम आपस्तम्ब[3] एव मनु[4] के नियमो से साम्य रखते है। पुराणकार ने मनु का कथन उल्लिखित किया है कि यदि कोई अपने से छोटा है किन्तु वह दीक्षित है तो उसके लिए 'भो' अथवा 'भवत्' शब्द का प्रयोग करे। परस्त्री के लिए 'भवती' अथवा 'भगिनी' शब्दो का उच्चारण करें।[5]

सम्मान के भागी

सम्मान के भागी कौन-कौन है इस विषय मे थोडा मतभेद हैं। विष्णु धर्मसूत्र एव मनु के अनुसार धन, सम्बन्ध, अवस्था, धार्मिक कृत्य एवं पवित्र ज्ञान को सम्मान मिलना चाहिये।[6] गौतम धर्मसूत्र ने कुछ अन्तर दर्शाया है। उनके अनुसार धन, सम्बन्ध, पेशा, जन्म, विद्या एव आयु को सम्मान मिलना चाहिये। इनमें क्रमश· आगे आने वाले को अपेक्षाकृत अच्छा माना गया है किंतु वेदविद्या को सर्वोपरि कहा गया है।[7] वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार विद्याधन, अवस्था सम्बन्ध एवं धार्मिक कृत्य करने वाला सम्मानार्ह है, जिनमे प्रत्येक पहले वाला श्रेष्ठतर है अर्थात् विद्या सर्वश्रेष्ठ है।[8] कौटिल्य के अनुसार विद्या, बुद्धि, पौरुष, अभिजन एव कर्मातिशय (उच्च वर्ण) वाले को ही सम्मान मिलना चाहिये।[9] आलोचित पुराण में मनु के कथन को स्वीकार करते हुए लिखा है कि दस वर्षीय ब्राह्मण क्षत्रिय का

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.47
2. वही, 4.58
3. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.4.14.26-29
4. मनुस्मृति, 2.127
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.49- 60
6. विष्णु धा0सू0, 32.16, मनुस्मृति, 2.136
7. गौतम ध0सू0, 6.18- 20
8. वसिष्ठ धा0सू0, 13.56- 57
9. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 3.20

पिता, वैश्य का पितामह एव शूद्र का प्रपितामह है।[1] भविष्य पुराण मनु के कथन को आत्मसात करता हुआ प्रतीत होता है। इसमे भी पुराणकार ने धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या को सम्मान का कारण माना है। जिसमे एक की अपेक्षा दूसरा अधिक श्रेष्ठ है। शूद्र भी यदि अपनी दसवी अवस्था में है तो वह सम्माननीय है।[2] रथ चलाने वाले अतिवृद्ध, रोगी, भारवाहक, स्त्री, स्नातक और राजा एव (विवाह करने के लिए जाते हुए) वर इनके जाने के लिए मार्ग छोड देना चाहिये।[3] इन सभी के एकत्र होने पर स्नातक राजा से भी अधिक सम्मान का अधिकारी है।[4]

गुरू

शिक्षक को अनेक नामों से अभिहित किया गया है यथा- आचार्य, गुरू, उपाध्याय। आलोचित पुराण के अनुसार जो ब्राह्मण उपनयन सस्कार सम्पन्न कर शिष्य को सरहस्य तथा कल्प समेत वेद का अध्ययन कराता है, उसे 'आचार्य' कहते है।[5] जो वेद की कोई शाखा अथवा वेदागो को अपनी जीविका निर्वाह के लिए अध्यापन करता है, वह 'उपाध्याय' कहा जाता है।[6] गौतम धर्मसूत्र,[7] वसिष्ठ धर्मसूत्र,[8] मनु[9] एव याज्ञवल्क्य[10] ने लिखा है कि जो ब्रह्मचारी का उपनयन करता है और उसे सम्पूर्ण वेद पढाता है, वही आचार्य है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है कि 'विद्यार्थी आचार्य से अपने कर्त्तव्य (आचार) एकत्र करता है, इसीलिए वह आचार्य कहलाता है।[11] यद्यपि आचार्य गुरू एव

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.68 - 69, मनुस्मृति, 2.137
2. वही, 4.70 - 71
3. वही, 4.72
4. वही, 4.73
5. वही, 4.74
6. वही, 4.75
7. गौतम ध0सू0, 1.10 - 11
8. वसिष्ठ ध0सू0, 3.21
9. मनुस्मृति, 2.140
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.34
11. आपस्तम्ब ध0सू0, 1.1.1.14

उपाध्याय शब्द समानार्थकरूप मे प्रयुक्त होते है, किन्तु प्राचीन लेखको ने उनमे अन्तर निर्दिष्ट किया है। मनु के अनुसार जो व्यक्ति किसी विद्यार्थी को वेद का कोई एक अंग या वेदाग का कोई अश पढाता है और अपनी जीविका इस प्रकार चलाता है वह उपाध्याय है।[1] वसिष्ठ धर्मसूत्र[2], विष्णु धर्मसूत्र[3] एव याज्ञवल्क्य[4] ने मनु के समान ही उपाध्याय की परिभाषा दी है।

भविष्य पुराण के अनुसार जो गर्भाधान आदि सस्कार कर्म करता है और अन्नादि से पालन करते हुए विद्याध्ययन कराता है, वह ब्राह्मण 'गुरू' कहा जाता है।[5] अग्न्याधान , पाकयज्ञादि तथा अग्निष्टोम प्रभृति यज्ञो को वरण लेकर जो सम्पन्न करता है वह इस लोक मे 'ऋत्विक्' कहा जाता है।[6] जो शुद्ध स्वरादि को उच्चारणपूर्वक सिखाता है, उसी को माता और पिता अर्थात् 'अध्यापक' जानना चाहिये।[7] मनु के अनुसार गुरू वह है जो बच्चे का सस्कार करता है और पालन पोषण करता है।[8] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार गुरू वही है जो सस्कार करता है और वेद पढाता है।[9] गौतम[10] ने आचार्य को सभी गुरूओ से श्रेष्ठ माना है। किन्तु अन्य ने माता को आचार्य से श्रेष्ठ माना है। याज्ञवल्क्य ने माता को आचार्य से श्रेष्ठ माना है।[11] आलोचित पुराण[12] तथा मनुस्मृति[13] दोनों के कथनों में साम्य है। इनके मतानुसार उपाध्याय से दस गुना अधिक सम्मान एव प्रतिष्ठा आचार्य की है, आचार्य से सौ गुना अधिक सम्मान पिता का है, पिता की अपेक्षा सहस्र गुणित अधिक सम्मान माता का है।

---

1. मनुस्मृति, 2.141 – 142
2. वसिष्ठ ध0सू0, 3.22–23
3. विष्णु ध0सू0, 29.2
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.35
5. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 4.76
6. वही, 4.77
7. वही, 4.78
8. मनुस्मृति, 2.141–142
9. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.134
10. गौतम ध0सू0, 2.56
11. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.35
12. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.79
13. मनुस्मृति, 2.145

मनु के मतानुसार जनक और गुरू दोनो पिता है, किन्तु वह जनक जो पूत वेद का ज्ञान देता है, उस जनक से महत्तर है जो केवल शारीरिक जन्म देता है क्योंकि आध्यात्मिक विद्या मे जो जन्म होता है वह इह लोक और परलोक दोनो मे अक्षुण एव अक्षय होता है।[1] आलोचित पुराण मे भी मनु समान ही मत प्रस्तुत किया गया है।[2] किन्तु 'भविष्य पुराण मे उपर्युक्त उपाध्याय आदि मे सभी मे 'महागुरू' को सर्वश्रेष्ठ बताया है।[3] जो ब्राह्मण 'जप' से दीक्षा उपार्जित करने वाला है वही 'महागुरू' कहा जाता है।[4] जप के अन्तर्गत अठारहो पुराण, रामचरित, विष्णु तथा शिव सम्प्रदाय के धर्म, कृष्णद्वैपायन का पाँचवा वेद (महाभारत), नारद के कहे गए श्रौत धर्म की गणना की गई है।[5]
थोडा या बहुत वेद ज्ञान के बारे मे जो कोई उपकार करता है, उसे भी वेद ज्ञान के सहायक होने के नाते इस लोक मे गुरू जानना चाहिये।[6] इस दृष्टि से वेदज्ञान कर्ता और अपने धर्म का पालक विप्र बालक भी वृद्ध धर्मत. पिता होता है।[7] प्रस्तुत सन्दर्भ मे भविष्य पुराण मे अंगिरस का उल्लेख आता है कि उसने शैशवावस्था मे अपने पितरो को ज्ञान का उपदेश किया और यह बात जानते हुए भी कि ये हमारे पितर है, उनको पुत्र कहकर बुलाया।[8] आलोचित पुराण मे आख्यात है कि जो अज्ञ होता है वही बालक है और जो मंत्र का उपदेश करता है वही पिता होता है। अज्ञ को बालक, मन्त्रदाता को पिता तथा जपदाता (उक्त महाभारत, पुराण, रामायणादि के उपदेशक) को पितामह कहते है।[9]

---

1 मनुस्मृति, 2.145
2. भवि0 पु0 ब्राह्मपर्व, 4.80
3. वही, 4.83
4. वही, 4.85
5. वही, 4.86-88
6. वही, 4.91, मनुस्मृति, 2.149
7. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.92
8. वही, 4.93
9. वही, 4.95-96

शिष्यो के गुण

शिष्यों के गुणो का उल्लेख पूर्व मे 'ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य' के अन्तर्गत किया जा चुका है।

केशान्त संस्कार

इस संस्कार की विधि थोडे अन्तर के साथ चूड़ाकरण जैसी ही है। कतिपय शास्त्रकारो ने केशान्त संस्कार मे शिखा सहित सम्पूर्ण सिर का मुण्डन विहित किया है।[1] इसे गोदान भी कहते थे क्यो कि इस अवसर पर आचार्य को गौ का दान किया जाता था तथा नापित को उपहार दिये जाते थे।

आलोचित पुराण में आख्यात है कि ब्राह्मण का केशान्त संस्कार सोलहवे वर्ष में किया जाता है, क्षत्रियो का बाईसवें वर्ष में और वैश्य का तेईसवे वर्ष मे करने का विधान है।[2] स्त्रियों का यह संस्कार सर्वदा मंत्ररहित करना चाहिये।[3] अधिकांश स्मृतिकारो ने इस सस्कार को सोलहवे वर्ष में करने को कहा है।[4] मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यो के लिए यह सस्कार क्रमश सोलह, बाईस तथा चौबीस वर्ष की आयु मे सम्पादित होना चाहिये।[5]

ब्रह्मचारी के सोलहवें वर्ष में केशान्त या गोदान सस्कार किया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इस आयु मे शरीर में यौवन प्रविष्ट होता है, अतः युवावस्था की सहज प्रवृत्तियों के संयम पूर्वक ब्रह्मचारी केवल अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्ति में लगा रहे- इसी तथ्य पर बल देने के लिए यह सस्कार किया जाता था।

---

1. आपस्तम्ब गृ0सू0, 16.15, भारद्वाज गृ0सू0, 1.10
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.1
3. वही, 4.2
4. शांखायन गृ0सू0, 1.28.20, पारस्कर गृ0सू0 2.1-3
5. मनुस्मृति, 2.65
   " केशान्त षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
   राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः।।"

समावर्तन संस्कार

वेदाध्ययन की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार किया जाता है तथा यह ब्रह्मचारी जीवन की समाप्ति का बोधक संस्कार है। समावर्तन का अर्थ है गुरू के गृह से अपने घर लौट आना।[1] इस संस्कार को 'स्नान' नाम भी दिया गया है क्योकि इस संस्कार मे स्नान की क्रिया सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।[2]

आलोचित पुराण मे आख्यान है कि धर्म की मर्यादा जानने वाले शिष्य को अध्ययन समाप्ति के पूर्व उपकार नही करना चाहिये, उसे दीक्षा स्नान के लिए गुरू की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।[3] श्वेत, सुवर्ण, गौ, अश्व, छत्र, जूता, धान्य, वस्त्र, शाकादि गुरू के प्रसन्नार्थ लाना चाहिये।[4]

समावर्तन करके स्नान किया हुआ व्यक्ति स्नातक कहलाता था। समाज मे स्नातक अत्यधिक सम्मानित होता था।[5]

---

1. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, खण्ड प्रथम, पृ0 564
   "तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनान्तर गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्।"
2. अश्वलायन गृ0सू0, 3.8.1, बौधायन गृ0सू0, 2.6.1, गौतम ध0सू0, 8.16, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.51, मनुस्मृति, 3.4
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 4.214
4. वही, 4.215
5. पारस्कर गृ0सू0, 1.3.1-2

विवाह

विवाह और परिवार मानव जाति मे आत्मसंरक्षण, वंशवृद्धि और जातीय जीवन के सातत्य को बनाए रखने का प्रधान साधन है।[1] जिलिन के मतानुसार विवाह, संतान पैदा करने वाले परिवार को स्थापित करने की समाज द्वारा स्वीकृत पद्धति है।[2] वेस्टरमार्क ने विवाह के लक्षण को निर्दिष्ट करते हुए कहा है कि " यह एक या अधिक पुरूषो का एक या अधिक स्त्रियो के साथ ऐसा संबंध है जो कानून द्वारा मान्य होताहै और जो इस संबंध को करने वाले दोनों पक्षों को तथा उनकी संतान को कुछ अधिकार और कर्त्तव्य प्रदान करता है।[3]" मानव समाज की सत्ता और संरक्षण विवाह और परिवार पर अवलम्बित है। अत. विवाह को हमारे समाज की केन्द्रीय संस्था माना जाता है।[4]

प्राचीन काल से ही इस संस्कार की आवश्यकता एवं महत्ता का निरूपण होता चला आया है। ऋग्वेद[5] मे इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए निरूपित किया गया है कि इसका मूलोद्देश्य गृहस्थ बनकर देवताओ के लिए यज्ञ करना तथा संतानोत्पत्ति है। शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि पत्नी पति की अर्द्धांगिनी है। व्यक्ति तब तक अधूरा है जबतक कि वह पत्नी प्राप्त करके संतान नही उत्पन्न कर लेता।[6] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में आख्यात है कि पत्नी पति को धार्मिक संस्कारों के योग्य बनाने वाली है

---

1. हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 1
2. जिलिन, कल्चरल सोश्योलोजी (न्यूयार्क 1948), पृ0 334
3. वेस्टरमार्क, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मैरिज (लन्दन 1926), पृ0 1
4. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स, 4.423
   दृष्टव्य, हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 1
5. ऋग्वेद, 10.85.36, 5.3.2, 5.28.3, 3.53.4
6. शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10

है तथा पुत्र को उत्पन्न कर उसे पुत्र नामक से रक्षा करती है।[1] महाभारत मे गृहणी को घर का पर्यायवाची कहा गया है।[2] शतपथ ब्राह्मण मे पत्नी को अर्द्धांगिनी तथा उसके अभाव में सन्तान की प्राप्ति नहीं होती- ऐसा कहा गया है।[3] मनुस्मृति मे विवाह के तीन मुख्य उद्धेश्य आख्यात हैं- धर्म-सम्पत्ति, प्रजा तथा रति अर्थात् धार्मिक कृत्य, सन्तान तथा कामजन्म इच्छा की संतुष्टि।[4] किन्तु आपस्तम्ब धर्मसूत्र[5] ने केवल धर्म का पालन एव सतान की प्राप्ति, इन दो प्रयोजनो का ही उल्लेख किया है और कहा है कि इनके पूरे हो जाने पर दूसरा विवाह नही करना चाहिये। केवल कामसुख की प्राप्ति के लिए विवाह जघन्य समझा जाता था। याज्ञवल्क्य[6] के मतानुसार विवाह के निम्नलिखित प्रयोजन है- पुत्रपौत्रादि द्वारा वश विस्तार, 2 अग्निहोत्रादि यज्ञो द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति।

विज्ञानेश्वर ने धर्म की तथा पुत्रो की प्राप्ति के दो प्रयोजन पर बल देते हुए इतिफल का लौकिक लाभ के रूप मे वर्णन किया है।[7]

विवाह- पौराणिक प्रकृति

भविष्य पुराण में कहा गया है कि पुरुष तब तक आधा है जब तक कि वह पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता[8] अतएव अपने समान विद्या, धन एव क्रियाओं से सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने वाली मनोहर धर्म की साधन भूत प्रशंसनीय कन्या का ग्रहण करना चाहिये।[9] जिस प्रकार एक चक्के का

---

1. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.5.11.12
2. महाभारत, शान्तिपर्व, 144.6
3. शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10, 8 7.2.3, दृष्टव्य, अनन्त सदाशिव अल्टेकर, द पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ0 97
4. मनुस्मृति, 9.28
5. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.11.2
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.78
7. दृष्टव्य, हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 9
8. भवि0 पु0, 21.68.73
9. वही, 6.28

रथ और एक पख का पक्षी अपना कार्य ग्रहण नही कर सकता, बेकार है, स्त्रीविहीन पुरूष भी सभी कार्यों में अयोग्य है।[1]

पुराणकारो ने विवाह को पवित्रात्मक संस्कार माना है। मार्कण्डेय पुराण[2] में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति के लिए पत्नी पति की सहायक बताई गई है, " भार्या मे त्रिवर्ग प्रतिष्ठित है उसके बिना पुरूषों द्वारा देवताओ, पितरो तथा अतिथियो की पूजा नही की जा सकती। सहधर्मचारिणी के बिना किसी भी धार्मिक, समाजिक अथवा अभिषेक आदि राजनीतिक क्रिया को अपूर्ण माना गया है।[3] वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणो मे आख्यात हे कि स्त्री अवध्य होती है क्योंकि उसके बिना लोकवृद्धि असंभव है।[4] विष्णु पुराण मे प्रजोत्पत्ति की कामना से विवाह संस्कार अपेक्षित माना गया है।[5] ब्रह्मपुराण मे कहा गया है कि देवता अमृत द्वारा अमर हुए एवं ब्राह्मणादि मनुष्य पुत्र द्वारा।[6] मत्स्य पुराण में गृहधर्मी के द्वारा संसार की वृद्धि विकृत है तथा भार्यायुक्त ब्राह्मण ही दान का अधिकारी बनाया गया है।[7] आलोचित पुराण में आख्यात है कि स्त्रीविहीन पुरूष को गृहस्थाश्रम मेंप्रविष्ट होने का कोई अधिकार नहीं।[8] मार्कण्डेय पुराण मे आख्यात है कि रूचि ने बूढ़े होने पर भी पितरो के उद्धार के लिए मालिनी के साथ विवाह किया।[9]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6.30
2. मार्कण्डेय पु0, 21.68– 73
3. विष्णु पु0, 3.10.13, ब्रह्माण्ड पु0 4.14.15, मत्स्य पु0, 54.24
4. वायु पु0, 62.155– 156, ब्रह्माण्ड पु0 2.36.181
5. विष्णु पु0, 5.28.38
6. ब्रह्म पु0, 104.9 "अमृतेनामरा देवा. पुत्रेण ब्राह्मणादय·।"
   ऋग्वेद में (5.4.10) पुत्रो द्वारा अमृतत्व प्राप्ति का उल्लेख है।
7. मत्स्य पु0, 155,152 यथा 54.24
8. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6.14
9. मार्कण्डेय पु0, अध्याय 98, दृष्टव्य, हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 17

अन्तर्विवाह

इसके अन्तर्गत अपने ही वर्ण या जाति में विवाह करना आवश्यक है। जो व्यक्ति अपने वर्ण के बाहर विवाह करता है वह पाप का भागी होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से अन्तर्विवाह के दो मुख्य उद्देश्य दिखाई देते हैं, प्रथमतः इसका लक्ष्य प्रजातीय रक्त सम्बन्धी शुद्धता को बनाए रखना है। द्वितीय., अन्तर्विवाह विशिष्ट वर्ण के उन रीतिरिवाजों, परम्पराओ, रूढ़ियों और पद्धतियो को सुरक्षित रखने मे सहायक होता है, जिनके कारण एक वर्ण दूसरे वर्ण से या एक जाति दूसरी जाति से पृथक दिखती है। अन्तर्विवाह को सवर्ण विवाह भी कहा जाता है। सवर्णा पत्नी की सर्वत्र प्रशंसा की गई है।[1]

सवर्ण तथा असवर्ण विवाह

आलोचित पुराण मे विवाह कर्म के तीन प्रकार बताए गए है- हीन, समान एवं उच्च के साथ। इनमे अपने बराबर वाले के यहाँ विवाह करने को समान और दोनो को नीच और मध्यम कहा है।[2] तुला स्थिति वालों के साथ विवाह करने को सभी लोग बहुत अच्छा बताते है।[3] आपस्तम्ब भी वर्णान्तर विवाह में दोष समझता है।[4] मनु अपने वर्ण की स्त्री के साथ विवाह को श्रेष्ठ समझते है।[5]

भविष्य पुराण में आख्यात है कि असमान के यहाँ विवाह करने को साधु लोग निन्दित बताते हैं उत्तम के यहाँ करने से अनादर होता है।[6] अपने से अधिक वाले के यहाँ सबंध करने से सर्वथा अपमान भोगना पड़ता है। इसी प्रकार नीच स्थिति वाले के साथ भी उसे विवाह करने की इच्छा

---

1. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.6.13.1, गौतम ध0सू0, 1.4.1, मनुस्मृति, 3.12
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6.32
3. वही, 6.33
4. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.13.1-3
5. मनुस्मृति, 3.12
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 6 33

नही करनी चाहिये।[1] जिस प्रकार उत्तम के साथ विवाह सम्बन्ध वर्जनीय है उसी प्रकार नीच के साथ भी वर्जनीय है। अतएव बुद्धिमान पुरूष को उत्तम एव अधम वर्ण के साथ विवाह नही करना चाहिये।[2] आलोचित पुराण मे आख्यात है कि विवाह सम्बन्ध सर्वदा समान स्थिति वाले के साथ ही करना चाहिये।[3]

कतिपय शास्त्रकारो ने अनुकल्प विवाहों की भी चर्चा की है। आलोचित पुराण में भी इस प्रकार के विवाह की चर्चा आती है कि ब्राह्मण का विवाह संस्कार सवर्ण (ब्राह्मण) के यहाँ ही प्रशस्त माना गया है। कामवश उसे अन्य तीन वर्णों की कन्याओ के साथ भी क्रमश विवाह करना बताया गया है किन्तु वे तीनो स्त्रियाँ नीच कही गई है।[4] इसी प्रकार क्षत्रियों के लिए भी कामवश वैश्यो तथा शूद्रो के साथ विवाह का विधान बताया गया है पर धर्मानुसार नही।[5] वैश्य के लिए सवर्ण कन्या के साथ विवाह का विधान है किन्तु कामवश शूद्र कन्या के साथ विवाह कर सकता है किन्तु धर्मानुमोदित नहीं।[6] शूद्र की स्त्री शूद्र ही होनी चाहिये ऐसा मनु का मत है। उत्तम द्विज चारों वर्णों की कन्याओ के साथ विवाह का अधिकारी है।[7] इस विषय में बौधायन धर्मसूत्र[8] शंख, मनु[9] विष्णु धर्मसूत्र[10] की सम्मति है। पारस्कर गृह्य सूत्र[11] तथा वसिष्ठ धर्मसूत्र [12] ने लिखा है कि द्विजो को शूद्र नारी

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 6.34
2. वही, 6.35-38
3. वही, 6.44
4. वही, 7.3
5. वही, 7.4
6. वही, 7.5
7. वही, 7.6
8. बौधायन ध०सू०, 1.82
9. मनुस्मृति, 3.13
10. विष्णु ध०सू०, 24.1-4
11. पारस्कर गृ०सू०, 1.4
12. वसिष्ठ ध०सू०, 1.25

से विवाह करना चाहिये किन्तु बिना मन्त्रो के उच्चारण के।

उपर्युक्त शास्त्रकारों ने जो अपने से निम्न वर्ण के साथ विवाह विधान प्रस्तुत किया है व मात्र अपने काल में प्रचलित व्यवस्था की ओर संकेत करना ही है।[1] क्योंकि उन्होने ब्राह्मण एव शू कन्या के विवाह की कडे शब्दो मे निन्दा की है। इस सम्बन्ध मे भविष्य पुराण मे आख्यात है वि महान आपत्तिकाल मे भी किसी परिस्थिति मे ब्राह्मण एव क्षत्रिय को शूद्र कुलोत्पन्न कन्या से विवा नहीं करना चाहिये।[2] द्विजाति वर्ग अज्ञानवश नीचकुलोत्पन्न स्त्रियों के साथ विवाह करके सन्ततियो समे अपने कुल को भी शीघ्र ही शूद्र बना देता है।[3] इस सन्दर्भ मे कतिपय उदाहरण भविष्य पुराण उपलब्ध होते हैं। यथा महर्षि अत्रि अपनी वेदी पर शूद्र को आरोपित करके पतित बन गए। उतथ्य पुत्र उत्पन्न करने के कारण पतित बन गए। शौनक शूद्र के पुत्र को प्राप्त कर स्वय शूद्र बन गए। इसी प्रकार भृगु आदि भी पतित बन गए।[4] शूद्र स्त्री को अंगीकार कर ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त हो जाता है। उससे पुत्र उत्पन्न करके वह ब्रह्मतेज से च्युत हो जाता है।[5] जो दैव, पितर औ आतिथ्यादि कर्म को ऐसे शूद्र की प्रधानता में करते है उनके यहाँ पितर एवं दैवगण भोजन नहीं कर और वह स्वयं स्वर्ग नहीं जाता।[6] ब्रह्मपुराण के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कन्याओं से विवा नही करना चाहिये।[7] बौधायन शूद्रा के साथ विवाह परिणाम पतित होना मानता है।[8] वसिष्ठ धर्मसू

---

1 पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 277
2 भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 7 7
3. वही, 7.8
4. वही, 7.9- 10
5. वही, 7.11
6. वही, 7.12
7. संस्कार प्रकाश, पृ० 752, दृष्टव्य, हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 117
8. बौधायन ध०सू०, 2.1.11, दृष्टव्य, हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 117

कहता हे कि शूद्रा के साथ विवाह करने से कुल का अपकर्ष होता है और मरने के बाद स्वर्ग नहीं मिलता।[1] शूद्रा से विवाह न करे क्योंकि स्त्री मे स्वय पुरूष ही जन्म लेता है।[2] विष्णु धर्मसूत्र के अनुसार शूद्रा से विवाह करके व्यक्ति संतान सहित शूद्र हो जाता है।[3] पारस्कर गृह्यसूत्र का कहना है कि शूद्रा से विवाह करने में मन्त्रोच्चारण नहीं करना चाहिये।[4] मनु ने अनुलोम विवाह का विधान करके भी ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के लिए शुद्रा का सर्वथा निषेध कर दिया।[5]

आलोचित पुराण मे उल्लिखित है कि असवर्ण के साथ विवाह करते समय क्षत्रिय कन्या को बाण धारण करना चाहिये वैश्य कन्या को चाबुक। इसी प्रकार उत्कृष्ट जाति के साथ विवाह होते समय शूद्र कन्या को वस्त्र का छोर (आचल) ग्रहण करना चाहिये।[6]

उपर्युक्त उल्लेखो से प्रतीत होता हे कि इस पुराण के प्रणयन काल में समाज में असवर्ण विवाहों का प्रचलन था अतएव उनके लिए इस प्रकार के नियमो का विधान प्रस्तुत किया गया।

विवाह के चयन एवं निषेध

भारतीय शास्त्रकारों ने विवाह के चयन संबंधी कुछ नियम भी स्थापित किए थे। ये नियम दो श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं- (1) कुछ नियम बहिर्विवाह के सम्बन्ध में हैं, जिनके अन्तर्गत एक विशिष्ट समूह के सदस्य परस्पर विवाह नहीं कर सकते (2) अन्य नियम अन्तर्विवाह

---

1. वसिष्ठ ध०सू०, 1.26.27
2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.56
3. विष्णु ध०सू०, 26.6-7
4. पारस्कर गृ०सू०, 1.4.12 "सर्वेषां शूद्रामप्येके मंत्रवर्जम्।"
5. मनुस्मृति, 3.15- 16
6. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 7.37- 38

सम्बधी हैं, जिनमे एक विशिष्ट समूह के सदस्यो को उस समूह मे ही विवाह करना आवश्यक है उस समूह से बाहर विवाह नही कर सकते।

1. **बहिर्विवाह**

इसका तात्पर्य यह है कि एक बडे समूह के भीतर छोटे-छोटे जो उपसमूह होते है, उनमें परस्पर विवाह न हो। श्री दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में बहिर्विवाह के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं।[1] गोत्र, प्रवर एव पिण्ड हिन्दू समाज में इस प्रकार के बहिर्विवाही वर्ग हैं क्योकि एक गोत्र वालों मे परस्पर विवाह धर्मशास्त्रों द्वारा वर्जित ठहराया गया है। आपस्तम्ब[2] विष्णु[3] मनु[4] याज्ञवल्क्य[5] ने समान गोत्र और समान प्रवर रखने वाली कन्या से विवाह का निषेध किया है।

आलोचित पुराण में आख्यात है कि अपनी माता की सपिण्ड तथा अपने पिता की सगोत्र कन्या को छोड़कर अन्य कन्याओं के साथ द्विजाति का विवाह संस्कार करना प्रशंसनीय माना जाता है।[6] जिसका कोई सगा भाई न हो, जिसके पिता का कोई पता न हो, बुद्धिमान पुरूष को उस कन्या के साथ पुत्रिका की आशंका से विवाह नहीं करना चाहिये।[7] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि अपने मातृ, पितृ कुल की सातवीं अथवा पाँचवी पीढ़ी की कन्या को जिसके ऋषि, एव गोत्र समान न हों, द्विज को चाहिये कि भार्या बनाए।[8] संख्या वाले वैधानिक विवाहों मे अपने गोत्रार्थ (विवाह) में विधान अपनाया नहीं जाता।[9]

---

1. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृ0 46- 47
2. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.11.15
3. विष्णु ध0सू0, 24.9-10
4. मनुस्मृति, 3.5
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.53
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.1
7. वही, 7.2
8. वही, 182.20-21
9. वही, 182.21

सगोत्र एवं सप्रवर विवाह निषेध

बहिर्विवाह के इस रूप के अन्तर्गत एक ही गोत्र के कन्या एवं वर के बीच विवाह निषिद्ध होता है। वैदिक युग में 'गोत्र' शब्द का अर्थ भले ही कुछ भी रहा हो, सूत्रकाल से लेकर 'गोत्र' शब्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है, वह है किसी एक ऋषि से वंश परम्परा का बढ़ना। गृह्यसूत्रो मे 'गोत्र' शब्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ उस अर्थ में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग छान्दोग्य उपनिषद् मे मिलता है, जहाँ गुरू अपने पास शिष्य रूप में आए हुए सत्यकाम जाबाल से उसका गोत्र पूछते है।[1]
एक पूर्वज ऋषि की सन्तान रूप अर्थ में 'गोत्र' शब्द निश्चित हो जाने के कारण सारे सगोत्री व्यक्ति परस्पर भाई-बहन के समान हो गए। अत विवाह में सगोत्र निषेध प्रचलित हुआ।[2] बौधायन के मत में विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप तथा अगस्त्य मुनि की जो संतान है, वे गोत्र हैं। इस प्रकार कुल आठ गोत्र हैं। समान गोत्र वालो में परस्पर विवाह नहीं हो सकता।[3]

जिस प्रकार सगोत्र विवाह का निषेध किया गया है उसी प्रकार सप्रवर विवाह भी निषिद्ध माना गया है। भविष्यपुराण मे इन दोनो प्रकार के विवाहो का उल्लेख मिलता है। उसमें आख्यात है कि एक गोत्र एव समान प्रवर वाले की कन्या का पाणिग्रहण करने पर उस अशुद्ध शरीर के शोधनार्थ अति कृच्छ नामक व्रत विधान बताया गया है।[4]

डा0 काणे ने गोत्र एवं प्रवर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'गोत्र' प्राचीनतम पूर्वज हैं या किसी व्यक्ति के प्राचीनतम पूर्वजों में से एक हैं, जिसके नाम से युगों से कुल विख्यात है। किन्तु प्रवर उस ऋषि या उन ऋषियों से बनता है, जो अति प्राचीनतम रहे हैं, अत्यन्त यशस्वी रहे हैं और जो गोत्र ऋषि के पूर्वज या कुछ दशाओं मे अत्यन्त प्रख्यात ऋषि रहे हैं।[5] इससे स्पष्ट है कि गोत्र रक्तसंबंध का सूचक है और प्रवर आध्यात्मिक संबंध का। प्रवर संस्कारों या ज्ञान के उस सम्प्रदाय की ओर

---

1. छान्दोग्य उपनिषद्, 4.4.1
2. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.11.15 "सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत्।"
   गोभिल गृ0सू0, 3.4.4 "असगोत्रान्", मनुस्मृति,3.5 "असगोत्रा च या पितुः"
3. गोत्रप्रवर निबन्ध कदम्ब, पृ0 11 तथा 97
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.35
5. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 290

स्केत करता है जिससे व्यक्ति का निरन्तर सम्बन्ध रहा है।[1]

सगोत्र विवाह अथवा सप्रवर विवाह कर लेने पर सूत्रकारों तथा स्मृतिकारो ने विविध प्रकार के दण्ड का भी विधान किया है।[2] गौतम ने इस नियम के उल्लघन को गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार के सदृश भयकर माना है।[3] याज्ञवल्क्य के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने सगोत्र पति से विवाहित स्त्री को चाण्डाली की कोटि मे रखा है।[4]

विवाह के प्रकार

परवर्ती युग मे विवाह के जो आठ प्रकार, शास्त्रो में बहुविधि वर्णित हुए है, उनका नामोल्लेख पूर्वक स्पष्ट वर्णन ऋग्वेद मे नहीं मिलता। किन्तु कई विवाह प्रकारों के प्रसंगो के संकेत अवश्य मिलते हैं।[5] इन स्थलो में न तो कही विवाह प्रकार का नाम ही है और न ही विवाह विधि वर्णित है। केवल वर्णन के आधार पर ही उन्हे विशिष्ट विवाह प्रकार का नाम दिया जा सकता है।

गृह्य सूत्रों के समय तक भी विवाह के विभिन्न प्रकार अलग-अलग नही थे। आश्वलायन गृह्यसूत्र में विवाह के आठ प्रकारो का वर्णन अवश्य है।[6] किन्तु यह अंश अपने प्रसग में इतना असगत प्रतीत होता है कि क्षेपक के समान जान पड़ता है।[7] अत यही मानना समीचीन हे कि धर्मसूत्रकारो ने समाज मे प्रचलित विभिन्न विवाहो को वर्ण एवं नीति के अनुकूल अलग-अलग आठ प्रकारों में विभाजित करके वर्णन किया है। आलोचित पुराण में आख्यात हे कि ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और सबसे अधम पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह होते हैं।[8]

---

1 के० एम० कापड़िया, हिन्दू किन शिप, पृ० 56- 57
2. बौधायन ध०सू०, 2 1.1.38, नारद स्मृति, 12.74- 75, पाराशर स्मृति,10.15
3. गौतम ध०सू०, 3.5.12
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 3.260, एवं उस पर विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा।
5. ऋग्वेद,1.109.2 पर निरुक्त, 6.9, आसुर विवाह का संकेत। ऋग्वेद 5.61 से सम्बद्ध बृहद्देवता 5.50-54, दैव विवाह का संकेत। ऋग्वेद, 1.119.5, स्वयंवर का संकेत। ऋग्वेद, 10.27.12, गान्धर्व विवाह का संकेत। ऋग्वेद,1..116.1,

1 ब्राह्म विवाह

भविष्य पुराण मे ब्राह्म विवाह का लक्षण उल्लिखित करते हुए कहा है कि "श्रुति ज्ञान सम्पन्न एवं सुशील वर को स्वय अपने घर बुलाकर सम्मानपूर्वक पूजित एवं वस्त्र से आच्छादित कर कन्या को दान करने की विधि" को ब्राह्म विवाह कहते हैं।[1] पी० वी० काणे के अनुसार इस विवाह को सम्भवत· 'ब्राह्म' इसलिए कहा जाता है कि ब्रह्म का अर्थ है पवित्र वेद या धर्म जिसे परमपूत कहा जाता है।[2]

ब्राह्म विवाह में वर के चयन में कन्या की सम्मति नही ली जाती थी, क्योंकि चयन पिता अथवा अभिभावक की रूचि से होता था। इस विवाह में यौतुक देना पिता के लिए आवश्यक माना गया है।[3] बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्म विवाह में वर स्वयं कन्या के पाणिग्रहण की याचना कन्या के माता-पिता अथवा अभिभावक से करता है।[4] गौतम धर्मसूत्र[5] एव मनुस्मृति[6] में लिखा है कि व्यक्ति के कुल, शील, विद्या, चरित्र एव स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध मे ज्ञातव्य तथ्य जान लेने पर कन्या का पिता वर को स्वय निमन्त्रित करके अपनी अलंकृता एवं सुसज्जिता पुत्री उपहार रूप में देता है।

विवाह का यह ब्राह्म प्रकार प्रशस्त एव धर्म्य है। विवाह के समस्त आठो प्रकारों में ब्राह्म विवाह को सर्वोत्तम स्थान मिला है और सभी धर्मशास्त्रकारों ने विवाह प्रकारो के क्रम में ब्राह्म को सर्वप्रथम परिगणित किया है। श्री बनर्जी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इस विवाह प्रकार को ब्राह्म विवाह इसलिए कहा जाता था कि यह विवाह प्रकार विशेष रूप से ब्राह्मणों के उपयुक्त

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 7.21 तथा 182.52
2. पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 297
3. आपस्तम्ब ध०सू०, 2.5.11.17
4. बौधायन ध०सू० - " श्रुति शीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने कन्या दीयते स ब्राह्म·।"
5. गौतम ध०सू०, 1.4.4
6. मनुस्मृति, 3.27

था।[1] किन्तु उनका यह कथन समीचीन प्रतीत नही होता क्योकि सूत्रकारो एव स्मृतिकारो ने ऐसा विधान नही किया है। महाभारत ने स्पष्ट कहा है कि क्षत्रिय के लिए ब्राह्म विवाह उपयुक्त है।[2]

ब्राह्म विवाह प्रकार से उत्पन्न सन्तति समाज में सम्माननीय थी और समस्त उत्तम गुणो से युक्त होती थी। आलोचित पुराण मे कहा गया है कि " ब्राह्म विवाह से उत्पन्न सत्कर्मपरायण पुत्र दस पूर्वज एव दस पीछे उत्पन्न होने वाली पीढियो के साथ स्वय अपने को भी महान पापकर्मों से उबारता है।[3]

2. दैव विवाह

आलोचित पुराण में आख्यात है कि सुवर्णो से भूषित करके वेदी के मध्य लाई गई कन्या का ऋत्विज के लिए दान करना "देव विवाह" कहलाता है।[4] गौतम धर्मसूत्र[5] तथा मनुस्मृति[6] मे भी दैव विवाह के लिए उपर्युक्त विधान प्रस्तुत किया गया है।

विवाह के इस प्रकार मे पिता के द्वारा कन्या ऐसे पुरोहित को दे दी जाती थी जो कन्या के पिता के लिए यज्ञ कराता था।[7] भविष्य पुराण में एक स्थल पर आख्यात है कि विवाह यज्ञ के व्याप्त होने, पुरोहित के विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋतुक कन्या को अलंकार वस्त्राभूषण से अलंकृत कर कन्या देना देव धर्म (विवाह) कहा गया है।[8] दैव विवाह में भी पिता के द्वारा वर के सम्बन्ध में कन्या की सम्मति नहीं ली जाती थी। यह सम्भव है कि यज्ञ के सम्पन्न होने की दीर्घ अवधि में कन्या उस ऋत्विक को देखकर अपनी रूचि के अनुकूल अपने माता-पिता को प्रेरित करती हो।[9] लेकिन

---

1. जी0 डी0 बनर्जी, द हिन्दू लॉ ऑफ मैरिज एण्ड स्त्रीधन ,पृ0 76
2. महाभारत, 1.73.8- 9
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.31
4. वही,182.55, 7.22
5. गौतम ध0सू0, 1.4.7
6. मनुस्मृति, 3.28
7. आपस्तम्ब गृ0सू0,1.4.23, नारद स्मृति, 12.14, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.59
8. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.22
9. ए0 एस0 अल्तेकर- पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, 5.45

इस सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नही होते। वर चयन पूर्ण रूप से माता-पिता पर ही आश्रित रहता था। बौधायन धर्मसूत्र के भाष्य में गोविन्द की मान्यता है कि पिता के द्वारा दी गई कन्या ऋत्विक् को स्वीकार करनी ही होती थी और विवाह की विधि बाद मे सम्पन्न होती थी।[1]

पी0 वी0 काणे के मतानुसार इसका नाम दैव इसलिए है कि यज्ञ मे देवो की पूजा होती है।[2] अल्टेकर ने भी इसी प्रकार का मत प्रस्तुत किया है कि इसका नाम दैव विवाह इसलिए पडा क्योंकि यह विवाह तब सम्भव होता था जब देवताओ के लिए यज्ञ किया जा रहा हो।[3]

दैव विवाह को ब्राह्म विवाह की अपेक्षा निम्नतर का इसलिए भी माना गया कि यजमान कन्या दान करके मन में इस लाभ की भावना रखता है कि कन्या पाकर प्रसन्न ऋत्विज् एकाग्रता से यज्ञ को सम्पन्न करेगा।[4] दैव विवाह से उत्पन्न सन्तति को समाज में सम्मान मिलता था और वे उच्च चारित्रिक गुणो से युक्त माने जाते थे। आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि " दैव विवाह से उत्पन्न होने वाला धर्मपरायण पुत्र सात पूर्वज एव सात बाद मे उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ अपने को उबारता है।[5]

---

1. बौधायन ध0सू0, 1.11.20.5 पर गोविन्द का भाष्य
2. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 297
3. ए0 एस0 अल्टेकर, पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ0 45
4. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 297
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.32

3 आर्ष विवाह

आलोचित पुराण के अनूसार धर्मपूर्वक वर से एक अथवा दो गौ के जोडे को लेकर विधिपूर्वक दिए गए कन्यादान को आर्ष धर्म कहा जाता है।[1] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि जिस विवाह मे दो गायो के साथ ऐसी कन्या का जो समान जाति एव समान गोत्र की हो दान किया जाता है उसे 'आर्ष विवाह' कहते हैं।[2]

गोयुगल के स्थान पेर अन्य वस्तुएँ देने का भी विधान पाया जाता है। नारद के अनुसार दो गाए अथवा एक वस्त्रयुगल अथवा एक गाए, एक बैल और एक वस्त्रयुगल अथवा एक गाए, एक बैल और एक वस्त्रयुगल सामान्य रूप में देने वाले उपर्युक्त वर को पिता अपनी कन्या दे देता था और यह आर्ष विवाह कहलाता था।[3]

कुछ विद्वानों ने आर्ष विवाह में वर द्वारा दिए जाने वाले गोयुगल को वधू शुल्क माना है। इस कारण प्रशस्त विवाह प्रकारों के क्रम मे आर्ष को अन्तिम स्थान मिला है।[4] महाभारत एवं मनुस्मृति में भी आर्ष विवाह की भर्त्सना की गई है क्योकि उसमे वर से पशुयुग्म लिया जाता है।[5] आलोचित पुराण में भी इस विवाह के लिए शुल्क रूप में गौयुगल देने की प्रथा के लिए कहा गया है कि चाहे अल्प मात्रा मे हो याअधिक मात्रा में वर भी एक प्रकार का विक्रय ही होता है।[6] किन्तु ग्यारहवीं शती के निबन्धकार मित्रमिश्र के अनुसार आर्ष विवाह मे संबंध धर्मनिमित्तक होता है, लोभनिमित्तक नहीं और वर द्वारा दिया जाने वाला गोयुगल पिता के द्वारा यौतुक के साथ ही वर वधू को लौटा दिया

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 7.23
2. वही, 182.54
3. नारद स्मृति, 12.14, कामसूत्र, 3.19
4. ए० एस० अल्तेकर, पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 44
5. महाभारत, 13.45.20– 21, मनुस्मृति, 3.53
6. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व 7.41

जाता था। वर द्वारा यह उपहार कन्या को सम्मानित करने की दृष्टि से दिया जाता था। अत आर्ष विवाह को क्रय नही कहा जा सकता।[1]

आर्ष विवाह को प्रशस्त और धर्म्य विवाह प्रकारो मे परिगणित किया गया है। आर्ष विवाह से उत्पन्न सन्तति समाज मे प्रशसनीय होती थी और अपनी/तीन पीढियो का नरक से उद्धार करती थी।[2] आलोचित पुराण मे आख्यात है कि आर्ष विवाह से उत्पन्न सन्तान अपने सात पूर्वज और सात पश्चात् की पीढियो का उद्धार करता है।[3]

4. प्राजापत्य विवाह

आलोचित पुराण में आख्यात है कि धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न होने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध दान आभरण भूषित कन्याओं का परिणय करना 'प्राजापत्य' विवाह कहा जाता है।[4] प्राजापत्य विवाह मे पिता अपनी पुत्री को अलकृत करके सहधर्मचारिणी के रूप मे वर को प्रदान करता है। 'जीवन पर्यन्त साथ-साथ धर्म का आचरण करो' यह कथन ही इस विवाह का सबसे बडा वैशिष्ट्य है।[5] याज्ञवल्क्य के टीकाकार बालमभट्ट के अनुसार यह प्रकार एकपत्नीत्व की परिधि मे आता है क्योकि प्राजापत्य विवाह प्रकार से विवाहित व्यक्ति प्रथम पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह नही कर सकता।[6] गौतम के व्याख्याकार हरदत्त ने अपनी मिताक्षरा टीका में भी यही कहा है कि यद्यपि विवाह के अन्य प्रकारों

---

1 वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, पृ0 850- 851
"धर्मनिमित्तो ह्यसौ सम्बन्धो न लोभनिमित्त ।"
2. गौतम ध0सू0,1 4.25, आपस्तम्ब गृ0सू0, 1.4..27- 28
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.32
4. वही, 182.53, 7.24
5. आपस्तम्ब गृ0सू0, 1.4.25, नारद स्मृति, 12.40, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.60
कौटिल्य अर्थशास्त्र, 3.23
6. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.60 पर बालमभट्टी

मे भी पति-पत्नी अपने कर्त्तव्य साथ-साथ पूर्ण करते है किन्तु प्राजापत्य विवाह में दम्पति को विशेष रूप से सहधर्माचरण का आदेश इसलिए दिया गया, जिससे पति अपनी पत्नी की अनुमति अथवा साहचर्य के बिना गृह त्याग करके अगले (वानप्रस्थ) आश्रम को ग्रहण न करे और प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह भी न करे।[1]

ब्राह्म और दैव प्रकारो मे पिता स्वय अपनी कन्या का दान उपयुक्त वर को देता है किन्तु कुछ विद्वानो के अनुसार प्राजापत्य विवाह में पिता स्वय वर को निमन्त्रित करके कन्यादान नहीं देता, वरन वर ही याचक बन कर कन्या के पाणिग्रहण की याचना कन्या के पिता अथवा अभिभावक से करता है।[2] वर का याचक स्वरूप ही प्राजापत्य विवाह को ब्राह्म तथा दैव विवाह की अपेक्षा हीन बना देता है, क्योकि उपहार यदि मागा जाए तो उसका मूल्य कम हो जाता है- "याञ्चा च लाघवकारी"। याचकत्व के अतिरिक्त ब्राह्म और दैव विवाह की अपेक्षा प्राजापत्य विवाह के हीन होने का कारण यह भी है कि इसमें वर को सहधर्माचरण का वचन देना पड़ता है।[3]

धर्मसूत्रकारों मे वशिष्ठ एव आपस्तम्ब- दोनो ने ही प्राजापत्य विवाह प्रकार का उल्लेख नहीं किया है। प्रशस्त विवाह प्रकारो के अन्तर्गत केवल ब्राह्म, दैव एव आर्ष विवाहों को ही स्थान दिया है। इन धर्मसूत्रकारों की प्राचीनता को दृष्टि मे रखते हुए कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मूलत. प्राजापत्य और ब्राह्म समानार्थ है, प्राजापत्य विवाह बाद मे जोडा गया और इसलिए स्मृतिकार ब्राह्म विवाह और प्राजापत्य विवाह में कोई भी वास्तविक भेद करने में असमर्थ रहे।[4] श्री सेनगुप्ता ने यह

1.गौतम ध0सू0, 1.4.5 पर हरदत्त
2.जी0 डी0 बनर्जी, हिन्दू लॉ ऑफ मैरिज एण्ड स्त्रीधन, पृ0 78
महाभारत,1.96 10 पर नीलकण्ठ ने भी यही व्याख्या दी है-
"स्वमन्ये च विन्दते स्वयमन्ये इति प्राजापत्यः।"
3.पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 297
4.ए0 एस0 अल्तेकर, पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ0 46- 47

सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्राजापत्य विवाह गान्धर्व विवाह का ही युक्तिसिद्ध रूप है।[1] उनके अनुसार गान्धर्व विवाह अथवा प्रेम विवाह लोकप्रिय विवाह होने पर भी शास्त्रानुमोदित नहीं थे, अत शास्त्रीय नियमो की प्रतिक्रियस्वरूप प्राजापत्य विवाह का विधान किया गया।

कालीदास ने विवाह प्रकारो में सर्वोत्कृष्ट पद प्राजापत्य को ही दिया है, क्योंकि अपने आराध्य देव शिव का विवाह उन्होंने प्राजापत्य विधि से ही वर्णन किया है। कुमारसम्भव के अतिरिक्त रघुवंश में भी उन्होंने प्राजापत्य विवाह का विशद वर्णन किया है।[2]

विवाह का यह प्रकार सुसस्कृत समाज मे समादृत था।

5 **आसुर विवाह**

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि अपनी सामर्थ्य के अनुकूल कन्या के बन्धुओ तथा कन्या को धन देकर स्वच्छन्दता पूर्वक कन्या दान करने की विधि को आसुर विवाह कहा गया है।[3] एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि व्यसनी होने के नाते अपने प्रसन्नार्थ शुल्क प्रदान कर किसी कन्या का हरण करना आसुर विवाह कहा गया है।[4]

आसुर विवाह प्रकार मे वर द्वारा कन्या का शुल्क दिया जाता था किन्तु प्राय. सभी स्मृतिकार कन्याशुल्क की सीमा अथवा परिमाण के सम्बन्ध मे मौन हैं। धर्मसूत्रकारों मे वसिष्ठ तथा आपस्तम्ब ही ऐसे हैं जिन्होंने कन्याशुल्क के निर्धारण का प्रयत्न किया।[5] किन्तु वसिष्ठ द्वारा बताया गया शुल्क

---

1. एन0 सी0 सेनगुप्ता, इवोल्यूशन ऑफ एनशेण्ट इण्डियन लॉ, पृ0 92-93
2. कुमारसम्भव, 7.73-89, रघुवंश, 7.17-29
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.25
4. वही, 182.60
5. वसिष्ठ ध0सू0, 1.36, 29.19, आपस्तम्ब ध0सू0, 2.6.13.11

समान्य स्थिति के व्यक्ति के योग्य प्रतीत नही होता। इसके अतिरिक्त वसिष्ठ ने अलग-अलग स्थलों पर भिन्न- भिन्न मात्रा में शुल्क निर्धारित किया है।

वैदिक साहित्य में वधूशुल्क लेकर कन्याओ के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं, किन्तु उस समय क्रय-विक्रय की प्रथा के प्रति अनादर का सा भाव परिलक्षित होता है क्योंकि आदरयोग्य जामाता को अनादर पूर्वक विजामाता कह कर सम्बोधित किया गया है।[1] रामायण एव महाभारत में भी आसुर विवाह के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। राजा दशरथ ने कैकेयी से आसुर विवाह किया था।[2] महाभारत में ऋषीक ऋषि का वर्णन है जिन्होंने वधू शुल्क देकर राजा गाधि की पुत्री सत्यवती से आसुर विवाह किया था।[3] भीष्म अपने पौत्र पाण्डु के लिए मद्र देश की राजकन्या माद्री को पर्याप्त वधूशुल्क देकर लाए थे।[4] अधिकांश सूत्रकार आसुर विवाह को निन्दित एवं अधर्म्य बताते हैं क्योंकि कन्या का विक्रय अपराध है।[5] किन्तु वसिष्ठ ने आसुर विवाह का अनुमोदन किया है। उन्होंने इस विवाह को मानुष विवाह की संज्ञा दी है।[6]

इस विवाह प्रकार का नाम आसुर कैसे पड़ा- इसके सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात नही होता। डा0 अल्टेकर का कथन है कि प्राचीन असीरियन लोगों मे वधू शुल्क लेने की प्रथा थी। उसी आधार पर इस विवाह का नाम आसुर हो सकता है।[7] शतपथ ब्राह्मण मे कुसीदियों को असुर कहा गया है।[8] हारीत

---

1. ऋग्वेद, 1.109 2, "अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत्तवा घा स्यालात्।"
2. वाल्मीकि रामायण, 2.107.3
3. महाभारत, 13.4.9- 12
4. महाभारत, 1.105.4- 5
5. मनुस्मृति, 3.51, बौधायन ध0सू0, 1.11.21.5
6. वसिष्ठ ध0सू0, 1.35 " पणित्वा धनक्रीतां स मानुषः।"
7. ए0 एस0 अल्टेकर, पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ 39
8. शतपथ ब्राह्मण, 13.4.3.11

ने आसुर विवाह की एक नितान्त ही भिन्न परिभाषा दी है 'जब कन्या एक ऐसे पुरुष को दी जाए, जिसे दूसरे लोग कपटी एवं वञ्चक मानते हैं तो वह आसुर विवाह कहलाता है।[1]

आलोचित पुराण में आसुर विवाह वैश्य और शूद्रों के लिए विहित है।[2] भविष्य पुराण में इस विवाह को निन्दित विवाह की श्रेणी में रखा है।[3]

6 **गान्धर्व विवाह**

भविष्य पुराण में उल्लेख मिलता है कि कन्या और वर की इच्छा से कामवासना जनित जो परस्पर अन्योन्य संयोग होता है, इसे गान्धर्व विवाह जानना चाहिये।[4]

धर्मशास्त्रों में भी उल्लिखित है कि कन्या एव वर के पारस्परिक प्रणय के कारण पारस्परिक स्वेच्छा से दोनों का सम्मिलन गान्धर्व विवाह कहलाता है।[5]

गान्धर्व विवाह की प्रथा राजकुलों में ही अधिक प्रचलित रही है।[6] महाभारत के अनुशासन पर्व में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि ' हे युधिष्ठिर। अपनी इच्छा का परित्याग करके कन्या उसी व्यक्ति को देनी चाहिये जिसको कन्या चाहती हो और जो कन्या को चाहता हो। वेदज्ञ मनुष्यों के द्वारा यह गान्धर्व धर्म कहा जाता है।[7] महाभारत में ही दुष्यन्त शकुन्तला का विवाह गान्धर्व प्रकार

---

1. वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, पृ0 853
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.18
3. वही, 7.35- 36
4. वही, 7.26, 182.58
5. गौतम ध0सू0, 1.4.8, नारद स्मृति, 12.42, कौटिल्य अर्थशास्त्र, 3.2.6, आपस्तम्ब ध0सू0, 2.5.11.20
6. वाल्मीकि रामायण, 3.17.25, 5.9.68 - 69
7. महाभारत, 13.44.5

का उत्कृष्ट उदाहरण है। शकुन्तला को विवाह के लिए प्रेरित करता हुआ दुष्यन्त कहता है कि ' हे शकुन्तले। गान्धर्व विधि विवाहो में श्रेष्ठ कही गई है। गान्धर्व विधि से ही मेरा वरण करो।[1]'

गान्धर्व विवाह के सम्बन्ध मे सस्कृत साहित्य के धर्मशास्त्रकार एकमत नही है कि इसको प्रशस्त विवाह प्रकारों मे गिना जाए अथवा अप्रशस्त मे। बौधायन ने अन्य विचारको का मत प्रस्तुत करते हुए गान्धर्व विवाह प्रशस्त श्रेणी मे माना क्योंकि इसमे पारस्परिक प्रणय है।[2] कामसूत्र में वात्सायन ने गान्धर्व विवाह को आदर्श माना है।[3] किन्तु कालक्रम में धीरे-धीरे गान्धर्व विवाह के प्रति विचारको की धारणा बदलती गई। इस विवाह मे कामातुरता ही प्रधान होने के कारण इसको हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। आलोचित पुराण मे भी गान्धर्व विवाह प्रकार को दूषित एव निन्दित बताया है।[4]

इस विवाह प्रकार का नाम गान्धर्व इसलिए पडा क्योंकि वैदिक युग से ही गान्धर्व जाति अपनी श्रृगार प्रियता और प्रेमशीलता के लिए प्रसिद्ध रही है।[5] अल्टेकर एवं काणे के मतानुसार इस विवाह मे धार्मिक सस्कारों के सम्पन्न होने से पूर्व ही कामवासना तृप्ति होने के कारण इसका नाम गान्धर्व विवाह पडा।[6]

मनु ने गान्धर्व विवाह और राक्षस विवाह को भिन्न-भिन्न भी माना है और गान्धर्व विवाह को राक्षस विवाह से संयुक्त भी माना है।[7] महाभारतकार ने भी बिलकुल ऐसा ही वर्णन किया है।[8] इस

---

1. महाभारत, 1.73.4
2. बौधायन ध0सू0, 1.11.20.26"गान्धर्व आप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषा स्नेहानुगतत्वात्"
3. कामसूत्र, 3.5.29, 3.5.30
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.35- 36
5. तैत्तिरीय संहिता, 6.1.6.5, ऐतरेय ब्राह्मण, 5.1 "स्त्रीकामा वै गान्धर्वाः"
6. ए0 एस0 अल्टेकर- पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ0 42, पी0वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 298
7. मनुस्मृति, 3.36
8. महाभारत, 1.73.13

प्रकार गान्धर्व विवाह के भी दो उपभेद हो जाते है, राक्षस विवाह से सयुक्त गान्धर्व विवाह और राक्षस विवाह से असयुक्त गान्धर्व विवाह। आलोचित पुराण मे वैश्यो,शूद्रों एव क्षत्रियो के लिए गान्धर्व विवाह उपयुक्त बताया गया है।[1]

7 राक्षस विवाह

भविष्य पुराण के अनुसार मारकाट मचाकर रोती, बिलखती हुई कन्या का बलात् अपहरण करने को राक्षस विवाह कहते हैं।[2] वसिष्ठ, वात्सायन एव मनु के मत में हरण होते समय कन्या के जो आत्मीय जन या परिजन बाधक सिद्ध होते थे, उनकी हत्या कर दी जाती थी या उन्हे क्षत विक्षत कर दिया जाता था या मकान तोड दिया जाता था।[3]

सभी धर्मशास्त्रो में बलपूर्वक हरण का निषेध किया गया है और इस अपराध के लिए विभिन्न दण्ड विधान हैं। किन्तु, इस विवाह का अनुमोदन न करते हुए भी धर्मशास्त्रकारों ने विवाह प्रकारों में इसे स्थान इसलिए दिया, जिससे हरण की गई स्त्री समाज में धर्मसम्मत विवाहिता स्त्री का पद पा सके।

वसिष्ठ ने राक्षस विवाह को क्षात्र आचार बताया है।[4] महाभारत मे तो विभिन्न स्थलो पर राक्षस विवाह को ही क्षत्रियो के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विवाह प्रकार कहा गया है।[5] अर्जुन ने सुभद्रा का बलपूर्वक हरण करके उससे राक्षस विवाह किया, उस समय बलराम आद यादवों के क्रुद्ध होने पर

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.17– 20
2. वही, 182.59, 7.27
3. वसिष्ठ ध0सू0, 1.34, कामसूत्र, 3.5.27, मनुस्मृति, 3.33
4. वसिष्ठ ध0सू0, 1.34
5. महाभारत, 1.211.22,1.73.11, 1.96.11

कृष्ण ने राक्षस विवाह प्रकार को ही क्षत्रियो के लिए उपयुक्त आचार बताया था।[1] कृष्ण ने स्वयं रुक्मिणी का बलपूर्वक हरण करके उससे विवाह किया था।[2] आलोचित पुराण मे भी राक्षस विवाह क्षत्रियो के लिए प्रशस्त माना है।[3]

बलपूर्वक हरण कर लेने के पश्चात् अपहरणकर्ता को कन्या से विधिपूर्वक विवाह करना होता था, जिसमे होम और सप्तपदी के कृत्य आवश्यक थे।[4] इससे विवाह को वैधता प्राप्त हो जाती थी। यदि अपहरणकर्ता उस कन्या से विवाह करने को तत्पर नही हो तो वह कन्या दूसरे व्यक्ति को दी जा सकती थी, किन्तु उस अपराधी अपहरणकर्ता को भीषण दण्ड भुगतना पड़ता था।[5]

धीरे-धीरे राक्षस विवाह की प्रथा बुरी समझी जाने लगी। स्मृतिकारों ने इसकी निन्दा की और यह प्रथा समाज से उठने लगी। मध्यकाल मे इसके एक दो उदाहरण ही दिखाई देते हैं। अमोघवर्ष के 793 शक सवत के संजान ताम्रपत्रो में यह तथ्य उत्कीर्ण है कि इन्द्रराज ने खेडा के चालुक्यवंशी राजा की कन्या के साथ राक्षस विवाह किया।[6] पृथ्वीराज चौहान ने जयचन्द की कन्या संयोगिता को राक्षस ढंग से ही प्राप्त किया था।[7] किन्तु इस विषय में यह बात विचारणीय है कि कन्नौज के राजा जयचन्द की कन्या की सम्मति थी। अत यह विवाह गान्धर्व एवं राक्षस प्रकारो का मिश्रण कहा जाएगा। समस्त वर्णों में अधिक बलशाली माने जाने के कारण क्षत्रियो के लिए तो यह विवाह धर्म्य है। किन्तु स्मृतिकारों के मत में यह विवाह ब्राह्मणों के लिए अधर्म्य है।[8]

---

1. महाभारत, 1.213, 4-5
2. श्रीमद्भागवद्, 10.52.18, 10.54.18
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.18, 7.20
4. मनुस्मृति, 8.366
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.287-288
6. एपिग्रैफिया इण्डिका, खण्ड-18, पृ0 235
7. भवि0 पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 3 6.36-37
8. बौधायन ध0सू0 1.11.20.2, महाभारत, 1 73.11

राक्षस लोग अपने क्रूर एवं शक्तिशाली कार्यों के लिए प्रसिद्ध रहे है। राक्षस विवाह मे क्रूरता पूर्वक कन्या के आत्मीय जनो को मारने और शक्तिपूर्वक कन्या का हरण करने के कारण इस विवाह प्रकार का नाम राक्षस विवाह पड़ा।[1]

इस विवाह का परिहरण करना चाहिये क्योंकि यह निन्दित अथवा अधर्म्य विवाह है और निन्दित विवाह से निन्दित सन्तान ही उत्पन्न होती है।[2]

8. **पैशाच विवाह**

भविष्य पुराण मे इस विवाह प्रकार को पापमय बताते हुए उल्लिखित है कि एकान्त मे सोई हुई मद से उन्मत्त अथवा प्रमाद से दूषित स्त्री के साथ छिप कर जो समागम किया जाता है वह पैशाच विवाह कहा गया है।[3] गौतम धर्मसूत्र, मनुस्मृति तथा महाभारत आदि मे उल्लिखित है कि कन्या की प्रमत्तता, सुप्तावस्था अथवा उन्मत्तावस्था में उस से सम्भोग करना पैशाच विवाह कहलाता है।[4]

स्मृतिकारों ने इस विवाह प्रकार को अधमतम बताया है। आपस्तम्बऔर वसिष्ठ धर्मसूत्र ने पैशाच विवाहो का उल्लेख ही नहीं किया है।

मनु ने पिशाच विवाह को ब्राह्मण वर्ण के लिए अधर्म्य बताया है।[5] बौधायन ने वैश्य एव शूद्र के लिए यह विवाह धर्म्य मानते हुए कारण दिया है कि वैश्य एव शूद्र अपनी स्त्रियो को नियन्त्रण में नहीं रख पाते।[6] तो भी यह निन्दित विवाह है और इस विवाह का निषेध ही किया गया है।[7]

---

1. पी0 वी0 काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ0 298
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.35-36, मनुस्मृति, 3.41-42
3. वही, 7.28, 182.61
4. गौतम ध0सू0, 1.4.11, मनुस्मृति, 3.34, महाभारत, 1.96.10
5. मनुस्मृति, 3.23
6. बौधायन ध0सू0, 1.11 20.13- 14
7. मनुस्मृति, 3.25

विवाह प्रकार विवेचन

स्मृतियो ने विभिन्न वर्णों के लिए इन आठ विवाह प्रकारो की उपयुक्तता के विषय में विभिन्न मत दिए हैं। फिर भी कुछ तथ्यो पर सभी एकमत है। सभी ने प्रथम चार अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य को प्रशस्त एवं धर्म्य बताया है।[1] आलोचित पुराण में भी आख्यात है कि ब्राह्मणों के लिए प्रथम चार (ब्राह्म, दैव, आर्ष एव प्राजापत्य) विवाह संस्कार प्रशस्त है।[2] राक्षस और गान्धर्व विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताया है।[3] किन्तु पैशाच और आसुर विवाह क्षत्रियों के लिए अधर्ममय है।[4] मनु एवं बौधायन ने भी गान्धर्व एव राक्षस,क्षत्रियो के लिए उपयुक्त बताया है। दोनो का मिश्रण भी क्षत्रियो के लिए उपयुक्त बताया है।[5] बौधायन धर्मसूत्र ने वैश्यो एव शूद्रो के लिए आसुर एव पैशाच विवाह की व्यवस्था की है।[6] भविष्य पुराण मे भी वैश्यो और शूद्रों के लिए राक्षस विवाह को छोड़कर गान्धर्व, आसुर और पैशाच विवाह की स्वीकृति दी है।[7]

आलोचित पुराण मे उल्लिखित है कि प्रथम चार ब्राह्म, दैव, आर्ष एव प्राजापत्य विवाहों में क्रमश उत्पन्न होने वाले पुत्रगण, ब्रह्मतेजोमय, शिष्टानुमोदित, रूपवान, पराक्रमी, गुणवान, धनवान, यशस्वी, पुत्रवान एवं धार्मिक होते है एवं सौ वर्ष की दीर्घायु तक जीवित रहने वाले होते है।[8] बाद मे चार (गान्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच) दूषित विवाहो से उत्पन्न होने वाले पुत्रगण मिथ्यावादी ब्राह्मण एव धर्म से द्वेष रखने वाले होते हैं।[9] इस प्रकार निन्दित विवाहो से निन्दित सन्ततिया पैदा होती हैं।अत मनुष्य को इन निन्दित विवाहो से वर्जित रहना चाहिये।[10]

---

1. गौतम ध0सू0, 4.12, आपस्तम्ब ध0सू0, 2.5 12.3, मनुस्मृति, 3.24
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.17
3. वही, 7.20
4. वही, 7.19
5. मनुस्मृति, 3.26, बौधायन ध0सू0, 1.11.13
6. बौधायन ध0सू0, 1 11.14-16
7. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.17
8. वही, 7.33-34
9. वही, 7.35
10. वही, 7.36

कन्या शुल्क

आलोचित पुराण मे स्पष्टोल्लेख प्राप्त होता है कि कन्या के पिता को चाहिये कि वह रत्ती भर का किसी प्रकार का शुल्क जामाता से ग्रहण न करे, लोभवश शुल्क ग्रहण करने पर वह अपनी सन्तान का विक्रय करता है।[1] अज्ञानवश जो पिता, बन्धु आदि परिवार के लोग कन्या के कारण मिले हुए धन का उपभोग करते है अथवा उसके कारण मिले वस्त्र को ब्राह्मणादि धारण करते है वे पापी अधोगति को प्राप्त होते है।[2] कन्याशुल्क की तीव्रतम निन्दा महानिर्वाणतंत्र तथा पद्म पुराण मे है। महानिर्वाणतत्र कहता है कि " राजा नास्तिक और पतित व्यक्ति की तरह अपनी कन्या का शुल्क लेने वाले व्यक्ति को भी अपने राज्य से निर्वासित कर दे।"[3] पद्म पुराण मे उल्लिखित है कि "बुद्धिमान कन्या बेचने वालो का मुख न देखें, यदि अज्ञान से उनका मुख देख ले तो सूर्य का दर्शन कर उस पाप की निवृत्ति करे।"[4] बौधायन धर्मसूत्र ने शुल्क देकर खरीदी गई पत्नी को वैध पत्नी नही स्वीकार किया और उसे दासी का दर्जा दिया तथा यह भी विधान किया कि मूल्य देकर क्रय की गई वधू को पितरो एवं देवताओ के लिए किए जाने वाले यज्ञो मे भाग लेने का अधिकार नहीं है।[5] अन्यत्र यही यही धर्मसूत्र कहता है कि जो अपनी कन्या को बेचता है वह अपने पुण्यो को बेचता है।[6] मनु ने कहा है कि कन्या का पिता धन ग्रहण करने के दोष को जानता हुआ अणुमात्र भी शुल्क न ले, लोभ से ग्रहण करता हुआ वह सन्तान बेचने वाला होता है। किन्तु जब कन्या के संबंधी वर का शुल्क

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7 39
2. वही, 7.40
3. महानिर्वाणतंत्र, 11 84
4. पद्म पु0, 24 26
5. बौधायन ध0सू0, 1.11 20-21
6. वही, 2.1.79

अपने आप नही लेते, किन्तु कन्या को सौंप देते हैं तब यह कन्याओ का अर्हण या पूजन है इसमे कोई दोष नही।[1] आलोचित पुराण में भी आख्यात है कि वर द्वारा दिए गए कन्याओ के धन को दान मे उनके बंधु आदि कुछ शुल्क नही लेते वह विक्रय नही कहलाता क्योंकि वह उस कन्या के सत्कार मे दिया गया है और वही उसके साथ परम दया एव कृपा है।[2] मनु शूद्र तक को कन्या शुल्क लेने से मना करता है क्योकि यह पृच्छन्न कन्या विक्रय है।[3]

महाभारत के अनुशासन पर्व में भी उल्लिखित है कि जो पुत्र को बेचता है अथवा जीविका के लिए कन्या विक्रय करता है वह भयानक नरक अर्थात् कालसूत्र मे गिरता है।[4] अनुशासन पर्व एवं मनु ने आर्ष विवाह की भर्त्सना की है क्योंकि उसमे वर के पिता से युग्म पशु लेने की बात है।[5]

आलोचित पुराणकार ने भी आर्ष विवाह में गौयुगल लेने को कन्या विक्रय बताया है।[6]

विवाह अवस्था

भविष्य पुराण मे विवाहावस्था के संदर्भ में कन्याओ के उत्तम तथा अधम होने का उल्लेख प्राप्त होता है कि गौरी कन्या प्रधान, कन्या नाम वाली मध्यम, रोहणी उसी के समान और रजोवती कन्या अधम बताई गई है।[7] ऋतुमती न होने वाली कन्या गौरी, रजस्वला को रोहणी, व्यञ्जन (चिह्न) हीन को कन्या एवं कुचहीना को नग्निका बताया गया है।[8]

---

1. मनुस्मृति, 3.51 – 55
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.42
3. मनुस्मृति, 9.98
4. महाभारत, अनुशासनपर्व, 45.18–19
5. महाभारत, अनुशासनपर्व, 45.20, मनुस्मृति, 3 53
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.41
7. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.27
8. वही, 182.29

भारतीय सस्कृति की सुदीर्घ परम्परा में कन्या के लिए विवाह की आयु घटती बढ़ती रही है। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से ऋग्वेद मे विवाह की आयु का कोई स्पष्ट निर्देश नही मिलता, किन्तु उस युग में कन्याएँ पर्याप्त युवावस्था मे ही विवाहित होती थी। वैदिक समय में युवती कन्या ही पति वरण करती थी।[1] रूपवती एव अलकृता कन्या मनुष्यो के बीच स्वय अपने मित्र को चुन लेती थी।[2]

गृह्यसूत्रो के आरम्भिक काल मे हिन्दू समाज मे तरूण विवाह प्रचलित रहा, किन्तु बाद मे कन्याओ की विवाह योग्य आयु के न्यूनतर किए जाने के स्पष्ट सकेत प्राप्त होने लगते है। हिरण्यकेशी तथा गोभिल गृह्य सूत्रो मे विवाह योग्य कन्या का एक लक्षण 'नग्निका' बताया गया है।[3] टीकाकारो ने 'नग्निका' की कई व्याख्याएँ उपस्थित की हैं। मातृदत्त ने हिरण्यकेशी गृह्यसूत्रकी व्याख्या में नग्निका ऐसी कन्या को कहा, जो सम्भोग के योग्य हो और ऋतुधर्म के सन्निकट हो।[4] वसिष्ठ ने नग्निका की वयाख्या ' अनागतार्तवा ' कन्या के रूप मे की है।[5] मानवगृह्यसूत्र के टीकाकार अष्टावक्र के मत से नग्निका वह कन्या है जिसे अभी यौवन सुलभ भावनाओ की अनुभूति नही है। उन्होंने एक अर्थ यह भी बताया है कि 'नग्निका' वह है जो बिना परिधान के सुन्दर लगे।[6] आलोचित पुराण मे दस वर्ष वाली को तथा जिसमें यौवन के चिह्न प्रकट न हुए हों, को नग्निका बताया है।[7]

वैखानस में कहा है कि ब्राह्मण को नग्निका या गौरी से विवाह करना चाहिये।[8] कुछ

---

1 ऋग्वेद, 2 35 4
2 वही, 10 27.12
3 हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र, 1 19 2, गोभिल गृह्यसूत्र, 3.4.6
4. हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र, 1.19.2 पर मातृदत्त
5. वसिष्ठ ध०सू०, 17.62
6. पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 273
7. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 182.29-30
8. वैखानस, 6.12

गृह्यसूत्रो ने वर्णन किया है कि कन्या का ब्रह्मचर्य केवल दस या बारह वर्ष तक रहता है।[1]

पराशरस्मृति ने बाल विवाह पर बहुत बल दिया। उसके अनुसार आठ वर्ष की गौरी, नौ वर्ष की रोहणी, तथा दस वर्ष की कन्या होती है। इसके उपरान्त वह रजस्वला हो जाती है। अविवाहिता कन्या यदि रजस्वला हो जाती है तो माता–पिता और बड़ा भाई ऐसी कन्या को देखकर नरक मे जाते हैं, अज्ञान से मूढ़ ब्राह्मण यदि ऐसी कन्या से विवाह कर लेता है तो वह समाज से बहिष्कृत है, न बोलने योग्य और शूद्रपति हो जाता है।[2] पराशर के इस नियम का उसके बाद के स्मृतिकारों ने खूब अनुमोदन किया। संवर्त स्मृति[3] और ब्रह्यम[4] पराशर के समर्थक है किन्तु पराशर मे जहाँ 12 वर्ष तक विवाह का विधान है, वहाँ संवर्त स्मृति[5] मे कहा गया है कि कन्या का रजस्वला होने से पहले ही विवाह कर देना चाहिये।आठ वर्ष की कन्या विवाह उत्तम है। किन्तु आलोचित पुराण मे सात वर्ष की कन्या को गौरी बताया है।[6] ब्राह्म पुराण में तो उल्लिखित है कि 4 वर्ष के बाद कन्या विवाह योग्य हो जाती है।[7]

गौतम धर्मसूत्र ने विधान किया है कि कन्या के ऋतुमती होने से पूर्व ही विवाह कर देना चाहिये अन्यथा दोष होता है।[8] मनुस्मृति में विवाह योग्य आयु के कम हो जाने के सम्बन्ध में परस्पर

---

1. लौगाक्षि गृ0सू0, 19.2
2. पराशर स्मृति, 7.6– 9
3. संवर्त स्मृति, 65– 66
4. ब्रह्यम, 20– 22
5. संवर्त स्मृति, 68
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व,182.30
7. हरिदत्त वेदालकार, हिन्दू विवाह का सक्षिप्त इतिहास, पृ0 322
8. गौतम ध0सू0, 2 9.21–23

विरोधी वचन मिलते हैं। एक ओर वे कहते है कि कन्या ऋतुमती होने के बाद तीन वर्ष तक पिता आदि के द्वारा विवाह करा दिए जाने की प्रतीक्षा करे और तत्पश्चात् स्वय अपने गुणानुरूप वर चुन ले।[1] तो दूसरी ओर श्रेष्ठ वर मिल जाने पर कन्या की अवस्था विवाह के योग्य न होने पर भी कन्यादान का विधान करते है।[2] एक स्थल पर मनु ने धर्मलोप की आशका होने पर आठ वर्ष की कन्या का विवाह कर देने का विधान दिया है।[3] आलोचित पुराण मे सात वर्ष वाली कन्या को गौरी, दस वर्ष वाली को नग्निका, बारह वर्ष वाली कन्या तथा इससे अधिक आयु वाली को ऋतुमती बताया है।[4] आलोचित पुराण का कथन है कि पिता के घर मे स्थित कन्या अविवाहित अवस्था में ही रजस्वला हो जाती है तो उस पिता के पितर लोगो का पतन होता है और वह कन्या वृषली कहलाती है।[5] जो ज्ञान दुर्बल ब्राह्मण उसका पाणिग्रहण करता है उसे श्राद्ध कर्त्तव्यहीन, पक्ति से पृथक वृषली पति रूप मे जानना चाहिये।[6] पिता को चाहिये कि व्यञ्जन, रज एवं पयोधर निकलने से पूर्व ऐसी कन्या को जो सोमादिकों से अनुपभुक्त रहती है प्रदान करे।[7] जिसकी कन्या का विवाह उपरोक्त कथनानुसार न हो, उसके अन्न का भोजन नहीं करना चाहिये। क्योकि उसके यहाँ का सिद्ध पक्वान्न भी व्यर्थ बताया गया है और व्यर्थ अन्नभोजन करने से प्रायश्चित करने का भागी होना पड़ता है।[8] उसके भोजन करने से तीन बार प्राणायाम और घी का प्राशन रूप प्रायश्चित करे।[9]

---

1. मनुस्मृति, 9.90
2. वही, 9 88-89
3. वही, 9.94
4. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 182.30
5. वही, 182 24
6. वही, 182.25
7. वही, 182.33
8. वही, 182.34
9. वही, 182.35

परिवेदन

भविष्य पुराण मे आख्यात है कि अपने ज्येष्ठ भ्राता के पहले ही जो स्त्री विवाह एवं अग्निहोत्र कर्म करता है उसे परिवेत्ता कहा जाता है और उसके पूर्वज को परिविन्ति। परिविन्त, परिवेत्ता, उसकी स्त्री, कन्या पिता एव यज्ञ (विवाह मे हवन) करने वाले ब्राह्मण इन सभी को नरक की प्राप्ति होती है।[1] मनुस्मृति मे कहा गया है कि जो अपना बडा भाई रहने पर भी विवाह करता है और गार्हपत्यादि अग्नियो को प्रज्वलित करता है उसे परिवेत्ता कहते है।[2] आपस्तम्ब धर्मसूत्र[3] परिविविदान और याज्ञवल्क्य स्मृति[4] मे इसे परिविन्दक कहा है। गौतम धर्मसूत्र[5] तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र[6] बड़े भाई से विवाह से पहले अपना विवाह (परिवेदन) करने वाले छोटे भाई (परिवेत्ता) को श्राद्ध में बुलाने योग्य नहीं समझते। विष्णु धर्मसूत्र[7] परिवेदन की गणना उपपातको में करता है।

वास्तव मे परिवेदन मे पाप का विचार बहुत प्राचीन है और तैत्तिरीय ब्राह्मण[8] मे दी गई एक कथा के अनुसार मनुष्यों मे पापियो की एक क्रमबद्ध श्रखला है। इन पारियों मे परिविन्ति (अविवाहित बड़ा भाई) और परिवेत्ता (विवाहित छोटा भाई) की गणना की गई है। वसिष्ठ धर्मसूत्र[9] मे पापियो की गणना मे परिवेत्ता और परिविन्ति दोनो गिनाए गए हैं। रामायण[10] मे राजघातक, ब्रह्मघातक, गोघातक, चोर, हिंसक, नास्तिक के साथ परिवेत्ता की गिनती करते हुए उसे नरकगामी कहा गया है।

---

1 भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182 44.45
2 मनुस्मृति, 3.171- 172
3. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.5.12 22
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1 223
5. गौतम ध0सू0, 15.18
6. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.5.12-22
7. विष्णु ध0सू0, 37.15-17
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3.2.9
9. वसिष्ठ ध0सू0, 1.18
10. रामायण, 4.17.36

महाभारत[1] मे परिवेत्ता के लिए चन्द्रायण और कृच्छ्र नामक प्रायश्चितो का विधान किया गया है।

कुछ अवस्थाओ में सूत्रकार परिवेदन को पाप नही मानते और छोटे भाई को बडे भाई से पहले विवाह की अनुमति प्रदान करते हैं। गौतम धर्मसूत्र[2] कहता है कि यदि बडा भाई विदेश चला जाए तो छोटा भाई 12 वर्ष प्रतीक्षा करके अग्न्याधान करे तथा कन्या के साथ विवाह करे। मध्यकाल के स्मृतिकारों एव निबन्धकारों ने इस नियम के कई अन्य अपवाद भी बताए हैं। अत्रिसंहिता[3] बडे भाई के नपुंसक, विदेशस्थ, पतित, सन्यासी और योगशास्त्र का अभ्यासी होने पर परिवेदन में कोई दोष नही समझती।

आलोचित पुराण के मतानुसार यदि ज्येष्ठ भ्राता मे कोई रोग हो, नपुसक, विदेश निवासी, पतित, सन्यासी एवं भागी हो गया हो तो उसे (छोटे भाई) अपना विवाह करने मे दोष का भागी नहीं बनना पड़ता। इतना ही नही बड़े भाई के लगडे, वामन, कूबड़े, साफ न बोलने वाले, जड, जन्मान्ध, बहिरा और गूंगे होने पर भी छोटे भ्राता को अपनी स्त्री के साथ रहन-सहन में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।[4]

वधू के गुण

भविष्य पुराण मे विवाहयोग्य कन्या के शुभाशुभ लक्षणों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।[5] आलोचित पुराण के अनुसार मनोहर अंगो वाली, सुन्दर नाम से विभूषित, हंस एवं हाथी के समान गमन

---

1. महाभारत, 12 165.68-69, 12.35.27-28
2 गौतम ध0सू0, 18.18.19
3. अत्रिसंहिता, 105-106
4 भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 182.46-47
5 भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, अध्याय-5 तथ अध्याय-28

करने वाली, सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश एव सूक्ष्म दाँतो वाली कोमलागी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।[1] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि गृहस्थ होने के लिए हस के समान स्वर, समान रूप रग, मधु एव पिङ्गल वर्ण के समान नेत्र वाली कन्याओ का पाणिग्रहण करना चाहिये ।[2] आश्वालायन गृह्यसूत्र[3] ने वधू के बुद्धि, रूप, शील लक्षण युक्त होने तथा नीरोग हाने पर बल दिया है। मनु[4], याज्ञवल्क्य[5], शाखायन गृह्यसूत्र[6] ने कन्या के उत्तम लक्षणों वाली होने पर बल दिया है। ये लक्षण शारीरिक विशेषताओ को सूचित करते हैं। कन्या के भाग्य और आयु को बताते हैं। गोभिल गृह्यसूत्र कहता है कि स्त्री के लक्षणो को जानने वाले चतुर व्यक्ति द्वारा कन्या की परीक्षा कराए। उत्तम लक्षणों वाली या चिह्नो वाली स्त्री को पत्नी बनाएँ।[7] मनुस्मृति[8], विष्णु धर्मसूत्र[9], वसिष्ठ धर्मसूत्र[10], वात्सायन कामसूत्र[11], बृहत्संहिता[12] मे इन लक्षणो की विस्तार से चर्चा है।

---

1 भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 5.102
2. वही, 182.43
3. आश्वलायन गृ0सू0, 1.5 3
4. मनुस्मृति, 3.4
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.52
6. शांखायन गृ0सू0, 1 5.6
7 गोभिल गृ0सू0, 2 1 3
8. मनुस्मृति, 3 8-10
9 विष्णु ध0सू0, 24 12-16
11. वसिष्ठ ध0सू0, 1 38
12. वात्सायन कामसूत्र, 3.1.2
13. बृहत्संहिता, 70.1

कामसूत्र के अनुसार " कन्या उत्तम कुल वाली, माता-पिता युक्त वर से तीन वर्ष कम आयु वाली होनी चाहिये। श्लाध्य आचार वाले, धनधान्य परिपूर्ण, स्नेह रखने वाले, खूब संबंधियों वाले कुल मे उत्पन्न, रूपवती, शीलवती, लक्षणयुक्त, बिल्कुल पूरे दाँत, नख, केश, कान, आँखे रखने वाली तथा स्वस्थ शरीर की कन्या का वरण करे।[1]

वधू के अवगुण

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि कपिल वर्ण वाली, अधिकांगी,/ रोगिणी लोमहीना, अधिक लोमवाली, कष्ट करने वाली, पिगल वर्ण की तथा नक्षत्र वृक्ष, नदी, पर्वत, यक्ष, नाग, दूत एव अतिभीषण नाम वाली कन्याओ का पाणिग्रहण नहीं करना चाहिये।[2] कामसूत्र मे न केवल रोगहीन कन्या के साथ विवाह का विधान किया अपितु उसने यह कहा कि जिसके शरीर की प्रकृति ही अरोगी हो ऐसी कन्या से पुरूष विवाह करे।[3] विष्णु स्मृति में व्याधिता, कन्या के साथ विवाह का निषेध किया गया है।[4] याज्ञवल्क्य स्मृति की व्याख्या करते हुए विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि विवाह में ऐसी रोगी कन्या अयोग्य है जिसकी व्याधि की चिकित्सा न हो सकती हो।[5] मनु ने रोगिणी कन्या से विवाह का निषेध किया हे। कपिल वर्ण वाली, अधिक या कम अगो वाली, रोगिणी लोमरहित यह अधिक लोमवाली, बहुत अधिक बोलने वाली तथा पिगलवर्ण नेत्रो वाली कन्या से विवाह नही करना चाहिये।[6]

स्मृतिकारो मे केवल मनु ने ही कन्या के इतने शारीरिक अवगुणो को गिनाया है। भविष्य पुराण का वर्णन भी मनु के सदृश है। जबकि और स्मृतिकारों तथा सूत्रकारों ने केवल 'रोगिणी' या

---

1. हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, पृ0 152
2. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 182.40-41
3. कामसूत्र, 3.1.2 "अरोगिप्रकृति शरीरा।"
4. विष्णु स्मृति, 24 12
5. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.53
6. मनु स्मृति, 3.8

'व्याधिता' कहकर ही कन्या को अयोग्य ठहरा दिया। महाभारत मे भी बड़े विस्तृत रूप मे कन्या के शारीरिक अवगुणो का वर्णन प्राप्त होता है। अगहीना अथवा विकृतागी कन्या का विवाह मे वर्जन करना चाहिये। उसी प्रकार वृद्धा अथवा प्रव्रज्या गृहण कर लेने वाली कन्या से विवाह नही करना चाहिये।[1]

शारीरिक विकृति एव अशुभ अथवा उच्चारण के अयोग्य नाम के अतिरिक्त विवाह योग्य कन्या का एक और सर्वसम्मत अवगुण उसका भ्रातृहीना होना है। मनु[2] व याज्ञवल्क्य[3] वधू के भ्रातृमती होने पर बल देते है। उनके मतानुसार जिस कन्या का भाई न हो उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। ऋग्वेद[4] एव अथर्ववेद[5] मे इसके सकेत है। यास्क ने निरुक्त[6] मे इसकी विस्तार से चर्चा की है। आलोचित पुराण मे भी आख्यात है कि जिसके भ्राता न हो और पिता निश्चित न हो, बुद्धिमान को चाहिये कि ऐसी कन्या के साथ विवाह संबंध स्थापित न करे क्योंकि कदाचित अपने ही कुल की उसे पुत्री होने से धर्म के नाश की सम्भावना रहती है।[7]

आलोचित पुराण ने यह विधान दिया है कि किसी दोषपूर्ण कन्या के प्रदान करने वाले से छियानवे पण दण्ड के रूप मे ले लेना चाहिये। शुल्क प्रदान करने वाले या कन्या विवाह के रोकने वाले से भी इतना ही दण्ड के रूप में ले लेना चाहिये।[8]

---

1 महाभारत, 13 107·123, 13·107 124
2· मनुस्मृति, 3·11
3· याज्ञवल्क्य स्मृति, 1·53
4· ऋग्वेद, 1 124 7
5· अथर्ववेद, 1·17 1
6· निरुक्त, 34·5
7· भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182·42
8· वही, 182·64

वर के अवगुण

वर का कुल उत्तम होना चाहिये। यह समझा जाता है कि उत्तम कुल में जन्म लेने के कारण व्यक्ति वश परम्परा द्वारा कुछ विशेषताओं को प्राप्त करता है और कुछ गुणो को वह अपने कुल के उत्कृष्ट एवं सभ्य वातावरण द्वारा उपार्जित करता है। अत विवाह में कुलीनता के गुण को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। मनुस्मृति में कहा है कि जो अपने कुल का उत्कर्ष चाहता है उसे उत्तमोत्तम व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध करने चाहिये और अधम लोगों के साथ सम्बन्धों का त्याग करना चाहिये।[1] याज्ञवल्क्य ने भी महाकुल या श्रेष्ठ कुल पर बल दिया है।[2] हारीत कुल पर बल देने के कारण को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि संतान माता–पिता के गुणों वाली होती है।[3]

आलोचित पुराण का इस सदर्भ मे कथन है कि कुलहीन को कन्या प्रदान न करना चाहिये, क्योंकि कुलशील हीन होने पर उस वर की कभी शुद्धि नही हो सकती। उसमे न मन्त्र कारण होते है और न कन्या का वरण ही किया जाता है।[4]

स्त्री का पुनर्विवाह

आलोचित पुराण में स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह का विधान प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार जिस कन्या का केवल विवाह सबंध हो चुका हो तथा कन्या अक्षत हो, वह किसी दूसरे को अपना पति बना

----

1. मनुस्मृति, 4.244

2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.54

3 वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, पृ0 589

4 भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.48

सकती है।[1] ऐसी कन्या का पुनर्विवाह करने में पिता को दोष का भागी नहीं होना पड़ता।[2] वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार यदि कन्या का वाग्दान हो जाता है किन्तु विवाह से पहले ही उसका पति मर जाता है अथवा पाणिग्रहण हो गया हो और कन्या अभी अक्षत हो तो उस अवस्था मे भी उसका पुनर्विवाह हो सकता है।[3] बौधायन धर्मसूत्र ने वसिष्ठ के ही समान व्यवस्था की है।[4] कौटिल्य[5] ने पति के मर जाने पर सात महीने की प्रतीक्षा के बाद पत्नी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है। मनु ने अक्षत कन्या को पुनर्विवाह कर लेने पर 'पुनर्भू' की सज्ञा दी है।[6]

पुरूष का पुनर्विवाह एवं बहुविवाह

आलोचित पुराण मे आख्यात हे कि पति को चाहिये कि आठ वष तक पुत्रोत्पत्ति की प्रतीक्षा करता रहे, यदि उस बीच में महान प्रयत्नशील रहने पर भी उससे पुत्रोत्पन्न नही हुआ तो उसके पश्चात् पुत्र के लिए किसी प्रशस्त कुल की कन्या का पाणिग्रहण धार्मिक विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे।[7]

वस्तुत किसी विशिष्ट कारण से अथवा मन की चञ्चलता के वशीभूत होकर पुरूष को दूसरा विवाह कर लेना अधर्म समझा ही नही जाता था। आपस्तम्ब ने अवश्य ही पुरूष के बहुविवाह का निषेध किया है "यदि पत्नी सन्ततियुक्त हो और धार्मिक कार्यों में सहयोग देती हो तो दूसरा विवाह नही करना चाहिये।[8] किन्तु महाभारतकार ने पुरूष की बहुपत्नीकता को अधर्म नहीं माना।[9] महाभारत मे

---

1 भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.49
2. वही, 182.50
3 वसिष्ठ ध0सू0, 17.66
4. बौधायन ध0सू0, 4 3.18
5 कौटिल्य, अर्थशास्त्र, 3 4
6. मनुस्मृति, 9.176
7. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.69- 70
8. आपस्तम्ब ध0सू0, 2.5.11.12
9. महाभारत, 1.187.28, 1.69.36 (बम्बई एडिशन)

प्राय सभी राजाओं की एकाधिक पत्नियाँ थी। संस्कृत के सभी प्रसिद्ध नाटको मे नायको की कई पत्नियाँ चित्रित की गई है। रामायण मे दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं।

ऋग्वेद मे विवाह का आदर्श अत्यधिक उच्च था। उसमे पुरूष के बहुविवाह या पुनर्विवाह के भी प्रसंग प्राप्त नही होते। मैकडॉनल एव कीथ ने ऋग्वेद के कुछ मत्रो के आधार पर पुरूष के बहुपत्नीक होने का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है।[1] किन्तु दयानन्द सरस्वती ऋग्वेद के समय मे पुरूष के बहुविवाह को स्वीकार नही करते।[2] नैतिकता के क्रमश ह्रास के साथ ही पुरूष के बहुविवाह अथवा पुनर्विवाह का प्रचलन बढता गया और पुरूष के इस कार्य को शास्त्र सम्मत भी ठहराया गया।

आलोचित पुराण मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि शुल्क प्रदान कर किसी अन्य स्त्री को उपभोगार्थ रखना चाहता है तो उस धन द्वारा सभीभान्ति के सतोषार्थ सूर्योढा स्त्री का वरण करे। क्योंकि शूद्र के लिए एक, वैश्य के लिए दो, क्षत्रिय के लिए तीन एव श्रीसम्पन्न ब्राह्मण के लिए चार स्त्रियों को रखने का यथेच्क्ष नियम है।[3]

आलोचित पुराण के प्रणयनकाल मे पुरूषो के बहुविवाह का प्रचलन बहुत अधिक प्रतीत होता है। यही कारण है कि पुराणकार स्त्रियों को सपत्नियो के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिये इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है।[4]

---

1 मैकडॉनल एवं कीथ, वैदिक इण्डेक्स, खण्ड–1, पृ0 541

2 दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास, पृ0 71

3 भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 182.71 – 72

4 वही, 13.21 – 33

पति एवम् पत्नी के पारस्परिक कर्त्तव्य

पति के कर्त्तव्य पत्नी के प्रति

आलोचित पुराण में आख्यात है कि स्त्रियो के अधीन रहने वाला पति निन्दा का पात्र होता है।[1] अतएव अनुशासन एव ताडनादि से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये एव समय पडनेपर उनका सम्मान भी करना चाहिये।[2] अनेक स्त्रियो का पाणिग्रहण करके सब के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये।[3] समय का विचार कर उन्हें धनादि भी देना चाहिये।[4] धर्म, अर्थ एव काम सम्बन्धी कार्य मे स्त्री के साथ प्रवञ्चना नही करने चाहिये।[5] धार्मिक कार्यों में स्त्री पुरूष का आधा शरीर मानी गई है, इसलिए उनके साथ ऐसा प्रतिकूल व्यवहार न रखे कि उन्हे व्यथा हो।[6] यदि कई स्त्रियाँ हो तो पुरूष को यज्ञोत्सव आदि में बिना किसी कारण के किसी एक को विशेष महत्व नहीं देना चाहिये।[7] कामवश यदि कोई विशेष प्रिय है और कोई अप्रिय है तो एकान्त में उनके साथ ही वैसा व्यवहार करना चाहिये।[8] ज्येष्ठ, कुलीन, सदाचरण परायण, धर्मशील एव पुत्रवती इनमे से क्रमश. एक के बाद दूसरे को सम्मानीय समझना चाहिये।[9] एकान्त मे एक पत्नी के साथ जो कुछ दु ख सुख अथवा र अस्त् व्यवहार का अनुभव पति को हो अथवा पत्नी के मन मे पति के लिए जो उत्सुकता एव उत्कण्ठा हो, उसका वर्णन सपत्नियो के सामने नही करना चाहिये।[10] एक दूसरे के प्रति मत्सर भावनाओ का प्रचार नही करना चाहिये। कभी वचन द्वारा भी स्त्रियों की भर्त्सना नहीं करनी चाहिये। उनके गुण-दोषों भली-भाँति जानकर उनके दूर करने एव बढ़ाने का उपक्रम करना चाहिये।[11] सभी स्त्रियों की सन्ततियो के

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 8.25
2. वही, 8.26
3. वही, 8 27
4. वही, 8.28
5. वही, 8.36
6. वही, 8.37
7. वही, 8.38
8. वही, 8.39
9. वही, 8.40
10. वही, 8.43
11. वही, 8 45

साथ वस्त्र, अलंकार एव भोजनादि मे माताओ के क्रम से ध्यान रखना चाहिये। माता के दोष को न देखकर पिता को सब की सन्ततियो के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये।[1] स्त्रियो के प्रीति, . द्वेष अभिप्राय, पवित्रता, अपवित्रता, बाहर-भीतर का गमन एवं आगमन, सब का दास एव भेदियों से सर्वदा पता लगाते रहना चाहिये।[2] विविध प्रकार की कथाओ, उपाख्यानो एवं प्रवृत्तियो द्वारा समय-समय पर अन्त.पुर मे प्रविष्ट होकर उनके अभिप्रायो का पता लगाना चाहिये।[3] उन कथाओ के कहे जाने के समय उनकी मुख्य-मुख्य घटनाओ पर स्त्रियो के मनोगत भावो का यर्थाथत पता लगा लेना चाहिये।[4] इस प्रकार शास्त्र (शब्द प्रमाण), प्रत्यक्ष और अनुमान एव युक्ति से स्त्रियो के वास्तविकता का पता लगा कर उनके साथ शीघ्र ही वैसा व्यवहार भी करना चाहिये।[5] विरोध भावना रखने वाली स्त्रियो के कारण कितने राजाओं का भूतकाल में प्राणत्याग तक होता देखा गया है, अत उन्हे सर्वदा सतर्कता पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये।[6] प्रस्तुत सन्दर्भ मे पुराणकार ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। यथा केशपाश मे छिपे हुए शस्त्र से राजा शुभध्वज मारे गए। अपनी स्त्री की मेखला मणि से सौवीर नरेश का प्राणान्त हुआ।[7] अपनी ही स्त्री की प्रेरणा से राजा भद्रसेन भाई द्वारा मारे गए। इसीप्रकार कारूष देशाधिपति अपनी स्त्री की प्रेरणा से दर्प नाश करने वाले पुत्र द्वारा मारे गए।[8] काशी के दो राजा जो अपनी प्रजा के परम प्रिय एव वन्दनीय थे, विष देकर अन्त पुर की स्त्री द्वारा मारे गए।[9] इन्ही सब बातो को ध्यान में रखकर मनुष्य को सर्वदा सतर्कता से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये तथा उन्हें गुण एव दोषों के अनुरूप नियमन एवं सत्कार करता रहे।[10] उन्हे सर्वदा अन्त.पुर मे सुरक्षित एवं निरन्तर क्रियाशील बनाना चाहिये।[11] उत्तम स्वाभाव वाली को साम एवं दान से संतुष्ट रखना चाहिये। इसी प्रकार मध्यम

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 8 46
2. वही, 8.48
3. वही, 8.51
4. वही, 8.52
5. वही, 8.55
6. वही, 8.56
7. वही, 8.57
8. वही, 8.58
9. वही, 8.59
10. वही, 8 61
11. वही, 8.67

स्वभाव वाली स्त्री को दान एव यथावसर दण्ड के द्वारा वश मे रखना चाहिये। अधम स्वाभाव वाली स्त्री के लिए दण्ड एव भेद से काम लेना चाहिये।[1] ऐसी अधम स्वाभाव वाली स्त्री को पहले दण्ड एव भेद द्वारा दण्डित करके बच्चो की रक्षा आदि के लिए कुछ दिनो के बाद पुन साम, दाम का प्रयोग करना चाहिये।[2] उनमे जो अत्यन्त दुष्ट चरित्र एव पति का अकल्याण सोचने वाली हो उन स्त्रियो को सत्पुरूष को कालकूट विष के समान तुरन्त छोड देना चाहिये।[3] अपने मन के अनुकूल चलने वाली उच्च कुल मे उत्पन्न साध्वी, विनीत, सर्वदा पतिप्रिया स्त्रियो को उत्तरोत्तर अधिकाधिक सम्मानादि द्वारा सतुष्ट करते रहना चाहिये।[4]

उपर्युक्त नियमानुसार जो मनुष्य अपनी स्त्रियो के साथ व्यवहार रखता है वह इस ससार मे प्राप्त धर्मार्थकाम रूप त्रिवर्ग का यथेष्ट सर्वाशत उपभोग करता है।[5]

पत्नी के कर्त्तव्य पति के प्रति

आलोचित पुराण में आख्यात है कि पत्नी को सर्वदा पति के सुख के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिये क्योकि स्त्रियो के देवता उनके पति है।[6] स्त्रियो के लिए धर्मार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि के दो कारण बताए गए है। प्रथमत· उनका पति के अनुकूल व्यवहार, द्वितीय उनके पवित्र शील सदाचार।[7] पति की अनुकूलता ही उनके शाश्वत कल्याण की एकमात्र औषधि है।[8] इसलिए स्त्रियों को सभी उपायो द्वारा अपने में वह योग्यता लानी चाहिये।[9] पति को बाहर से आता हुआ जानकर भूमि और आँगन आदि को खूब स्वच्छ करके शय्या को सजाकर प्रतीक्षा करनी चाहिये और आने पर उसकी आज्ञा का तत्परता

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 8.68
2. वही, 8.69
3. वही, 8.70
4. वही, 8.71
5. वही, 8.72
6. वही, 13.34
7. वही, 13.36
8. वही, 13.37
9. वही, 13.40

पूर्वक पालन करना चाहिये।[1] दासी को हटाकर स्वय अपने हाथो से पति के चरणो को प्रक्षालित करना चाहिये और ताड की पंखी आदि लेकर उसके पसीने को दूर करना चाहिये।[2] आहार, स्नान एवं पान आदि मे पति को जिस वस्तु की ओर विशेष रूप से इच्छुक देखें उस वस्तु को प्रस्तुत करके पति की मनोगत इच्छाओ एवं संकेतो को जानने वाली पत्नी पति को निवेदित करे।[3] पति की चित्तवृत्ति के अनुसार सपत्नी तथा पति के बन्धु आदि के साथ सहानुभूति एव प्रेम का व्यवहार करना चाहिये, अपने बन्धु आदि के साथ उतना नही।[4] दैव योग से अपनी अयोग्यता एवं व्यवहार कुशलता के अभाव के कारण स्त्रियाँ शुद्धचित्त होने पर भी निन्दा की पात्र एव आपत्तिग्रस्त होती देखी जाती है।[5] स्मृति ग्रथो मे पत्नियों की पतिभक्ति एव नियमों का पालन आदि के विषय मे बहुत विस्तृत विवरण पाया जाता है। मनु का कथन है कि जो पत्नी विचार, शब्द एव कार्य से पति के प्रति सत्य रहती है, वह पति के साथ स्वर्गिक लोकों को प्राप्त करती है और साध्वी कही जाती है। जो पति के प्रति असत्य रहती है, वह निन्दा की पात्र होती है आगे जनम मे सियारिन के रूप मे उत्पन्न होती है और भयंकर रोगों से पीडित रहती है।[6] बृहस्पति ने पतिव्रता की परिभाषा इस प्रकार दी है "(वही स्त्री पतिव्रता है जो) पति के आर्त होने पर आर्त होती है, प्रसन्न होने पर प्रसन्न होती है, पति के विदेश गमन करने पर मलिन वेश धारण करती है और दुर्बल हो जाती है एवं पति के मरने पर मर जाती है।[7]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 13 41
2. वही, 13.42
3. वही, 13.43
4. वही, 13 44
5. वही, 13.56
6. मनुस्मृति, 9.29-30, 5 164- 165
7 दृष्टव्य, पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ० 320

पुराणो ने भी स्त्री धर्म के विषय मे विस्तार से लिखा है। भागवत पुराण के अनुसार जो नारी पति को हरि के समान मानती है वह हरिलोक में पति के साथ निवास करती है।[1] स्कन्द पुराण ने पतिव्रता स्त्री की विषय में विस्तार से लिखा है " पत्नी को पति का नाम नही लेना चाहिये, ऐसा करने से पति की आयु बढती है। उसे दूसरे पुरूषों का भी नाम नहीं लेना चाहिये, उसे सदैव हंसमुख रहना चाहिये।[2]

मनु[3], याक्ल्क्य[4], विष्णु धर्मसूत्र[5], व्यास स्मृति[6], वृद्ध हारीत[7], स्मृतिचन्द्रिका[8], मदन पारिजात[9] तथा अन्य निबन्धों ने पत्नियों के कर्त्तव्यों के विषय मे विस्तार के साथ विवेचन किया है।

भविष्य पुराण में दुर्भगा स्त्रियों का पति के प्रति कर्त्तव्य , स्त्रियो का सपत्नियो के प्रति कर्त्तव्य, पति के प्रवासी होने पर स्त्रियों के कर्त्तव्य, इन विषयों पर भी विस्तृत विवरण उपलब्ध है।

---

1 भागवत पुराण, 7 2 29

2 स्कन्द पुराण, ब्रह्मखण्ड, धर्मारण्य परिच्छेद अध्याय-7
विशेष दृष्टव्य, पी० वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-2, पृ० 319

3. मनुस्मृति, 5.150-156

4. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.83- 87

5. विष्णु ध०सू०, 25.2

6. व्यास स्मृति, 2.20-32

7. वृद्ध हारीत, 11.84

8. स्मृति चन्द्रिका, व्यवहार, पृ० 249

9. मदन पारिजात, पृ० 192- 195

नारी लक्षण. शील सम्पन्नता

भविष्य पुराण में आख्यात है कि उत्तम चरित्र रूप भूषण से स्त्री अपने समेत तीनो कुलो को भवसागर से उबार लेती है।[1] स्त्री धर्म के प्रसग मे उल्लिखित है कि जो स्त्रियाँ अपने पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल चलने वाली है तथा जिनका शील/सदाचार कभी च्युत नही हुआ है, उनके लिए रत्न एव सुवर्ण आदि के आभूषण भार है अर्थात् वे इन्ह सद्गुणो से ही सर्वदा आभूषित रहती है।[2] एक अन्य स्थल पर आख्यात है कि स्त्रियों की प्रथम योग्यता उनकी कुलीनता है। उसके पश्चात उनके धार्मिक आचरण एवं पुत्रवती होना उनकी योग्यता है।[3] वामन पुराण मे उल्लिखित है कि नारी का परम गुण उसकी शील सम्पन्नता है।[4] अन्यत्र इसी पुराण मे योग्य कन्या के लक्षणो पर प्रकाश डालते हुए निर्देश दिया है कि उत्तम कोटि का शील उसकी सबसे बडी निधि है।[5] मत्स्य पुराण मे एक स्थल पर निर्दिष्ट है कि शील सम्पन्न कन्या दस पुत्रो के समान है।[6]

विधवा

पौराणिक समाज व्यवस्था में विधवा की सामाजिक दशा दुर्भाग्यपूर्ण एवं उसका जीवन विफल माना गया है। विष्णु पुराण मे विधवा मारिषा के साथ मन्दभागिनी शब्द का प्रयोग किया गया है।[7] वामन पुराण मे विधवा को पराश्रयी कहा गया है।[8] इसी पुराण मे पति पुत्रहीना स्त्री से वार्तालाप करना वर्ज्य बताया गया है।[9] ब्रह्माण्ड पुराण में रेणुका की कथा के प्रसग मे वैधव्य दु ख को असह्य बताया गया है।[10]

---

1. भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, 13.63
2. वही, 13.64
3. वही, 8.28
4 वामन पु0, 67.4
5. वही, 37.63
6. मत्स्य पु0, 154.157
7 विष्णु पु0, 1.15.63
8 वामन पु0, 49-50
9. वही, 15.23

विधवा की दयनीय स्थिति वैदिक काल मे भी दृष्टव्य है- ऋग्वेद मे उल्लिखित है कि मरूतो की त्वरित गतियों मे पृथ्वी पतिहीन स्त्री की भाँति काँपने लगती है।[1] भविष्य पुराण के प्रणयन के समय भी विधवा की सामाजिक स्थिति अशुभ एव उपेक्षित मानी जा सकती है। उसमे आख्यात है कि पुत्रहीन विधवा का मरण हो जाए तो अच्छा है, अन्यथा उसे राजा की सेवा करनी चाहिये।[2] स्मृतियो के कथन का समर्थन करते हुए आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि पति के मर जाने पर स्त्रियों को सदाचरण का पालन करना चाहिये।[3]

स्त्री दशा

भारतीय समाज मे ऋग्वैदिक काल के उपरान्त नारी की सामाजिक स्थिति में जो गिरावट आनी शुरू हुई है उसकी पराकाष्ठा भविष्य पुराण मे दिखलाई पड़ती है। यूँ तो कई ऐसे सदर्भ नारी की शोचनीय स्थिति को आलोकित करते हैं किन्तु उपर्युक्त पुराण मे एक स्थल पर इस वर्णन का मिलना जिसमें नारी एवं शूद्र के हाथ से अग्नि जैसी पवित्र वस्तु को भी न लेने की बात इस बात को स्पष्ट करती है कि आलोचित पुराण के रचनाकाल मे नारी की सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी।[4] आलोचित पुराण में स्पष्टत आख्यात है कि स्त्रियों को शास्त्र (वेद) मे अधिकार नही है और न ही उनके ग्रन्थो को पढ़ने का अधिकार है।[5] इसके विपरीत वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी थी।[6] वेदों मे अनेक पण्डिता स्त्रियो का वर्णन पाया जाता है, जो स्वयं मंत्रदृष्टा थी। इनमे अपाला और घोषा का नाम मुख्य था। याज्ञवल्क्य की स्त्री गार्गी का उल्लेख मिलता है, जो बड़ी विदुषी थी। वेद तथा उपनिषद् काल में स्त्रियों को विद्याध्ययन का पूर्ण अधिकार था। परन्तु कालान्तर में उनसे वेद पढने का अधिकार छीन लिया गया।

---

1. ऋग्वेद, 1.87.3
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 186.49
3. वही, 9.7
4. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.15.4-5
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 9.6
6. वही, 9.7

आलोचित पुराण में खान पान

अन्न की महिमा

प्राचीन काल से ही अन्न की पवित्रता तथा शुद्धता पर विशेष बल प्रदान किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् मे लिखा है कि भोजन की शुद्धि पर ही मन की शुद्धि निर्भर है और जब मन शुद्ध रहता है तब स्मृति ठीक रहती है।[1] मनु के मतानुसार अन्न दोष के कारण ही ब्राह्मण की मृत्यु होती है।[2] पद्म पुराण के अनुसार मनुष्य रस से युक्त जिस प्रकार का भोजन करता है उसका रूप, शारीरिक सौन्दर्य भी उसी प्रकार का होता है।[3] श्री हर्ष ने इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार अन्न की अनुरूपता से शरीर के सौन्दर्य की सृष्टि होती है।[4]

आलोचित पुराण मनु के कथन का समर्थन करते हुए कहता है कि अन्न की सर्वदा पूजा करनी चाहिये, कुत्सित भावना का सर्वथा परित्याग कर उसका भक्षण करना चाहिये। अन्न को देखकर प्रसन्नता और संतोष प्रकट करे।[5] पूजित अन्न सर्वदा बल और ओज प्रदान करता है और अपूजित अन्न के भोजन से दोनो का विनाश होता है।[6] सदैव विधिपूर्वक आचमन करके अन्न का भक्षण करें, तथा भोजन करने के उपरान्त भी जल से अच्छी तरह आचमन कर सब इन्द्रियोंका स्पर्श करे।[7]

भोजन करने के नियम

भोजन के समय किस दिशा में बैठना चाहिये इसका विचार गृह्यसूत्रों तथा स्मृति ग्रन्थों में पाया जाता है।

---

1. छान्दोग्य उपनिषद्, 7.26.2
2. मनुस्मृति, 5.4
3. पद्मपुराण, भूमि खण्ड, 94.6
4. नैषधीय चरितम्, 3.17
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 3.37
6. वही, 3.38-39
7. वही, 3.36

अन्यथा उसका भी अध पतन हो जाता है।[1] स्कन्द पुराण तथा भविष्य पुराण के अनुसार यदि द्विज उपनिक्षेप धर्म से शुद्धान्न को पकाता है तो वह अन्न अभोज्य और उस विप्र का अध पतन हो जाता है।[2] पद्मपुराणानुसार चक्रोपजीवी, रजक, तस्कर, ध्वजी, गान्धर्व एवं लोहकार का अन्न, मरण शौच वाले का अन्न, कुम्हार, चित्रकार, वादधुषिक (सूदखोर), पतित, पौनभर्व, छत्रिक, अभिशप्त, सुवर्णकार, शैलुष, व्याघ्र, वन्ध्या, आतुर, चिकित्सक, पुश्चली, दण्डक, स्तेन, नास्तिक, देवतानिन्दक, सोमविक्रमी, श्वपाक, भार्याजित, घर मे उपपात रखने वाली, उत्सृष्ट, कदर्प, उच्छिष्ट भोजी, पापी, सधशस्त्रजीवी, भयभीत एव रुदनकर्त्ता का अन्न, अवक्रुष्ट एव परिक्षत का अन्न, ब्रह्मद्वेषी, पाप मे रुचि रखने वाले, मृतक एवं वृथापाक का अन्न, शव सम्बन्धी अन्न, आतुर नि सतति-स्त्री, कृतघ्न, कारुक, शस्त्र विक्रयी, शोण्ड, घाण्टिक, भिषक, विद्वत-प्रजनन, परिवेत्ता, पुनर्भू एवं दिधिषूपति का अन्न ग्रहण करना वर्ज्य बताया गया है।[3] इसी प्रकार नट, नर्तक, चाण्डाल, चर्मकार, गण, गणिका इन छ व्यक्तियो का अन्न ग्रहण नही करना चाहिये।[4]

आलोचित पुराण मे आख्यात है कि मृतप्राणी के अन्न एवं मास का जो ब्राह्मण भक्षण करता है उसे तीन दिन निर्जल और एक दिन सजल उपवास करना चाहिये।[5] वामन पुराण के अनुसार बान्धवो, साधुवो, एवं ब्राह्मणो से परित्यक्त व्यक्ति तथा कुण्ड के यहाँ खाने वाले व्यक्ति का अन्न ग्रहण करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।[6] रजक, निषाद, वैश्या, वैध तथा कर्दप का अन्न खाने पर मनुष्य त्रिरात्रोपवास से शुद्ध होता है।[7]

निषिद्ध भोज्य पदार्थ

भविष्य पुराण में निषिद्ध भोज्य पदार्थों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। यथा लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, भाँटा एवं मूली ये जाति दूषित होने के नाते त्याज्य है।[8] इसी प्रकार क्रिया

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 184.21 – 23
2. स्कन्द पुराण, 7.1.205.6, भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 184.20
3. पद्म पु0, आदिपर्व, 56.3–16, लिंग पु0, 85.139
4. पद्म पु0, आदिपर्व, 56.4
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 184.59
6. वामन पु0, 15.37
7. वही, 15.39

दूषित तथा पतितो द्वारा दूषित पदार्थ अभक्ष्य है और चिरकाल तक रखे हुए पदार्थ काल दूषित होने के कारण अभक्ष्य बताए है, क्योकि विशेष हानियाँ सम्भव हैं जैसे- दही द्वारा बने हुए भक्ष पदार्थ के विकृत होने से मधु भी त्याज्य है। मदिरा और लहसुन मिश्रित पान करने की वस्तु संसर्ग दूषित होने के कारण त्याज्य होती है उसी प्रकार कुत्तो के द्वारा उच्छिष्ट (दूषित) वस्तु भी। खण्डो में विभाजित जो शूद्रों से स्पृष्ट की गई है, वह वस्तु आश्रय दूषित होने के नाते त्याज्य है। वह भोज्य पदार्थ जिसे देखने से ही मन मे घृणा उत्पन्न होती है। इसे सहल्लेख पदार्थ कहा गया है। खीर अथवा क्षीर पाकादि उसी दिन का अच्छा होता है।

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि भूख से व्याकुल होकर प्राण निकलते समय यज्ञ निमित्तिक और श्राद्ध मे देव एव पितृ तर्पण के उपरान्त मास भोजन करना दूषित नही बताया है।[1] वामन पुराण मे उल्लिखित है कि भोज्य वस्तुओं में स्नेहाक्त अन्न, बासी होने पर भी ग्राह्य है। इसी प्रकार चावल, दधि एव घृत बासी होने पर भी भोक्ष्य माना गया है।[2]

भोज्य पदार्थ

मालपुआ

आलोचित पुराण मे आख्यात है कि गेंहू अथवा जौ के आटे में गुड़ और घी को मिलाकर मालपुआ बनाया जाता था।[3] इसे सूर्य को समर्पित करने से उत्तम गति प्राप्त होती है।[4] पद्म पुराण में उल्लिखित है कि ये अपूप (मालपुआ) चन्द्रमा के बिम्ब के समान गोल और सुन्दर तथा कर्पूर आदि

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 186.29
2. वामन पु0, 15.12
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 82.15-16
4. वही, 55.17-18

सुगन्धित द्रव्यों से वासित होने के कारण अत्यन्त मनोहर थे।[1] आटे मे पानी तथा घी मिलाकर मदी–मदी आँच में पकाए गए मालपुए को ऋग्वेद मे अपूप कहा गया है।[2] आलोचित पुराण मे आख्यात है कि भाद्रपद मास मे गुडमिश्रित पुए का दान करना चाहियो।[3]

खीर

आलोचित पुराण मे साठी के चावल की खीर को सप्तमी तिथि मे सूर्य को अर्पित करने का उल्लेख है। जौ की खीर का भी उल्लेख मिलता है[4] इसी पुराण मे शान्ति अनुष्ठान के प्रसग मे मधुमिश्रित खीर से हवन करने का उल्लेख मिलता है।[5] अन्यत्र इसके लिए पायस शब्द का भी उल्लेख मिलता है।[6] पद्म पुराण में आख्यात है कि दूध से बनाए जाने के कारण पायस जिसे लोकभाषा मे 'खीर' कहते है, अमृत के समान मधुर तथा चन्द्रबिम्ब के समान श्वेत होता था।[7] आप्टे ने पायस को दूध में पकाया गया चावल लिखा है।[8]

खिचड़ी

आलोचित पुराण मे खिचडी के लिए 'कृशर' शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है।[9] इसे सूर्य को प्रदान करने से सभी मनोकामनाएँ सफल होती है।[10]

ओदन

आलोचित पुराण मे ओदन को अनेक प्रकार से बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है। जब यह

---

1. पद्म पु0, पाताल खण्ड, 65.23
2. ऋग्वेद, 10.45.9
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 21.26
4. वही, 164.30–32
5. वही, 180.47
6. वही, 164.31
7. पद्म पु0, पाताल खण्ड, 65.27–28

दही के साथ पकाया जाता था तो इसे 'दध्योदनं' कहा जाता था।[1] गुड के साथ बनाए गए भात को 'गुडोदनं' कहा गया है।[2] इसे ईख के रस द्वारा भी बनाते थे।[3] माँस भात का भी उल्लेख मिलता है।[4] तथा 'मत्स्यमोदनम्' का भी उल्लेख मिलता है।[5] पाणिनी ने उबाल कर बनाए हुए शुद्ध चावल को 'उदकौदन' कहा है तथा माँस के साथ पकाए गए भात को माँसोदन की सज्ञा दी है।[6] पतञ्जलि के एक उल्लेख से ज्ञात होता है कि उस समय के लोग अपने मित्रो की दावत ओदन से करते थे।[7] खाने के सामने पत्तल पर लगे भात के ढेर को 'वधितक' कहते थे। विनोद के लिए ऊँचाई मे इसकी तुलना विन्ध्याचल पर्वत से की जाती थी।[8] पद्मपुराण मे उल्लिखित है कि यह कुमुद के समान सफेद औ सुगन्धित होता था, जिसे खाने मे बडा आनन्द आता था।[9]

यवाग

आलोचित पुराण से ज्ञात होता है कि यवाग का प्रयोग धार्मिक कार्यों मे होता था।[10] इसे आजकल की भाषा में लप्सी कहते है। पाणिनी के सूत्रों के उदाहरण में अनेक बार इसका उल्लेख किया गया है।[11] जातकों की कहानियो से ज्ञात होता है कि यागु अर्थात् यवाग उस समय के लोगो का साधारण भोजन था। पतञ्जलि के अनुसार यवाग द्रव भोजन था। उसको खाने मे दातो से चबाने की आवश्यकता नही पडती थी।[12] साल्व जनपद मे यवाग लोगों का विशेष भोजन था। सुश्रुत ने तीन प्रकार की यवाग का उल्लेख किया है।[13] भविष्य पुराण मे, इसे किस प्रकार बनाया जाता था, इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया। तैन्तिरीय संहिता मे यवाग का वर्णन पाया जाता है, जिसका अर्थ- जव का मांड है।[14]

---

1. भवि0 पु0, 56.28
2. वही, 56.27
3. वही, 57.6
4 वही, 57.7
5 वही, 57.3
6. अष्टाध्यायी, 6.3.7, 4.4.67
7. महाभाष्य, 1.1.72
8. डा0 वी0एस0अग्रवाल, पाणिनी कालीन भारतवर्ष,पृ0 121
9. पद्म पु0, पाताल खण्ड,65.25

शष्कुली

आलोचित पुराण मे 'तिलशष्कुली' का उल्लेख उपलब्ध होता है। आप्टे ने शष्कुली का अर्थ 'पकाई गई रोटी' इस प्रकार लिखा है।[1] कही-कहीं 'पूरिका' का भी उल्लेख है।[2]

मोदक

मोदक का उल्लेख भविष्य पुराण मे अनेकश उपलब्ध होता है।[3] जिसे देवो को समर्पित किया जाता था।

गुड

अलोचित पुराण से ज्ञात होता है कि गुड से विविध प्रकार के पकवान बनाए जाते थे।[4] एक स्थल पर उल्लिखित है कि कार्तिक मास में प्रतिपदा तिथि को दीपको के साथ-साथ गुड मिश्रित अन्न एव नूतन वस्त्रो द्वारा जो ब्राह्मणो को सतुष्ट करता है वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है।[5] माघ मास की तृतिया को गुड एवं नमक का दान स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए श्रेयस्कर माना गया है।[6] एक स्थल पर उल्लिखित हे कि गुडादि का क्रिय करने से ब्राह्मण की 'सातपन' नामक व्रत से शुद्धि होती है।[7]

दही

भोज्य पदार्थों मे दही का उल्लेख अनेक बार प्राप्त होता है आलोचित पुराण में आख्यात है

---

1. बैक्ड केक। ए काइण्ड ऑफ केक।
2. भवि0 पुराण, ब्राह्मपर्व, 23.26
3. वही, 21.28, 23.26, 29.5-7, 80.19
4. वही, 17.94
5. वही, 18.19

कि यद्यपि दही दूध का विकार है, किन्तु इसकी गुणवत्ता दूध की भाँति ही है।[1] एक स्थल पर आख्यात है कि जो मनुष्य एक बार भी दही द्वारा सूर्य को स्नान कराता है वह तीनो लोकों मे सम्मानित होता है।[2]

घृत

भविष्य पुराण में भोज्य पदार्थों मे घृत का उल्लेख किया गया है। एक स्थल पर घी द्वारा सूर्य को स्नान कराना परमोत्तम बताया है।[3] लोक परलोक के सभी पाप घृत स्नान से नष्ट हो जाते है।[4]

फल

आलोचित पुराण मे ब्राह्मणों को फलो का दान करने का उल्लेख प्राप्त होता है। मधुर फलों मे खजूर, बिजौरा (मातुलिङ्ग), नारियल आदि की गणना की गई है।[5]

अन्न

भविष्य पुराण में अनेक प्रकार के अन्नों का उल्लेख प्राप्त होता है यथा चावल, व्रीहीधान्य, कakुना, कोदो, प्रियंगु, शाली, पानीय (सिंघाड़ा), मूँग, उड़द, तिल, जवा, कुलमाथ(कुलथी)। पाणिनी के अनुसार कुलत्थ (कुलथी) एक प्रकार का सस्कारक द्रव्य था। चरक ने इसे शमीधान्य कहा है।[6] इसके अतिरिक्त पुन्नाक, यावक, चना, लावा, धान, कलाथ, अलसी, सरसो, तिल आदि का उल्लेख मिलता है।[7]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 114.11
2. वही, 163.17
3. वही, 163.27
4. वही, 163.28, 114.3-7
5. वही, 20.26
6. चरक संहिता, सूत्र स्थान 27.26
7. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 12.1-3

वस्त्रालङ्कार

वैदिक भाषा में वस्त्र और वसन शब्दो का प्रचार था। पाणिनी ने वेशभूषा के अर्थ मे चार नवीन शब्दो का प्रयोग किया है[1] चीर, चेल, चीवर और आच्छादन। आलोचित पुराण मे वस्त्र[2] वास[3] तथा वासन शब्दो का उल्लेख मिलता है।[4] पद्म पुराण मे चेल शब्द का व्यवहार पाया जाता है।[5]

पौराणिक वाङ्मय मे आवरण, अलंकरण एव अनुष्ठान के परिप्रेक्ष्य मे मानवीय एव दैवी वस्त्राभरणो को विस्तारपूर्वक विस्तृत किया गया है।[6] विष्णु पुराण मे गृहस्थ जीवन मे स्वहत वस्त्रों को जो फटे न हों पहनने का आदेश मिलता है।[7] वायु पुराण के अनुसार धार्मिक कृत्यों एव अवसरो पर वस्त्रावृत होना सांस्कृतिक आवश्यकता मानी गई है।[8] इस प्रकार वस्त्राभरण सामाजिक आवश्यकता थी।[9] विष्णु स्मृति मे मनुष्यों की/ के अवस्था अनुरूप वस्त्र धारण को अपेक्षित माना गया है।[10] आलोचित पुराण मे परिस्थितियो के अनुरूप वस्त्र धारण करने के लिए राजकन्या सुकन्या का उद्धरण प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसने च्यवन ऋषि से विवाह होने पर राजोचित वेशभूषा का परित्याग कर वल्कल एव मृगचर्म धारण किया।[11]

वस्त्रों के विविध प्रकार

आलोचित पुराण से ज्ञात होता हे कि शीत ऋतु के लिए विशिष्ट प्रकार के वस्त्र निर्मित किए जाते थे। संभवत· ऊनी वस्त्रों की ओर संकेत किया गया है। प्रस्तुत संदर्भ मे आख्यात हे कि शीत

---

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृ0 135
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 164.66
3. वही, 115.34
4. वही, 164.64
5. पद्मपुराण, भूमिखण्ड, 86.24
6. सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एव समाज, पृ0 288
7. विष्णु पुराण, 3.12.2
8. वायु पुराण, 80.39, दृष्टव्य मत्स्य पु0, 59.13
9. शतपथ ब्राह्मण, 13 14.1.15
10. विष्णु स्मृति, 71.5
11. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 19.18

निवारण के लिए मनुष्यो को सूर्य के मंदिर मे वस्त्र वितरण करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है।[1] रेशमी वस्त्र के लिए कौशेय शब्द का उल्लेख मिलता है जिन्हे कथावाचक ब्राह्मणों को दान करना चाहिये।[2] पाणिनी ने भी रेशमी वस्त्रो के लिए कौशेय शब्द का प्रयोग किया है।[3] कपास से सूती वस्त्रों का निर्माण होता था, जिन्हे कार्पासक कहा गया है।[4] वामन पुराण से ज्ञात होता है कि कपास से निर्मित वस्त्र समाज मे विशेष प्रचलित थे तथा उन्हे श्रेष्ठतम माना जाता था।[5] आलोचित पुराण मे दुकूलपट्ट शब्द का उल्लेख आया है।[6] दुकूल शब्द बग देश में पैदा हुई रूई के लिए व्यवहार मे आया है।[7] यह कपडा बगाल मे बनता था तथा यह सफेद और मुलायम होता था। पौण्ड्र देश मे बने हुए दुकूल नीले और चिकने होते थे।[8] आलोचित पुराण में दुकूलपट्ट शब्द सम्भवत दुपट्टे के लिए प्रयुक्त हुआ है। चित्र विचित्र एव रगीन वस्त्रो के निर्माण का भी सकेत प्राप्त होता है।[9]

अलंकार

विविध प्रकार के श्रंगार प्रसाधनो एव अलकरणो से शरीर को सुशोभित करना यह मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा होती है। जिस प्रकार अलकार (रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि) काव्य की शोभा बढाते हैं उसी प्रकार अलंकार आभूषण मानव की सौन्दर्य वृद्धि में सहायता पहुँचाते हैं।

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 93 73
2. वही, 59.17
3. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृ0 135
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 115 34
5. वामन पु0, 12 52
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 115.34, 164.66
7. आचारांग सूत्र 1.7.5.1
8. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ0 54 – 55
9. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 164.64–66

अलंकरण

आलोचित पुराण में करधनी, नूपुर, मेखला[1] हार, केयूर[2] आदि स्त्रियों के आभूषणों का उल्लेख प्राप्त होता है। डा0 डी0 आर0 पाटिल ने केयूर के लिए 'आर्मलेट' शब्द का प्रयोग किया है।[3] कालीदास के ग्रन्थों से पता चलताहे कि केयूर का उपयोग स्त्री तथा पुरूषों द्वारा समानरूप से किया जाता था।[4] पद्म पुराण के भूमि खण्ड में प्रज्ञा के द्वारा केयूर धारण करने का उल्लेख हुआ है।[5] आलोचित पुराण में करधनी के लिए काञ्ची[6] तथा रशना[7] शब्दों का प्रयोग किया गया हे। इसके अतिरिक्त सुवर्ण निर्मित वलय, कण्ठाहार, कटिसूत्र, कुण्डल, मुकुट आदि अलंकरणों का उल्लेख किया गया है।[8], जिनका प्रयोग पुरूष भी कर सकते थे।

मनोरंजन के साधन

आलोचित पुराण से ज्ञात होता है कि संगीत, नर्तन, वादन विभिन्न प्रकार के समारोहो तथा जलक्रीडा आदि को मनोरंजन का साधन बनाया गया तथा इनका संबंध धार्मिक कृत्यों से भी जोड़ा गया।

संगीत

आलोचित पुराण से ज्ञात होता हे कि अप्सराएँ नृत्य का कार्य करती थीं तथा गान्धर्व गायन में निपुण होते थे।[9] मनुष्यों के अतिरिक्त देवता भी संगीत में रस लेते थे। आलोचित पुराण से ज्ञात होता है कि हाहा, हूहू, तम्बरू और नारद के सभी षड्ज, मध्यम और गान्धार इन तीनों ग्रामों के ये

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 19.10
2. वही, 73.20
3. डी0 आर0 पाटिल, कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम दि वायु पुराण, पृ0 208
4. रघुवंश, 6.14.53, 16.60, 6.68, 7.50, 16.56
5. पद्म पुराण, भूमि खण्ड, 12.92- 93
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 19.10
7. वही, 73.20
8. वही, 16.29

निष्ठात विद्वान थे।[1] स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं "स्वाराणां समूहो ग्राम.।" संगीतज्ञों के अनुसार नियोजित श्रुति अन्तरों के सातों स्वरों के समूह को ग्राम कहा जाता है। ये ग्राम तीन प्रकार के होते हैं- षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम एवं गान्धार ग्राम। अतएव भविष्य पुराण में ग्रामत्रयी का उल्लेख किया गया है। आलोचित पुराण में उल्लेख प्राप्त होता है कि हाहा, हूहू, तम्बरू एवं नारद द्वारा मूर्च्छना, धैवत पञ्चम, भाँति-भाँति के अनुभव पूर्वक मंद्र तथा अर्धमन्द्र इन स्वरों एवं तीन प्रकार के साधनों तथा वाद्य तालो द्वारा सूर्य के लिए गायन होने लगा।[2] स्वरों के आरोह अवरोह को मूर्च्छना कहा जाता है- "स्वाराणां आरोहावरोहक्रम मूर्च्छना।"

नृत्य में गीत तथा वाद्य के साथ हाव-भाव का भी प्रदर्शन किया जाता था जिससे दर्शकों के ऊपर प्रभाव पड़ता था।[3] भविष्य पुराण के अनुसार जब नारद तम्बरू आदि ने वाद्य तालो सहित सूर्य के लिए ऊँचे स्वर से गायन आरम्भ किया तब विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या एवं अप्सराओं में उत्तम रम्भा, इन अप्सराओ ने अपने हाव-भाव तथा विलास प्रकट करते हुए भाँति-भाँति के अभिनय दिखाए।[4]

वाद्य यन्त्र

भविष्य पुराण में अनेक प्रकार के वाद्य यन्त्रों का उल्लेख पाया जाता है। तुरही शंख,[5] वीणा, वंशी, मृदंग, पणव, पुष्कर, पटह आदि। इनमें से वीणा और वंशी कोमल तान वाले तथा पणव, पुष्कर, मृदंग, पटह आदि गम्भीर स्वर वाले वाद्य कहे गए हैं।[6] इसके अतिरिक्त उल्लिखित है कि सूर्य के लिए भेरी, मृदंग, पटह, झर्झरी (झांझ), मर्दल (मृदंग की भाँति एक वाद्य) आदि काँसे के वाद्य अर्पित करना पुण्यफलदायी होता है।[7] अन्यत्र उल्लिखित है कि वाद्य समेत उत्तम संगीत कराने वाला पुरूष भास्कर लोक को प्राप्त होता है।[8]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 121.17-18
2. वही, 121.17-20
3. पद्म पु०, सृष्टि खण्ड, 22.25
4. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 121.17-21
5. वही, 18.16
6. वही, 121.23
7. वही, 164.60
8. वही, 164.61

विविध प्रकार के समारोहों का आयोजन

तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार के समारोहो का आयोजन किया जाता था। यद्यपि इनका रूप धार्मिक था परन्तु प्रधानतया इनका उद्देश्य मनोरजन ही था। एक स्थल पर आख्यात है कि पूर्णिमा तिथि को शख, भेरी आदि मागलिक शब्दों के बीच मे सुमधुर सगीत एव महान समारोहों का आयोजन करना चाहिये।[1] जितने दिन वह गायन नृत्य तथा वाद्य का समारोह करता है, उतने ही सहस्र वह ब्रह्म लोक मे पूजित होता है।[2] सूर्य के मन्दिर में खेल तमाशे के आयोजन का भी उल्लेख मिलता है।[3] आलोचित पुराण में सूर्य रथ महोत्सव तथा ब्रह्मरथ महोत्सव का विशद वर्णन प्राप्त होता है। फाह्यान ने पाटलिपुत्र मे होने वाली रथयात्रा का सजीव वर्णन किया है।[4]

जलक्रीड़ा

आलोचित पुराण में कृष्ण द्वारा अन्त पुर की स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] जल क्रीड़ा का संदर्भ अन्य पुराणों में भी आख्यात है। विष्णु पुराण में सहस्रार्जुन कीर्तवीर्य द्वारा अतिशय मद्यपान के उपरान्त नर्मदा में जलक्रीड़ा का सुन्दर चित्रण किया गया है।[6] मत्स्य पुराण में हिमालय पर्वत स्थलों के एक सरोवर में देवागनाओं की जलक्रीडा एवं तद्जन्य विविध मनोरंजनो का वर्णन मिलता है।[7] मानसोल्लास में उल्लिखित है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के प्रचण्ड ताप होने पर राजा जलक्रीड़ा करता था।[8] जलक्रीड़ा प्रायः नदी पुरकारिणी तथा ग्रह क्षेत्र में सरोवरों में की जाती थी।[9] वामन पुराण में उल्लिखित है कि वाराणसी नगरी में गृह परिक्षेत्र में निर्मित बावलियो में जलक्रीड़ा के लिए एकत्र हुई स्त्रियों में परस्पर आमोद-प्रमोद होता था।[10]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 17.43- 44
2. वही, 17.47
3. वही, 93.66
4. फाह्यान का यात्रा विवरण, पृ० 59- 60
5. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 73.17
6. विष्णु पु०, 4.11.19
7. मत्स्य पु०, 120.12- 21
8. मानसोल्लास, 5.5.121-144
9. वही, 5.5.245
10. वामन पु०, 3.35

पञ्चम अध्याय

राजनैतिक जीवन

भविष्य पुराण में उल्लिखित राजवंशीय वृतान्त

प्राचीन भारतीय इतिहास की रूपरेखा के निर्धारण में पुराणों में उपलब्ध वंशानुचरित आख्यान का विशेष योगदान रहा है। पुराणो मे अनुश्रुति के आधार पर राजवंशों का वर्णन किया गया है, जिनकी पुष्टि पुरातात्त्विक साक्ष्यों के द्वारा भी होती जा रही है, अत उनकी ऐतिहासिक महत्ता निरापद है। पुराणों में राजवंशों की उत्पत्ति मनु द्वारा परिकल्पित है। यद्यपि पुराणों मे मन्वन्तरों की परिकल्पना में चौदह मनु आख्यात हैं, किन्तु वंश के प्रतिष्ठापक की दृष्टि से केवल दो मनु स्वायम्भुव और वैवस्वत ही विशेष ग्राह्य हैं। वैवस्वत मनु के उपरान्त क्रमश स्वारोचिष[1], उत्तम[2], तामस[3], रैवत[4], तथा चाक्षुष[5] क्रमश द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम तथा छठें मनु स्वीकार किए गए हैं। सातवें क्रम मे वैवस्वत मनु आख्यात हैं, जो पौराणिक वंशानुक्रम की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।[6] वैवस्वत मनु के वंशजों में क्रमश. अति प्राचीन काल में तीन प्रमुख राजवंशों की परम्परा का प्रचलन किया था–

1. अयोध्या मे स्थापित सूर्यवंश (इक्ष्वाकु वंश), 2.प्रतिष्ठानपुर मे स्थापित सोम (चन्द्र) वंश,
3. पूर्वी–दक्षिणी प्रान्तों में स्थापित सौद्युम्न वंश।

इक्ष्वाकु वंश

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि वैवस्वत मनु द्वारा सरयू नदी के तट पर घोर तप के उपरान्त इक्ष्वाकु नामक पुत्र प्राप्त हुआ।[7] सूर्यवंशी क्षत्रिय शासकों की पौराणिक परम्परा का प्रारम्भ इक्ष्वाकु नरेश से आख्यात है। उनकी राजधानी अयोध्या थी। इक्ष्वाकु वंशीय शासकों की बृहद् सूची

---

1. भागवत पु0, 8.1.19
2. वही, 8 1.23
3. वही, 8.1.27
4. वही, 8.5.2
5. वही, 8.7.5
6. वैवस्वत मनु विवस्वान के पुत्र थे। इन्हें श्राद्धदेव भी कहा गया है। इनके दस पुत्रों– इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करुष, पृषध्र, तथा वसुमान् ने क्रमशः पृथ्वी पर शासन किया। वैवस्वत सातवें मनु थे। द्रष्टव्य, भाग0 पु0, 8.13.10–3, वायु0 पु0, 62वाँ अध्याय तथा मनुस्मृति, 1.61–63
7. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.1.3–4

भविष्य पुराण के अतिरिक्त वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश, पद्म भागवत, ब्रह्म, अग्नि, विष्णु धर्मोत्तर आदि पुराणों में उपलब्ध है।[1]

भविष्य पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु के पश्चात् उनके पुत्र विकुक्षि ने राज्यभार सभाला।[2] विकुक्षि के पश्चात् रिपुञ्जय शासक हुए। किन्तु विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड तथा भागवत पुराणो में उनका नाम परञ्जय मिलता है।[3] परञ्जय का ही एक अन्य नाम पुराणो में काकुत्स्थ मिलता है, किन्तु भविष्य पुराण में काकुत्स्थ परञ्जय का पुत्र आख्यात है।[4] इसी काकुत्स्थ नरेश के वंशज कालान्तर में काकुत्स्थ वंश के नाम से प्रसिद्ध हुए। इक्ष्वाकु वंशीय नरेशों की सूची महाभारत के अतिरिक्त कम से कम चौदह पुराणों मे उपलब्ध है। इस राजवंश की पौराणिक सूचियों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, भागवत, गरूड, देवी भागवत और विष्णु धर्मोत्तर पुराणों की सूची उक्त राजवंशोल्लेख से साम्य रखती है।
2. ब्रह्म, हरिवंश और शिव पुराणो की सूचियों में एतद् साम्यता देखी जा सकती है।
3. कूर्म एवं लिङ्ग पुराणोक्त सूची में इन नामों में समानता है।
4. मत्स्य, पद्म और अग्नि पुराणोक्त उपर्युक्त राजवंश–सूची में भी लगभग समान नामोल्लेख किया गया है।

महाभारत में केवल इस राजवंश के क्रमिक बारह पीढ़ियों के नृपतियों तक अर्थात् कुवलाश्व तक की सूची प्रस्तुत की गई है। इनमें सर्वाधिक प्राचीन सूची वायु पुराण की स्वीकार की जाती है, जिसको अनेक परवर्ती अथवा समकालीन पुराण–संकलन कर्त्ताओं ने स्वीकार कर लिया है।

---

1. विशेष द्रष्टव्य, राय कृष्णदास का लेख 'पुराणों की इक्ष्वाकु वंशावली', 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका',काशी, वर्ष 56, सं0 2008, पृ0 234–235
2. भवि0 पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 1.1.6
3. विष्णु पु0, 4.2.8.12, वायु पु0, 88..1–25, ब्रह्माण्ड पु0, 3.63.25, भागवत पु0, 9.6.12
4. भवि0 पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 1.1.7

वासुदेव शरण अग्रवाल उपर्युक्त चार कोटि की पौराणिक सूचियों को मुख्यतया दो वर्गों मे निम्नवत् रखते हैं- प्रथम नाम-क्रम, वायु एवं ब्रह्म पुराणो में समान हैं तथा द्वितीय नाम-क्रम, मत्स्य एवं कूर्म पुराणों मं पर्याप्त साम्य रखता है।[1]

उपर्युक्त पुराणोक्त इक्ष्वाकुवंशीय नरेशो की नाम-सूची की तुलना भवि० पुराण में प्रदन्त सूची के साथ निम्नवत् प्रस्तुत की जा सकती है -

मनु वैवस्वत वंश

	भवि० पु०	वायु पु०	मत्स्य पु०	विष्णु पु०	भागवत पु०
1.	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु	इक्ष्वाकु
2	विकुक्षि	विकुक्षि(शशाद)	विकुक्षि	विकुक्षि(शशाद)	विकुक्षि(शशाद)
3.	रिपुञ्जय	ककुत्स्थ	ककुत्स्थ	पुरञ्जय(कुकुद)	पुरञ्जय(ककुत्स्थ)
4.	ककुत्स्थ	अनेना	पृथु	अनेनस्	अनेना
5.	अनेनांस	पृथु	विश्वग	पृथु	पृथु
6.	पृथु	वृषदश्व	इन्दु	विष्टराश्व	विश्वरन्धि
7.	विश्वगश्व	अन्ध्र	युवनाश्व	चन्द्रयुवनाश्व	चन्द्र
8.	आर्द्र	यवनाश्व	श्रावस्त	शावस्त	युवनाश्व
9.	भद्राश्व	श्रौव	वत्सक	बृहदश्व	शावस्त
10.	युवनाश्व	श्रावस्तक	कुवलाश्व	कुवलयाश्व	बृहदश्व
11.	श्रवस्थ	बृहदश्व	दृढाश्व	दृढाश्व	दृढाश्व
12.	बृहदश्व	कुवलाश्व (धुन्धकार)	प्रेमाद	हर्यश्व	हर्यश्व

1. द्रष्टव्य, वासुदेव शरण अग्रवाल, मत्स्य पुराण, ए स्टडी, पृ0 91

13	कुवलयाश्व	दृढाश्व	हर्यश्व	निकुम्भ	निकुम्भ
14	दृढाश्व	निकुम्भ	संहताश्व	अमिताश्व	वर्हणाश्व
15.	निकुम्भक	संहताश्व	ऋ[illegible]श्व	कृशाश्व	कुशाश्व
16.	स्कटाश्व	कृशाश्व	कृशाश्व	युवनाश्व	सेनजित
17.	प्रसेनजित	प्रसेनजित	मान्धाता	मान्धाता	युवनाश्व

वायु एव मत्स्य पुराण मे महाराज सहताश्व के उपरान्त इक्ष्वाकु वशीय नृपतियों के नाम क्रम में विशेष अन्तर मिलने लगता है। भविष्य पुराण मे प्रसेनजित के वशजों के नाम निम्न प्रकार से प्रदत्त है –

17. प्रसेनजित
18. रवणाश्व
19. मान्धाता
20. पुरुकुत्स
21. त्रिंशदश्वा
22. अनारण्य
23. पृषदश्व
24. हर्यश्व
25. वसुमान्
26. त्रिधन्वा
27. त्रपारण्य
28. त्रिशंकु
29. हरिश्चन्द्र
30. रोहित
31. हारीत
32. चंचुभूप
33 विजय
34. रुरुक

भविष्य पुराण के अनुसार उपरोक्त सभी राजा विष्णु भक्त हुए।[1]

35. सगर
36. असमञ्जस
37. अंशुमान
38. दिलीप
39. भगीरथ
40. श्रुतसेन
41. नाभाग
42. अम्बरीश

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 1.1.27

उपर्युक्त सगर से लेकर श्रुतसेन तक सभी राजा शैव हुए। नाभाग वैष्णव बताए जाते हैं।[1]

43.	सिन्धुदीप	47.	कल्मषपाद
44.	अयुताश्व	48.	सौदास (पत्नी मदयंती)
45.	ऋतुपर्ण	49.	अश्मक
46.	सर्वकाम	50.	हरिवर्मा

कल्माषपाद के उपरान्त क्रमश सिंहासनासीन होने वाले नृपतियों के नाम-क्रम मे वायु-कूर्म वर्ग के पुराणो, ब्रह्म-मत्स्य वर्ग का अनुकरण करने वाले पुराणों की सूची एव भविष्य पुराण में दी गई सूची में विशेष अन्तर है, जो निम्नवत् है. -

ब्रह्म-मत्स्य वर्गीय पुराण	**वायु-कूर्म वर्गीय पुराण**
कल्माषपाद	अश्मक
।	।
अनरण्य	मूलक
।	।
निघ्न	शतरथ(दशरथ)
।	।
अग्निमित्र	इडविड
।	।
रघु	वृद्धशर्मा
।	।
दुलिदुह	विश्वसह(विश्वमहत्)
।	
द्वितीय खट्वाङ्ग.	
।	
रघु(दीर्घबाहु)	
।	
अज(पत्नी इन्दुमती वैदर्भी)	
।	
दशरथ(पत्नी कौशल्या)	
राम(पत्नी सीता)	

जब कि भविष्य पुराण में राजा सौदास को कल्माषपाद का उत्तराधिकारी कहा है। उसके बाद अश्मक और हरिवर्मा हुए। इसके अनन्तर जो राजा हुए उनमें और पूर्वोक्त ब्रह्म–मत्स्य पुराण–सूची मे पर्याप्त अन्तर है जो निम्नलिखित है· –

51.	दशरथ	61.कुश	73.दलपाल
52.	दिल्लीवय ब्रह्म पुराण में दुलियुह नाम आता है)	62 अतिथि 63.निबंध 64.शक्ति	74.छद्मकारी 75 उक्थ 76.वज्रनाभि
53.	खट्वाङ्ग.	65.नल	77.शंखनाभि
54.	दीर्घबाहु	66.नाभ	78.व्युत्थिताभि
55.	सुदर्शन	67.पुण्डरीक	79.विश्वपाल
56.	दिलीप	68.क्षेमधन्वा	80.स्वर्णनाभि
57.	रघु	69.द्वारक	81.पुष्पसेन
58.	अज	70.अहीनज	82.ध्रुवसंधि
59.	दशरथ	71.कुरू	83.उपवर्मा
60.	राम	72.पारियात्र	84.शीघ्रगंता

85. मरूपाल

86. प्रस्रुश्रुत

87 सुसधि

88. मामर्ब

89. महाश्व

90. बृहद्वाल

91. बृहदैशान

92. उरूक्षेप

93 वत्सपाल

94. वत्सव्यूह

95. प्रतिव्योमा

96. देवकर

97. सहदेव

98. बृहदश्व

99 भानुरत्न

100. सुप्रतीक

101. मरूदेव

102. सुनक्षत्र

103. केशीनर

104. अन्तरिक्ष

105. सुवर्णांग

106. अमित्रजित्

. 107. बृहद्वार

108. धर्मराज

109. कृतञ्जय

110 रणञ्जय

111. सञ्जय

112. शाक्यवर्धन

113. क्रोधदान

114. अतुलविक्रम

115 प्रसेनजित

116. शूद्रक

117. सुरथ

मत्स्य पुराण के अनुसार बृहद्वल महाभारत युद्ध में अभिमन्यु द्वारा मार डाला गया। भागवत पुराण के अनुसार बृहद्वल तक्षक का पुत्र तथा बृहद्रण का पिता था।[1] विष्णु पराण में उसके पुत्र का नाम बृहत्क्षण मिलता है।[2] भागवत एवं हरिवंश मे वर्णित इक्ष्वाकुवंशीय नृपति परम्परा बृहद्वल की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है, किन्तु भविष्य में उसके बाद के बहुत आगे तक के नृपतियों का नामोल्लेख किया है।

इक्ष्वाकु वंशीय आर्य नरेशों ने उत्तर में मेरू पर्वत की उपत्यका से लेकर सम्पूर्ण उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ में कम से कम दण्डकारण्य (मध्यप्रदेश) तक अपना राज्य विस्तृत किया।[3]

---

1 भागवत पु0, 9.12.8

2. विष्णु पु0, 4.4.48, 4.4.112, 4.22.1, वायु पु0, 88.212

3. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य, राजबली पाण्डेय, पुराण- विषयानुक्रमणी, प्रथम भाग (राजनीतिक), पृ0 16 तथा 17

ऐल अथवा चन्द्रवंश

मनु की पुत्री इला का विवाह सोम-पुत्र बुध के साथ हुआ था। उनसे उत्पन्न पुत्र पुरूरवा ने ऐल अथवा चन्द्रवंश की स्थापा की थी।[1] भविष्य पुराण मे उल्लिखित है कि रोहिणी पति चन्द्रमा (सोम) ने प्रयाग नगर को अपनी राजधानी बनाया।[2] जब कि पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठान (आधुनिक प्रयाग के समीपस्थ झूँसी) जहाँ प्राचीन काल मे चन्द्रवंश की प्रधान शाखा शासन करती थी, बनाई गई।पुरूरवा के पुत्र आयु, आयु के नहुष हुए तथा नहुष के ययाति हुए। ययाति के पाँच पुत्र हुए, जिनमे दो आर्य तथा तीन म्लेच्छ हुए।[3] ययाति ने अपने पाँच पुत्रों में अलग-अलग शासन क्षेत्र का विभाजन कर दिया।[4] इस प्रकार यदु का राज्य चम्बल वेतवा तथा केन नदी की घाटी में द्रुह्य का राज्य यमुना के पश्चिम तथा चम्बल के उत्तर में, अनु का राज्य गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी भूभाग में तथा तुर्वसु का राज्य वर्तमान रींवा - सहडोल के चतुर्दिक विस्तृत हुआ। पुरू प्रतिष्ठान में ही उनका उत्तराधिकारी हुआ।

यदु के पुत्रों में दो वंशकर्ता हुए, जिनके दो वंश चले-

1. क्रोष्टु शाखा (यादव) 2.सहस्राजित- हैहय शाखा।

भविष्य पुराण में क्रोष्टु शाखा (यादव) तथा उसके वंशजों का ही विवरण प्राप्त होता है।[5]

---

1. भवि० पु०, प्रतिसर्ग पर्व, 1.2.43-45
2. वही, 1.2.45-48
3. वही, 1.2.48-49
4. वायु पु०, 93.87-90
5. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 1.2.50

पौरव वंश

ययाति के कनिष्ठ पुत्र पुरू हुए, जिनके पुत्र मायाविद्य ने प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर मे अपनी राजधानी स्थापित की।[1] भविष्य पुराण में पुरू के वशजो का उल्लेख प्राप्त होता है। इस राजवश के नृपतियों मे दुष्यन्त[2] तथा भरत[3] से सम्बन्धित विविध आख्यान पुराणेतर साहित्यिक ग्रन्थो मे भी विवृत है।

पौराणिक चक्रवर्ती नरेशो में दौष्यन्ति भरत की उपलब्धियों की सर्वाधिक गाथाएँ लोक प्रचलित हैं। वैदिक एव पौराणिक वाङ्मय में उन्हें महान प्रजापालक, लगभग 133 अश्वमेध यज्ञों का कर्त्ता तथा भारत देश का निर्माता, दिग्विजयी सम्राट आदि घोषित किया गया है।[4] इसी वंश मे आगे चलकर प्रख्यात नरेश हस्ती उद्‌भूत हुए, जिन्होंने हस्तिनापुर नगर बसाया था।[5] विष्णु, वायु तथा मत्स्य पुराणों मे पौरव राजा सवरण एवं उनकी रानी तपती से कुरू को उत्पन्न बताया गया है।[6] जब कि भविष्य पुराण में कुरू सुशम्यर्ण के पुत्र उल्लिखित हैं।[7] सवरण का उल्लेख तो कुरू से बहुत पहले किया गया है। राजा कुरू ने ही कुरुक्षेत्र का निर्माण कराया,[8] जिनके वशज कौरव कहलाए। कुरू से लेकर जनमेजय तक की वंशावली भविष्य पुराण में निम्न प्रकार से उल्लिखित है· –

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.2
2. वही, 1.3.33, विष्णु पु0, 4.19.2–3, वायु पु0, 99.133.136, मत्स्य पु0, 49.11.12, भागवत पु0, 10 57.26
3. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.3.33, विष्णु पु0, 4.19.2–8, वायु पु0, 99.134 –158, मत्स्य पु0, 49.11.33
4. ऐतरेय ब्रा0, 8.33, शतपथ ब्रा0, 13.5.4.12, भाग0 पु0, 9.20.25.29
5. भवि0 पु0 प्रतिसर्गपर्व, 1.3.45–46, वायु पु0, 99.165, विष्णु पु0, 4.19.10
6. वायु पु0, 99.215, मत्स्य पु0, 90.20
7. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.3.48–49
8. वही, 1.3.67

कुरू से जनमेजय तक की वंशावली[1]

1.	कुरू	11.	भीमसेन
2.	जह्नु	12.	दिलीप
3.	सुरथ	13.	प्रतीप
4	विदूरथ	14.	शंतनु
5.	सार्वभौम	15.	विचित्रवीर्य
6.	जपसेन	16.	पाण्डु
7.	अर्णव	17	युधिष्ठिर
8.	अयुतायु	18.	अभिमन्यु
9	अक्रोधन	19.	परीक्षित
10.	ऋक्ष	20.	जनमेजय

कुरू से लेकर जनमेजय तक की उपरोक्त वंशावली में ही आगे चलकर प्रद्योत नामक शासक का उल्लेख प्राप्त होता हे, जो हस्तिनगर का राजा था।[2] हस्तिनगर से तात्पर्य सम्भवत हस्तिनापुर से ही है क्योकि भविष्य पुराण में स्पष्ट रूप से हस्तिनापुर में शासन करने वाले राजाओ की वंशावली में ही प्रद्योत का उललेख किया है। आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए प्रद्योत ने म्लेच्छों का सर्वनाश किया,[3]जिससे उसकी प्रसिद्धि 'म्लेच्छहन्ता' के रूप में हुई।[4] म्लेच्छों से तात्पर्य समस्त विदेशी जातियों से है। भविष्य पुराण में स्पष्ट आख्यात हे कि प्रद्योत ने हार, हूण, बर्बर, गुरूण्ड(अंग्रेज), शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव, द्वीपनिवासी, कामरू, चीनी एवं सागर के मध्यवर्ती प्रदेशों के म्लेच्छों को नष्ट किया।[5] प्रस्तुत स्थल में विदेशी जातियों के अन्तर्गत

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.3.68-83
2. वही, 1.4.2
3. वही, 1.3.95-96
4. वही, 1.4.10
5. वही,1.4.7-8

गुरूण्डो की गणना से प्रतीत होता है कि यह स्थल बाद मे जोड़ा गया है। प्रस्तुत सदर्भ मे उल्लेखनीय है कि स्कन्दगुप्त कालीन जूनागढ के अभिलेख मे भी हूण नामक विदेशी जाति को म्लेच्छ कहा गया है। इसके अतिरिक्त विशाखदन्त के मुद्राराक्षस में भी हूणों को म्लेच्छ कहा गया है।

मगध के शासक

मगध के शासको की क्रम सूची पुराणो तथा बौद्ध साहित्य मे भिन्न-भिन्न उल्लिखित है। भविष्य पुराण मे शिशुनाग के पूर्व मागध और देश नामक राजाओ का भी उल्लेख प्राप्त होता है। भविष्य पुराण में प्रदत्त शिशुनाग वशीय शासकों की सूची निम्नोक्त है -

1. शिशुनाग 100वर्ष
2. काकवर्मा 90वर्ष
3. क्षेमधर्मा 80वर्ष
4. क्षेत्रौजा 70वर्ष
5. वेदमिश्र 60वर्ष
6. आजातरिपु 50वर्ष
7. दर्भक 40वर्ष
8. उदयाश्च 30वर्ष
9. नन्दवर्धन 20वर्ष
10. नन्द 20वर्ष
11. प्रनन्द 10वर्ष
12. परानन्द 10वर्ष
13. समानन्द 20वर्ष
14. प्रियानन्द 20वर्ष
15. देवानन्द 20वर्ष
16. यज्ञभग 10वर्ष
17. मौर्यानन्द 10वर्ष
18. महानन्द 10वर्ष = योग - 670 वर्ष

उपरोक्त सूची में नन्द नामक राजा को शूद्री के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है, जिससे नन्द वंश प्रचलित हुआ। इसके पश्चात आठ राजाओं की सूची दी गई है। अन्तिम राजा महानन्द उल्लिखित है।

मत्स्य पुराण में दी गई सूची में राजाओं के नाम तो भविष्य पुराण में उल्लिखित राजाओं से साम्य रखते हैं, किन्तु उनके शासन काल में पर्याप्त अन्तर है। मत्स्य पुराण की सूची निम्नोक्त है -

1. शिशुनाग -40वर्ष
2. काकवर्ण -26वर्ष
3. क्षेम धर्मन् -36वर्ष
4. क्षेमजित् -24वर्ष
5. बिम्बसार -28वर्ष
6. अजात शत्रु -27वर्ष
7. दर्शक -24वर्ष
8. उदासीन या उदायी -33वर्ष
9. नन्दिवर्धन -40वर्ष
10. महानन्दि -43वर्ष

321वर्ष

उपरोक्त पुराणों की वंशावली तथा महावंश में उल्लिखित वंशावली मे पर्याप्त अन्तर है। महावंश के अनुसार बिम्बसार पहले हुआ था और शिशुनाग का उसके कुल से कोई संबंध नहीं था। डा0 राय चौधरी के अनुसार शिशुनाग नागदासक के काल में बनारस का वायसराय था। महावंश में प्रदत्त नन्दपूर्व मगध राजाओं की सूची निम्न क्रम से है. -

1. बिम्बसार 4.अनुरुद्ध 7.शिशुनाग
2. अजातशत्रु 5.मुण्ड 8.कालाशोक या काकवर्ण
3. उदयभद्र 6.नागदासक 9.कालाशोक के दसपुत्र

इतिहास सम्मत तथ्य भी यही है कि शिशुनाग वंश का उदय बिम्बसार वंश के बाद हुआ था। पुराण सूची के नन्दिवर्धन तथा नन्द (महानन्दि) सम्भवत कालाशोक के दस पुत्रो मे से थे। पुराणों के अनुसार नन्दवंश का अन्तिम राजा महानन्द था। महाबोधिवंश के अनुसार अन्तिम नन्दराज का नाम धन था। यही सम्भवत यूनानियों का ऑग्रसैन्य था जिसका विनाश चन्द्रगुप्त या चाणक्य ने किया था। मत्स्य पुराण के अनुसार नन्दवंश का उन्मूलन चाणक्य के सहयोग से हुआ था।[1]

मौर्य वंश

पुराण मौर्यों की वंशावली के निर्धारण मे अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए है। मौर्यों का वंशानुक्रम वायु (अध्याय-99), मत्स्य (अध्याय-272), ब्रह्माण्ड (अध्याय-3), विष्णु (अध्याय-4.24) तथा भविष्य[2] मे वर्णित है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणो की वशतालिका निम्नोक्त है।

वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण

1.	चन्द्रगुप्त	5.इन्द्रपालित
2.	अशोक	6 देववर्मा
3.	कुणाल	7.शतधनुष
4.	बन्धुपालित	8.बृहद्रथ

---

1. मत्स्य पु0, 171.21
2. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.6.36-44

वायु पुराण के ही आधार पर पार्जीटर[1] ने एक अन्य सूची भी प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है-

1. चन्द्रगुप्त
2. अशोक
3. कुणाल
4. बन्धुपालित
5. दशोण
6. दशरथ
7. सम्प्रति
8. शालिशुक
9. देवधर्मन
10. शतधन्वन्
11. बृहद्रथ

मत्स्य पुराण[2] की सूची निम्न प्रकार से है-

1. चन्द्रगुप्त
2. अशोक
3. दशरथ
4. **सम्प्रति**
5. शतधन्वन्
6. बृहद्रथ

---

1. पार्जीटर, द डायनेस्टी ऑफ द कलि एज, पृ0 28-29
2. मत्स्य पु0, 272.23-26

किन्तु विष्णु पुराण की वश सूची वायु तथा मत्स्य दोनो से मेल नही खाती। विष्णु पुराण की सूची निम्नोक्त हे–

1. चन्द्रगुप्त
2. अशोक
3 सुयश
4. दशरथ
5. सगत
6. शालिशुक
7 सोमवर्मन
8. सम्प्रति
9. शतधन्वन्
10. बृहद्रथ

जबकि भविष्य पुराण में चन्द्रगुप्त से पूर्व के राजाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है तथा उसे शाक्य मुनि का वंशज स्वीकार किया है जो बहुत कुछ बौद्ध ग्रंथ महावश से सामञ्जस्य रखता है। जिसमे चन्द्रगुप्त को शाक्य वंश का बताया है। भविष्य पुराण में मौर्यों की वश तालिका निम्न प्रकार से उल्लिखित है–

1. गौतम
2. शाक्य मुनि
3. शुद्धोदन
4. शाक्य सिंह
5. बुद्ध सिंह
6. चन्द्रगुप्त
7. बिन्दुसार
8. अशोक

उपर्युक्त सभी पुराणो में मौर्य राजाओ की सूची मे भिन्नता दिखाई पड़ती है। किन्तु भविष्य पुराण को छोड़कर सभी ने चन्द्रगुप्त के बाद अशोक का उल्लेख किया है जबकि भविष्य पुराण बिन्दुसार का भी उल्लेख करता है। प्रतीत होता है कि भविष्य पुराण का यह स्थल बाद में जोड़ा गया है।

मौर्योत्तर राजवंश

मौर्य वंश के पश्चात भविष्य पुराण मे 'विक्रमादित्य' नामक राजा का वर्णन प्राप्त होता है। जिनके पिता का नाम आलोचित पुराण में गन्धर्वसेन उल्लिखित है।[1] अन्यश्च यह भी आख्यात है कि शिव तथा पार्वती ने बत्तीस मूर्तियों (कठपुतलियों) से युक्त राज सिंहासन तथा वैताल नामक सेवक को उनके रक्षणार्थ सौंपा।[2] आलोचित पुराण में 22 ऐसे शिक्षाप्रद कथानकों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्हें वैताल ने राजा विक्रमादित्य के समक्ष प्रस्तुत किया। भारतवर्ष में प्राचीन काल से "वैताल पञ्चविंशतिका" या "वैतालपचीसी" की कथाएँ जो विक्रम-वैताल संवाद के रूप में लोक प्रसिद्ध हैं, उनका मूल भविष्य पुराण प्रतीत होता है। प्रस्तुत राजा का समीकरण उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य से करना उचित प्रतीत होता है, जिनके विषय में प्रख्यात है कि उन्होंने ही विक्रमसंवत् (57 ई.पू.) की स्थापना की थी।

सातवाहन वंश

वायु, ब्रह्माण्ड, भागवत और विष्णु पुराणों मे उल्लिखित है कि सातवाहन वंश में 30 राजा हुए।[3] जबकि भविष्य पुराण के अनुसार सातवाहन वंश में दस राजा हुए।[4] भविष्य पुराण के अनुसार इन सातवाहन राजाओं ने 500 वर्षों तक राज्य किया।[5] विभिन्न पुराणों में सातवाहन राजाओं की शासनावधि भिन्न-भिन्न प्राप्त होती है। मत्स्य पुराण के अनुसार 460 वर्ष, वायु पुराण के अनुसार 411 वर्ष तथा

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 1.7.12
2. वही, 1.7.18-19
3. द्रष्टव्य, पार्जीटर, डायनेस्टीज ऑफ द कलि एज, पृ.36
4. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 3.3.1
5. वही, 3.31

ब्रह्माण्ड और भागवत के अनुसार सातवाहन राजाओं ने 456 वर्षों तक शासन किया।[1] भविष्य पुराण मे सातवाहनों के लिए शालिवाहन शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्य साहित्यिक ग्रंथों मे भी सातवाहनों के लिए शालिवाहन का प्रयोग मिलता है। आलोचित पुराण में शक-सातवाहन संघर्ष का भी संकेत दिया गया है किन्तु राजाओं के नामो का उल्लेख नहीं किया गया है।

भविष्य पुराण के विषय में उल्लेखनीय है कि यद्यपि इसमें बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है किन्तु कतिपय स्थलो में विभिन्न कालो में घटित अलग-अलग घटनाओं को एक ही स्थल पर प्रस्तुत किया गया है। जिससे समस्त ऐतिहासिक तथ्य आपस में ही उलझ कर रह गए। उदाहरणार्थ आलोचित पुराण मे राजा भोज का वर्णन प्राप्त होता है किंतु उसका उल्लेख शालिवाहन वंश के दसवे राजा के रूप मे किया गया है। जबकि यह सर्वविदित तथ्य है कि सातवाहन वंश में किसी भी भोज नामक राजा का अस्तित्व नहीं है। अन्यश्च यदि इस भोज नामक राजा का समीकरण गुर्जर नरेश मिहिरभोज प्रथम (836-885 ई.) से किया जाए तो भी इस राजा के साथ कालिदास की उपस्थिति असंगत प्रतीत होती है। जैसा कि आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि राजा भोज की सेना में कालिदास भी उपस्थित थे।[2]

अग्निवंशीय राजाओं के वंश वृतान्त

भविष्य पुराण में गुप्त वंश से लेकर वर्धन वश तक का इतिहास उपलब्ध नही होता है। वर्धन वंश के पश्चात जिन राजपूत अथवा अग्निवंशीय नरेशों का आविर्भाव हुआ, उनका विस्तृत वर्णन किया गया है। अग्निवंशीय राजाओं के अन्तर्गत वत्सराज के पुत्र राजा भोज की वंश परम्परा आलोचित पुराण में प्राप्त होती है।[3] उक्त राजा भोज की पहचान गुर्जर प्रतीहार नरेश भोज से की जा सकती है। किंतु जैसा पहले कहा गया है कि भविष्य पुराण में कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों को जोड़ दिया गया है। गुर्जर प्रतीहार नरेश भोज के वंश को भी विक्रमादित्य के वंश से जोड़ दिया गया है।

1. द्रष्टव्य, पार्जीटर, पूर्वोद्धृत, पृ.37
2. भविष्य पु0, प्रतिसर्गपर्व, 3.3.3
3. भविष्य पु0, प्रतिसर्गपर्व,41.1.21-32 तथा प्रतिसर्गपर्व 3.3.1.2

वस्तुत भविष्य पुराण मे कलियुगी राजवशों तथा राजाओं का जो वर्णन किया गया है वह बहुत विस्तृत है, जिनमें अधिकांश नाम तो ऐसे हैं जिनके विषय मे न तो इतिहास से कुछ जानकारी मिलती है, न किसी अन्य पुराण से। पुराणों की शैली के अनुसार रचयिता ने प्रत्येक व्यक्ति और घटना को अद्भुत रूप दिया है और उसका संबंध प्राचीन युग के देव, असुर, दैत्य, दानव, नाग आदि सम्प्रदायों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से जोडा गया है। इसी परम्परा के अन्तर्गत गहड़वाल वंश तथा चाहमानवंश के नरेशों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

गहड़वाल वंश

अग्निवंशीय नरेशों के अन्तर्गत गहडवाल वंशी कन्नौज के राजा जयचन्द्र का उल्लेख प्राप्त होता है। आलोचित पुराण में राजा जयचन्द्र तथा चौहान राजा पृथ्वीराज के वैमनस्य तथा उनके मध्य हुए युद्ध का विस्तृत वृतान्त प्रतिसर्गपर्व के तृतीय खण्ड में प्रस्तुत किया गया है। भविष्य पुराण में पृथ्वीराज द्वारा जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता के अपहरण का भी उल्लेख किया गया है।[1] अनेक विद्वान पृथ्वीराज-संयोगिता की कथा को ऐतिहासिक नहीं मानते। आलोचित पुराण मे यह भी उल्लेख मिलता है कि राजा जयचन्द्र ने पृथ्वीराज चौहान के विरूद्ध आल्हा तथा ऊदल नामक बनाफर सरदारों के साथ चन्देल राजा परमर्दिदेव (परिमल) की सहायता की थी। भविष्य पुराण मे राजा जयचन्द्र के पूर्व तथा पश्चात की जिस वंश परम्परा[2] का उल्लेख किया गया है, पूर्णत. काल्पनिक एवं अनैतिहासिक प्रतीत होती है।

प्रस्तुत पुराण के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में भी कन्नौज नरेश जयचन्द्र तथा चौहान शासक पृथ्वीराज के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। इनमें सर्वप्रमुख चन्दरबरदाई का पृथ्वीराजरासो है। किन्तु इसका विवरण भी अधिकांशतः अनैतिहासिक तथा काल्पनिक है। मेरुतुंग द्वारा रचित प्रबन्ध

1. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 3.5.36-38
2. वही, 4.3

चिन्तामणि मे भी जयचन्द्र के विषय मे सूचनाएँ दी गई हैं। लक्ष्मीधरकृत 'कृत्यकल्पतरु' नामक ग्रथ से भी तत्कालीन राजनीतिक समाज तथा संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है।

चाहमान वंश

आलोचित पुराण मे चाहमान वंश के सर्वप्रसिद्ध शासक पृथ्वीराज तृतीय के राजनीतिक जीवन का वृतान्त प्रस्तुत किया गया है। साथ ही कन्नौज नरेश जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर तथा पृथ्वीराज चौहान द्वारा उसके अपहरण के कथानक का विस्तार से वर्णन किया गया है।[1] भविष्य पुराण में पृथ्वीराज तृतीय तथा चन्देल नरेश परमर्दिदेव (परिमल) के मध्य हुए भीषण युद्ध का वर्णन सविस्तार उल्लिखित है। इसी युद्ध में कन्नौज राजा जयचन्द्र तथा बनाफर सरदार आल्हा तथा ऊदल ने परमर्दिदेव की सहायता की थी। उक्त सम्पूर्ण विवरण भविष्य पुराण के प्रतिसर्गपर्व के तृतीय खण्ड मे प्राप्त होता है। आलोचित पुराण में पृथ्वीराज तृतीय के समय हुए मोहम्मद गोरी के आक्रमण का भी उल्लेख किया गया है। मोहम्मद गोरी को आलोचित पुराण मे सहाबुद्दीन के नाम से संबोधित किया गया है। पृथ्वीराज और मोहम्मद गोरी के मध्य हुए युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय होती है। मोहम्मद गोरी द्वारा विजित प्रदेश पर कुतुबुद्दीन नामक सेवक की नियुक्ति का भी उल्लेख भविष्य पुराण में किया गया है।[2]

भविष्य पुराण में पृथ्वीराज चौहान की भी वश परम्परा[3] का उल्लेख किया गया है, जिसमे मात्र पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का नाम ऐतिहासिक प्रतीत होता है। अन्य नाम पूर्णतः काल्पनिक तथा जनश्रुति पर आधारित प्रतीत होते हैं।

---

1. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 3.6
2. वही, 3.32.238-247
3. वही, 4.2.1-28

भविष्य पुराण में वर्णित मध्यकालीन इतिहास

भविष्य पुराण में वर्णित मध्यकालीन इतिहास में सर्वप्रथम मोहम्मद गोरी के आक्रमण का उल्लेख किया गया है। मोहम्मद गोरी और पृथ्वीराज के मध्य 1192 ई. में तराइन का द्वितीय युद्ध हुआ था, जिसमें पृथ्वीराज की पराजय हुई थी। इसके पश्चात भविष्य पुराण में गुलाम वंश से लेकर तुगलक वंश के इतिहास का कोई उल्लेख नहीं मिलता। भविष्य पुराण मे मोहम्मद गोरी के आक्रमण के पश्चात तैमूर के आक्रमण का उल्लेख किया गया है।[1] आलोचित पुराण में तैमूर एक नृशंस शासक के रूप मे उल्लिखित है। भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि तैमूर ने बहुसंख्यक हिन्दुओं की नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी। उसके द्वारा की गई लूटपाट से सम्पूर्ण देश छिन्न-भिन्न एवं नष्ट हो गया। यह सुविदित है कि तैमूर के आक्रमण 1398 ई में हुए थे।

मुगल वंश

भविष्य काल में मुगल वंश के अन्तर्गत बाबर से लेकर औरंगजेब तक के शासकों का उल्लेख किया गया है। आलोचित पुराण में हुमाँयु तथा शेरशाह सूरी के मध्य हुए युद्ध का भी उल्लेख मिलता है, जिसमें शेरशाह सूरी की विजय हुई थी।[2] हुमाँयु द्वारा निष्कासित जीवन के बाद पुन. दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है।[3] इसके पश्चात अकबर, जहाँगीर तथा औरंगजेब का वर्णन मिलता है।[4] औरंगजेब के काल में हुए मराठा संघर्ष का भी संकेत किया है जिसके नायक शिवाजी थे।[5] औरंगजेब के पश्चात उसके पुत्र अलोमा (शाह आलम प्रथम) ने 5 वर्षों तक राज्य किया।[6]

---

1. भवि. पु., प्रतिसर्गपर्व, 4.6.44-56
2. वही, 4.22.7-8
3. वही, 4.22.18-19
4. वही, 4.22.20-49
5. वही, 4.22.49-52
6. वही, 4.22.54-55

भविष्य पुराण में नादिरशाह के आक्रमण का भी उल्लेख किया गया है जो मुहम्मद शाह (1719 –1748) के काल में हुआ था। इसके पश्चात भविष्य पुराण में गुरूण्डों (अंग्रेजों) का उल्लेख किया गया है।

आधुनिक भारत का इतिहास

भविष्य पुराण में अंग्रेजो (गुरूण्डों) का उल्लेख मिलता है। जिनके लिए आख्यान है कि वे ईसाई धर्म के अनुयायी हैं। जिन्होंने भारत मे आकर राज्य किया और कलकत्ता नगर को राजधानी बनाया।[1]

---

1. भविष्य पु0, प्रतिसर्गपर्व 4.22.72–75

षष्ठ अध्याय

आर्थिक जीवन

आर्थिक स्थिति

भविष्य पुराण में प्राप्त विवरण के आधार पर तत्कालीन समाज एव उसकी आर्थिक स्थिति का संकेत मिलता है। धार्मिक कार्यों में पशु, भूमि, गाँव एवं बगीचों को दान में दिया जाता था।[1] सुवर्ण एवं चाँदी के पात्रों में दान देने के उल्लेख से भी कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में गृहस्थ मनुष्य आर्थिक रूप से सम्पन्न थे।[2] सुवर्ण, गौ, अश्व, छत्र, जूता, धान्य, वस्त्र, शाकादि को गुरू दक्षिणा में दान देना तत्कालीन विकसित अर्थव्यवस्था एवं भौतिक समृद्धि की ओर संकेत करता है।[3] तत्कालीन समाज में अर्थ की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए उल्लेख प्रस्तुत किया जा सकता है कि लोगों में यह आस्था थी कि सूर्य स्नान कराने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।[4] पीपल, जामुन और बरगद के वृक्ष धन के प्रतीक माने जाते थे तथा यह मान्यता थी कि इन वृक्षों के आरोपण से धन की प्राप्ति होती है।[5]

आलोचित पुराण में आर्थिक, भौतिक सम्पन्नता के द्योतक कतिपय नगरो का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जिनमें अयोध्या[6] और काशीनगर[7] विशेष उल्लेखनीय हैं। काशीनगरी जो धनधान्य से पूर्ण थी।[8] यहाँ उल्लेखनीय है कि काशी, जनपद का नाम था एवं वाराणसी उसकी राजधानी। इसलिए वाराणसी को ही काशीनगर एवं काशीपुर भी कहा जाता था। व्यापार, व्यवसाय, कला एवं विद्या से इस नगर का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहा है। चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है कि वहाँ की

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 93.57-62
2. वही, 3.33
3. वही, 4.215
4. वही, 95.9
5. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.10.39-44
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 94.21
7. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 2.26.7-9
8. वही, 2.26.7-9

दुकानों मे सुन्दर वस्तुएँ सजी हुई थीं। यह नगर सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। हमारे प्राचीन साहित्य में बनारसी, सूती कपड़ों के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। जातक ग्रन्थों में काशी की रानियाँ वहाँ के आकर्षक रेशमी वस्त्रों को पहने हुए दिखाई गई हैं। पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है कि वणिकों मे कुछ ऐसी धारणा थी कि इस नगर से व्यवसायिक सिलसिला कायम रखने पर सारे दु:ख दरिद्र छूट जाया करते थे। साथ ही यह भी लिखा है कि वहाँ के रेशमी कपड़े बहुत कीमती हुआ करते थे।[1]

कृषि-कर्म

भविष्य पुराण के संकलन काल में समग्र आर्थिक संघठन मे कृषि-कर्म को विशेष महत्ता प्रदान की गई है। दही, दूध तथा घी को जनसाधारण के खाद्य में परिगणित करके पुराणकार ने पशुपालन तथा समृद्धशाली समाज की ओर इंगित किया है।

कालीदास ने कृषि-कर्म तथा पशुपालन को राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत स्वीकार किया है।[2] कतिपय साहित्यिक एवं अभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि गुप्तोन्तर काल से लेकर तुर्क आक्रमणों के मध्यवर्ती काल में भारतीय व्यापारिक वर्ग में भूमि सम्पदा बढ़ाने की प्रकृति बढ़ गई थी।[3] कहा जा सकता है कि गुप्तकाल के अन्तिम चरण में तथा उसके उपरान्त कृषि-कर्म को वरीयता दी जाने लगी थी। कतिपय विद्वानों यथा- आर० एस० शर्मा, डा० यादव, लल्लन जी गोपाल आदि ने गुप्तोन्तरकालीन भारत में बहुसंख्यक भूमि दानार्थ प्रचलित दानपत्रों/एवं एतद् विषयक अभिलेखों के आधार

---

1. द्रष्टव्य, उदय नारायण राय, हमारें पुराने नगर, पृ० 42-43
2. रघुवंश, 16.2
3. द्रष्टव्य, तिलकमञ्जरी, पृ० 57-75, 114-147 तथा मोती चन्द्र, जे० यू० पी० एच० एस० 20 (1947), पृ० 78-85

पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इस समय वाणिज्य एवं व्यापार का ह्रास एवं कृषि-कर्म में प्रगति हुई थी।[1]

आलोचित पुराण से तत्कालीन उन्नत कृषि व्यवस्था के संकेत मिलते हैं। कृषि कार्य के लिए जुताई[2] (सुकृष्ट) एवं खुदाई[3] जैसे शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा यह भी उल्लिखित है कि कृषि के कार्यों में कर्मकारों एवं मजदूरों के कार्यों की बराबर देख-रेख करनी चाहिये।[4]
उत्पादित अन्नों में ब्रीहिधान्य, काकुन, कोदों, प्रियंगु, शाली, चना, मसूर, मूँग, उड़द, जवा, कुल्माथ, पिष्टमांस, कलायज, चीनीब्रीह उल्लेखनीय हैं।[5] तिलहनों में अलसी, सरसों, तिल, इंगुदी, महुआ, नक्तमाल आदि उल्लेखनीय हैं।[6]

भविष्य पुराण में कृषि सम्बन्धी कतिपय नियमों का उल्लेख मिलता है यथा- आम के वृक्ष सदैव बीस हाथ की दूरी पर लगाने चाहिये। आँवला, बकुल, वंजुल को सोलह हाथ की दूरी पर लगाना चाहिये।[7] सेमर के वृक्ष, नागकेसर और पीपल के वृक्ष को उसकी दुगनी दूरी पर लगाना चाहिये।[8]

नीम की पत्ती, योग की पत्ती, शतावर, पुनर्नवा और क्षीरिका, को रक्त फलों में मिलाकर उसको तीन दिन धूप प्रदान करने से आम की जड़ में कीड़े नहीं लगते।[9] मछली के जल से सींचने से आम की शीघ्र और अत्यन्त वृद्धि होती है। इसे पके आम और रुधिर अनार की वृद्धि

---

1. द्रष्टव्य, आर0 एस0 शर्मा, पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ0 23, लल्लन जी गोपाल, द एकोनोमिक लाइफ ऑफ नॉर्दन इण्डिया, पृ0 101,102
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 188.14
3. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.10.13
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 12.47
5. वही, 12.1-9
6. वही, 12.12- 13
7. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.10.83
8. वही, 1.10.84
9. वही, 1.10.70- 71

के लिए प्रशस्त बताया है।[1] इसी प्रकार केतकी के लिए जवा के जल मिश्रित गोमांस अत्यन्त प्रशस्त कहे गए हैं। इससे दूधवाले (क्षीरक) वृक्षों में बल की वृद्धि होती है।[2] शहद, जेठीमधु के जल से सामान्य वृद्धि कही गई है।[3] कैथ और बेल की वृद्धि के लिए गुड के जल से सींचना चाहिये।[4] वायु प्राकृतिक साप की केंचुल और तगर की धूप शस्यों में देने से धान्य की वृद्धि होती है।[5] मयूर के पखने, बकरी के सातलोम इन्हे रेड़ी के तेल मे मिलाकर आधी रात के समय इनकी धूप देने से चूहे पलायन कर जाते हैं। हींग और कुसुम के संयोग से भी समान फल प्राप्त होता है।[6] नारियल के जल में माक्षिक (मोम) जलाकर सींचने से सभी वृक्षों मे विशेषकर सुपाड़ी में अंकुर उत्पन्न होता है।[7] दशशिरा के बीज मिलाकर सींचने से तो उसमें प्राण संचार ही होने लगता है।[8]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में कृषकों को कृषि संबंधी सूक्ष्म नियमो की भी जानकारी थी।

द्रोण

भविष्य पुराण में एक स्थल पर 'द्रोण' शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।[9] 'द्रोण' शब्द का प्रयोग

---

1. भवि० पु०, मध्यमपर्व, 1.10.72-73
2. वही, 1.10.73-74
3. वही, 1.10.75
4. वही, 1.10.76
5. वही, 1.10.78-79
6. वही, 1.10.79-80
7. वही, 1.10.65
8. वही, 1.10.66
9. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 11.12, प्रतिसर्गपर्व, 4.8.16

जातको मे भी हुआ है। इनमे खेत की रास नापने वाले अधिकारियो को द्रोणमापक कहा गया है।[1] मनुस्मृति में एक स्थान पर निकृष्ट चाकरों के वेतन के प्रसंग में एक मास में उन्हें द्रोणभर धान्य देने का विधान दिया गया है।[2] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार द्रोण अनाज की राशि नापने वाला एक बर्तन होता था।[3]

पशुपालन

भारतीय अर्थ व्यवस्था में कृषि-कर्म के उपरान्त पशुपालन को द्वितीय स्थान प्राप्त था। आलोचित पुराण में गोचर भूमि[4], गोप[5], गोष्ठ[6] आदि शब्द पशुपालन की प्रथा को अभिव्यक्त करते हैं। आलोचित पुराण में गाए, भैंस, बकरी, भेड़ के दूध से बने घी का उल्लेख मिलता है।[7] इसीप्रकार दूध, दधि, मधु जैसे खाद्य पदार्थ पशुपालन के द्योतक हैं।[8] भविष्य पुराण में गाए, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े, ऊँट आदि के पालन, उनकी विधिवत् देखभाल का भी विवरण प्राप्त होता है।[9] नील गाए, कृष्ण गाए एवं वैष्णवी गाए आदि को धार्मिक कार्यों में दान देने का भी उल्लेख है।[10] भारवाहन के लिए 'वृष' का प्रयोग किया जाता था।[11]

---

1. कुरुधम्म जातक, 3.276, विशेष द्रष्टव्य, वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृ0 244
2. मनुस्मृति, 7.126
3. वी0 एस0 अग्रवाल, पूर्वोद्धृत, पृ0 244
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 12.43
5. वही, 12.37
6. वही, 191.3
7. वही, 12.15
8. वही, 4.35
9. वही, 12.33-46
10. वही, 165.16,18,22-45
11. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.10.3

व्यापारी

आलोचित पुराण में व्यापारी के लिए 'वणिक'[1] तथा वैश्य[2] आदि शब्दो का प्रयोग किया गया है। वामन पुराण के अनुसार वाणिज्य वैश्यों के लिए विहित तथा पवित्र कर्म है।[3] भविष्य पुराण में भी वाणिज्य तथा ब्याज लेकर कर्ज देना वैश्यों का कर्म उल्लिखित है।[4] वायु पुराण के अनुसार क्रय- विक्रय वैश्य की जीविका मानी गई है एवं इस कर्म में साधारणतया अन्य वर्णों की विशेषकर ब्राह्मण वर्ण का आगमन पाप कर्म माना जाता था।[5] आलोचित पुराण में भी वैश्य वृत्ति अपनाने वाले ब्राह्मणों की निन्दा की गई है।[6] भविष्य पुराण में अधिकांश बड़े व्यापारियों का निवास स्थान नगर उल्लिखित है।[7] प्राचीन भारतीय नगरों मे व्यापारियों की प्रधानता की पुष्टि अनेक साक्ष्यों से प्रमाणित होती है।[8]

विक्रेय वस्तु

आलोचित पुराण मे घी, तैल तथा इनसे निर्मित पकवान, शहद, मांस, रस, आसव, गुड़, ईख, क्षीर, शाक, दही, मूलकन्द्र, तृण, काष्ठ, पुष्प, बीज, औषधि, उपानह, छत्र, गाड़ी, आसन, शयन, मिट्टी, तांबा, शीशा, रांगा, कांसा, जल से उत्पन्न शंख, भेड़ें, बांस के फल, घर बनाने का सामान, ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र, भाँग, पत्थर की मोटी पतली चक्कियाँ आदि विक्रय वस्तुओं का उल्लेख मिलता है तथा इनका अपहरण करने वाला मनुष्य नरकगामी कहा गया है।[9] एक स्थल पर तेल एवं हव्य के विक्रेता का उल्लेख मिलता है।[10]

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 2.4.41
2. वही, 2.9.3
3. वामन पु0, 13.12
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 2.123
5. वायु0 पु0, 79.4
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 40.46
7. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 2.4.41, 2.9.3, 2.13.2, 2.16.2
8. रामायण, बालकाण्ड सर्ग, 5.14
9. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 191.16-20
10. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 2.7.53

शिल्प

भविष्य पुराण मे अनेक शिल्पकारों का उल्लेख मिलता है, यथा – लोहार[1], रत्नकार[2], सुनार[3], कुम्हार आदि। वस्तुत. वैदिक युग से ही अनेक प्रकार के हस्तशिल्पो के प्रचलन के उल्लेख मिलने लगते हैं। तैत्तिरीय संहिता में इन उद्योगो से सम्बद्ध व्यवसायिक वर्गों के लिए पृथक-पृथक संज्ञा व्यव्हृत हैं। इनमें तक्षन्, कर्मार (कुंभकार), हिरण्यकार, रथकार तथा चर्मकार आदि विशेषत. उल्लेखनीय हैं।[4] इन्हे शिल्पजीवी के रूप में समाज में मर्यादित कहा गया है। किन्तु भविष्य पुराण से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में शिल्पी, कारू, क्षेमकार आदि को मर्यादित स्थान प्राप्त न था।[5] भविष्य पुराण में शिल्पी[6] शब्द हस्तकला एवं हस्तनिर्मित उद्योगों की ओर संकेत करता है। आलोचित पुराण में 'कारू'[7] शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। वाजसनेयी संहिता में 'कारू' के स्थान पर 'कारि' शब्द का प्रयोग शिल्पी का अर्थबोधक माना जाता है।[8] यह स्मरणीय है कि वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त 'कारि' शब्द वेदोत्तर साहित्य में 'कारू' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। मनुस्मृति में कारू कर्मी ब्राह्मण को शूद्र वर्ग में परिगणित किया गया है। जिसका उल्लेख करते हुए आलोचित पुराण ऐसे ब्राह्मणों के साथ शूद्रवत् आचरण का विधान प्रस्तुत करता है।[9] इस बात की पुष्टि स्कन्द पुराण के एक उल्लेख से भी होती है।[10] वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों में कारू कर्मकर्त्ता ब्राह्मणों को श्राद्ध में अपात्रिय[11] तथा हव्यकव्य में अभोजनीय[12] तथा वर्जनीय[13] माना गया है।

---

1. भवि० पु०, मध्यम पर्व, 2.4.24
2. वही, 2.4.19
3. वही, 2.4.33
4. तैत्तरीय सं०, 4.5.4.2
5. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 191.15
6. वही, 191.15
7. वही, 191.15
8. वाजसनेयी सं०, 20.6
9. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 40.46
10. स्कन्द पु०, 4.40.113, 7.1 207.33
11. ब्रह्माण्ड पु०, 3.19.37
12. ब्रह्माण्ड पु०, 3.15.43
13. वायु पु०, 17.63, पद्म पु०, 1.49.17

आलोचित पुराण में शिल्पी तथा कारूकर्मी को नरकगामी कहा गया है।[1] प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में शिल्पियों तथा कारूजनों की स्थिति शोचनीय थी।

शिल्प-भेद

भविष्य पुराण में विभिन्न प्रकार के शिल्पों का उल्लेख मिलता है।

वस्त्र-निर्माण

भविष्य पुराण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज मे सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्रों का निर्माण किया जाता था। उपनयन संस्कार मे सन, रेशमी तथा कपास के वस्त्रो का उल्लेख है। साथ ही चर्म, रूरू, मृगचर्म एवं बकरे के चर्म के वस्त्रो का उल्लेख मिलता है।[2] एक स्थल पर कपास, रेशम एवं सन के कीड़ों, उनके चुनने एवं काटने के उल्लेख से प्रतीत होता है कि इनका निर्माण विस्तृत पैमाने पर किया जाता था।[3] वस्त्र निर्माण में चित्र-विचित्र दुपट्टे एवं रंगीन वस्त्रों का निर्माण भी किया जाता था।[4] वस्त्र निर्माण उद्योग में उसके सूक्ष्म नियमों का भी विवरण भविष्य पुराण मे उपलब्ध है, यथा- अलसी और कपास में पाँचवा भाग सूत जानना चाहिये।[5] धुनने पर रूई का बीसवाँ भाग क्षय हो जाता है। भेड आदि के अच्छे ऊन यदि वायु से सुरक्षित स्थल में रखकर धुने जाएँ तो वे भी उतने ही न्यून हो जाते हैं।[6] कपड़ा बिनाने पर इन सूतों का पचासवाँ भाग न्यून हो जाता है। बुनते समय माँड के मिला देने से दसवे एवं ग्यारहवें भाग जितनी वृद्धि हो जाती है।[7] बहुत महीन चिकने और मध्यम कोटि के सूतों के ऊपर के आधे अथवा उससे कुछ

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 191.15
2. वही, 3.21.25
3. वही, 12.18
4. वही, 164.66-67
5. वही,12.23
6. वही,12.24
7. वही, 12.25

अधिक की न्यूनता होती है। मोटे सूतों मे वह न्यूनता चौथाई हो जाती है।[1] उपर्युक्त नियमों को ध्यान मे रखकर वस्त्र निर्माण किया जाता था।

भाण्ड-निर्माण

आलोचित पुराण से ज्ञात होता है कि ताँबे, काँसे, लोहे, काष्ठ, बाँस, मिट्टी इन सभी से पात्र का निर्माण किया जाता था।[2] जल रखने के लिए बड़ी द्रोणियाँ, कलश, झारी, उंदचन (बडे पात्र से जल निकालने के लिए छोटे जल पात्र) का उल्लेख मिलता है। तेल एवं गोरस रखने के लिए पात्रों के निर्माण का भी उल्लेख मिलता है।[3] इनके अतिरिक्त मूसल, ओखली, सूप, चालनी, दोहनी, सिल, चक्की, मथानी, सनसी, कुण्डिका, शूल, चिमचा, करछुल, कडाही, बड़ें करघे आदि रसोई घर के बर्तनो का भी उल्लेख किया गया है।[4]

तेल-निर्माण

भविष्य पुराण में उल्लिखित तिलहनों मे अलसी, सरसों, कपित्थ, नीम, कदम्ब, तिल, इंगुदी, महुआ, नक्तमाल की गणना की जा सकती है।[5] तिल तथा तेल का प्रसंग वैदिक वाँड्.मय में भी मिलता है। अथर्ववेद में तेल का उल्लेख किया गया है।[6] विष्णु पुराण में भी तिल के तेल का उल्लेख मिलता है।[7]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 12.26
2. वही, 11.11
3. वही, 11.12
4. वही, 11.13-14
5. वही, 12.12-13
6. अथर्ववेद, 9.8.3
7. विष्णु पु0, 2.12.26.27, द्रष्टव्य हितोपदेश, प्रस्ताविका 30

भविष्य पुराण मे तेल की मात्रा का विवरण देते हुए उल्लिखित है कि अलसी का तेल छठवाँ भाग निकलता है। सरसें, नीम, कपित्थ आदि का पाँचवा भाग जानना चाहिये।[1] तिल, इंगुदी, महुआ नक्तमाल और उसम्मा में एक चौथाई तेल निकलता है।[2]

प्रचलित सिक्के एवं उसके मान

भविष्य पुराण के आधार पर तत्कालीन प्रचलित सिक्के एवं माप के अन्तर्गत पण, सुवर्णपाद, माशा, वराट (कौड़ी) काकड़ी, पुराण, रत्ती का उल्लेख किया जा सकता है।[3] तेरहवी शताब्दी मे भास्कराचार्य कृत लीलावती में इन सिक्कों के मान निर्धारण का उल्लेख प्राप्त होता है, जो निम्न प्रकार से है।[4]

20 कौडी= 1 काकड़ी

80 कौड़ी =4 काकड़ी = 1पण

आलोचित पुराण में भी 80 कौड़ी का एक पण कहा गया है।[5] काकड़ी माशे का चौथाई भाग होता था। माशा सात रत्ती के बराबर होता है।[6] डी० सी० सरकार के अनुसार उपर्युक्त समीकरण पूर्वी उत्तर भारत में उत्तर मध्य काल में प्रचलित था।[7]

` पुराण से तात्पर्य कार्षापण से ही है। भविष्य पुराण के अनुसार 16 पण का एक पुराण होता था।[8] पुराण का भार द्रम के समान था जो 24 रत्ती के बराबर था। 16 पण का एक द्रम

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 12.12
2. वही, 12.13
3. भवि० पु०, मध्यमपर्व, दूसरा खण्ड, चौथा अध्याय
4. द्रष्टव्य, डी० सी० सरकार, स्टडीज इन इण्डियन कौएन्ज, पृ० 300
5. भवि० पु०, मध्यमपर्व, 2.3.4
6. डी०सी० सरकार, पूर्वोद्धृत,पृ० 68
7. डी०सी० सरकार, पूर्वोद्धृत, पृ०300
8. भवि० पु०, मध्यमपर्व, 2.3.4

होता था और एक कार्षापण भी। द्रम और कार्षापण का समान मान था।[1]

विभिन्न कर्मों में पारिश्रमिक व्यवस्था

भविष्य पुराण का यह अध्याय (मध्यमपर्व, खण्ड-2 का चौथा अध्याय) ऐतिहासिक दृष्टि से बडे महत्त्व का है। केवल कौटिल्य के अर्थशास्त्र और शुक्रनीति से ही भारत की प्राचीन मुद्राओं एवं पारिश्रमिक का पता चलता है। अन्य किसी पुराण या धार्मिक ग्रथों मे इनका कोई संकेत नही किया गया है।

आलोचित पुराण में सर्वप्रथम कुण्ड एवं कुड्मलों के निर्माण के पारिश्रमिक पर विचार किया गया है। चौकोर कुण्ड के लिए रौप्यार्ध (रूपए का आधा), सर्वतोभद्रकुण्ड के लिए दो रौप्य, कींचघ्राण के लिए चौथाई (चवन्नी), महासिंहासन के लिए पाँच रूपए, दश पात्र के लिए उसका आधा अर्थात् अढ़ाई रूपए, सहस्रसार और मेरूपृष्ठ के लिए चार रूपए तथा एक बैल, वृष के कण्ठ के लिए वृषभ और शेष के लिए सहस्र रूपए देने चाहिये।[2] चौकोर कुण्ड के निर्माण के लिए एक सुवर्णपाद, महाकुण्ड के निर्माण में उसके दुगने और गोलाकार कुण्ड की रचना मे एक रूपए प्रदान करना चाहिये।[3] पद्मकुण्ड के निमिन्त बैल, अर्धचन्द्र नामक कुण्ड के निर्माण मे एक रूपए, योनि कुण्ड में धेनु और अष्ट कोण वाले कुण्ड में एक माशा सुवर्ण, षट्कोण कुण्ड मे उसका अर्धभाग, यज्ञ के लिए दो माशे, शैवयाग अथवा किसी उद्यापन कार्य में प्रतिदिन एक माशा सुवर्ण प्रदान करना चाहिये।[4] यज्ञ संबंधी एक हाथ भूमि खोदने के लिए उसका पारिश्रमिक सुवर्ण की एक कृष्ण कला बताई गई है। उसी प्रकार उसमें ईंटों की जुड़ाई के लिए प्रतिदिन दो पण सुवर्ण पारिश्रमिक देना चाहिये। खण्ड बनाने में दश वराट(एक वराट बराबर अस्सी कौड़ी), उसके मान को बढ़ाने में काकणी देनी चाहिये। उसी प्रकार सरोवर या

---

1. डी0 सी0 सरकार, पूर्वोद्धृत, पृ0 300
2. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 2.4.4-6
3. वही, 2.4.7
4. वही, 2.4.8-9

पुष्करिणी प्रथम/की खुदाई में और सात हाथ के कुण्ड के निर्माण करने में जिसका नीचे का भाग (ईंट आदि से) बाँध दिया जाता है, पुराण का एक भाग वेतन के रूप में देना चाहिये।[1] उसमें क्रमश जब तक नीचे स्थल पर न पहुँच जाए, एक-एक पण की वृद्धि करते रहना चाहिये। महान कुएँ के निर्माण मे प्रति दिन दो पण पारिश्रमिक देना कहा गया है।[2] पत्थर के घर बनवाने में एक रत्ती प्रतिदिन पारिश्रमिक देना चाहिये। उसी भाँति कोठे के लिए डेढ़ पण और घर की रंगाई के लिए एक पण देना चाहिये।[3] वृक्षों के रोपने के लिए प्रतिदिन डेढ़ माशा, दलदल में पुल बाँधने के लिए दो पण और कौड़ी देना बताया गया है।[4] ताँबे के प्रत्येक पण के निर्माण में चार पण तथा काँसे और शीशे के गलाने में तीन पण देना चाहिये।[5] दिन की गणना करने के लिए कौडी समेत एक पण, सुवर्ण के लिए भी एक पण, रत्न के कुट्टिम (भूमि का ऊपरी स्तर) बनाने में एक पुराण, चाँदी के कार्यों में उसका अर्धभाग, स्फटिक मणि के छिद्र करने मे चार कौड़ी अधिक।[6] काँसे का ताल एवं धमनी बनाने में तीन पण, लाख के निर्माण कार्य में उसका आधा तथा गौ के दुहने मे चार कौड़ी एवं वस्त्र बुनने में एक हाथ के तीन पण देना कहा गया है।[7] भेड़ के वस्त्र (ऊनी) बनाने में, रथ बनाने में दश कौडी, दैनिक वेतन तथा वंशाजीव के लिए प्रतिदिन कौड़ी समेत पण का आधा भाग देना चाहिये।[8] लोहार एवं नाई के शिर मुण्डनार्थ दश कौड़ी, केवल दाढ़ी बनाने एवं नाखून काटने के लिए दो कौड़ी और स्त्रियों के नख आदि के रञ्जन के लिए कौड़ी समेत एक पण देना चाहिये। शिर के केशों को सँवारने के लिए चार पण देने चाहिये। पैर रगने आदि के लिए डेढ़ पण देना बताया गया है। धान्यों के रोपण में एक दिन के लिए एक पण वेतन देना कहा गया है।[9] नमक, सुपारी के आरोपण, दण्डपत्र के संस्कार

---

1. भवि० पु०, मध्यम पर्व, 2.4.10- 12
2. वही, 2.4.13
3. वही, 2.4.14
4. वही, 2.4.15
5. वही, 2.4.16
6. वही,2.4.17- 19
7. वही, 2.4.20- 21
8. वही, 2.4.22- 23
9. वही, 2.4.24-27

एवं मरिच के आरोपण में दो कौड़ी अथवा अधिक से अधिक दश तथा प्रत्येक हरवाहे को एक दिन के वेतन कौड़ी समेत एक पण देना चाहिये।[1] चक्रमण के लिए तीन पण, महिषों के लिए चार, पालकी आदि ढोने के लिए दश कौड़ी समेत एक पण देना कहा गया है।[2] दासी एव गधे द्वारा काम करने वाले को उससे दो कौड़ी अधिक देना चाहिये। तेल और क्षार वर्जित वस्त्र धोने में एक वस्त्र के लिए एक पण, लम्बे चौड़े वस्त्रों के लिए एक प्रस्थ क्रमश. बढा देना चाहिये। तुरन्त धुलवाने के लिए आधा अधिक देना कहा गया है।[3] कुम्हार से मिट्टी खोदने, ऊख पेरने, सहस्र पुष्पो की सजावट में दश कौड़ी, माला बाँधने में एक कौड़ी और पहनने की माला बनाने में उससे दुगना देना चाहिये।[4] मालती, तुलसी एवं चमेली की माला बनाने में तीन पण देना चाहिये।[5] दशांग, धूप तथा बीस अग वाले धूप के लिए तीन पण देना कहा गया है।[6]

यज्ञादि कर्म में दक्षिणा की व्यवस्था

आलोचित पुराण में आख्यात है कि शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणा रहित एवं परिणामविहीन कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा यज्ञ कभी सफल नही होता। जिस यज्ञ का जो माप बताया गया है उसी के अनुसार विधान करना चाहिये। मान रहित यज्ञ करने वाले व्यक्ति नरक में जाते है।[7]

भविष्य पुराण के अनुसार तत्कालीन समाज मे मुद्रा के रूप मे दक्षिणा देने का प्रचलन आरम्भ हो चुका था। बड़े–बड़े उद्यानों की प्रतिष्ठा–यज्ञ में दो सुवर्ण मुद्रा, कूपोत्सर्ग में आधी सुवर्ण मुद्रा, तुलसी एवं आमलक की याग मे एक सुवर्ण मुद्रा दक्षिणा के रूप मे देना चाहिये। लक्ष होम में चार

---

1. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 2.4.28– 29
2. वही, 2.4.30
3. वही, 2.4.31– 32
4. वही, 2.4.33– 34
5. वही, 2.4.36
6. वही, 2.4.44
7. वही, 2.3.1– 2

सुवर्ण मुद्रा, कोटि होम, देव प्रतिष्ठा तथा प्रसाद के उत्सर्ग में अट्ठारह सुवर्ण मुद्राएँ दक्षिणा के रूप मे देने का विधान है।[1] तडाग तथा पुष्करिणी याग मे आधी–आधी सुवर्ण मुद्रा देनी चाहिये। महादान दीक्षा वृषोत्सर्ग में तथा गाय श्राद्ध में अपने विभव के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये।[2] महाभारत के श्रवण में अस्सी रत्ती तथा ग्रहयाग, प्रतिष्ठाकर्म, लक्षहोम, अयुतहोम तथा कोटि होम में सौ–सौ रत्ती सुवर्ण देना चाहिये।[3] इसी प्रकार शास्त्रों में निर्दिष्ट सत्पात्र व्यक्ति को ही दान देना चाहिये, अपात्र को नहीं।[4] यज्ञ होम में द्रव्य, काष्ठ, घृत आदि के लिए शास्त्र निर्दिष्ट विधि का ही अनुसरण करना चाहिये।[5] यज्ञ, दान तथा व्रतादि कर्मों में दक्षिणा तत्काल देनी चाहिये। भूमि के कार्य में भूमि तथा वस्त्र की दक्षिणा, पान करने योग्य कार्यों में किसी पेय पदार्थ की दक्षिणा और अन्न मे अन्न की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। इसी प्रकार गज के कार्यों में बकरी की दक्षिणा, अश्व के निमित्त भेड की दक्षिणा, पशुओं के उद्धेश्य से चौपायों की दक्षिणा एवं देव कार्यों मे देव दक्षिणा देना बताया गया हैं।[6]

आलोचित पुराण में यह विधान भी उल्लिखित है कि नियत दक्षिणा देने में असमर्थ होने पर यज्ञ कार्य की सिद्धि के लिए देव प्रतिमा, पुस्तक, रत्न, गाए, धान्य, तिल, रूद्राक्ष, फल एवं पुष्प आदि भी दिए जा सकते हैं।[7]

---

1. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 2.3.5–7
2. वही, 2.3.8–9
3. वही, 2.3.11–12
4. वही, 2.3.13
5. वही, 2.3.15
6. वही, 2.3.21–24
7. वही, 2.3.28–29

सप्तम अध्याय

भविष्य पुराण में वर्णित धर्म एवं धार्मिक जीवन

भविष्य पुराण में वर्णित धर्म एवं धार्मिक जीवन

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि सभी वर्णों के कल्याणार्थ पुराण साहित्य का सृजन हुआ है।[1] आलोचित पुराण में प्रतिपादित धर्म का स्रोत वेद तथा स्मृति हैं। भविष्य पुराण में आख्यात है कि श्रुतियों एवं स्मृतियों द्वारा अनुमोदित धर्म का सर्वदा पालन करते हुए मनुष्य इस लोक में परम कीर्ति उपार्जित कर इन्द्र लोक को प्राप्त करता है।[2] वेद एवं स्मृति सम्मत धर्म का अनुमोदन करते हुए सदाचरण को सर्वोपरि मान्यता प्रदान की गई है। आलोचित पुराण में आख्यात है कि सदाचरण ही श्रेष्ठ धर्म है।[3] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि सभी धर्मों का मूल वेद तथा स्मृतियाँ हैं। सत्पुरूषों द्वारा आचरित शील सदाचार एवं जिन कर्मों से आत्मा को वास्तविक संतोष हो इन सबको ज्ञान के नेत्र से भली-भाँति देखकर धर्म का निश्चय किया जाता है।[4] पुराणों का मुख्य ध्येय धर्म और नैतिकता को संयुक्त कर मनुष्य को सदाचरण के लिए प्रेरित करना है ।[5] वस्तुतः आलोचित पुराण में वैदिक धर्म को परिवर्तित परिस्थियों में परिष्कृत एवं परिवर्धित करने की चेष्टा की गई है। आलोचित पुराण में आख्यात है कि अच्छे शील वाला शूद्र ब्राह्मण से उत्तम है तथा आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी हीन कहा गया है।[6] अपने ऊपर उपकार करने वाले का कोई महान प्रत्युपकार करना ही मानव धर्म है।[7] पुराणकार ने शुभ एवं अशुभ कर्मों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। ब्राह्म पर्व के अध्याय 190 तथा 191 में अधर्म अथवा पापकर्मों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।[8] पुराणकार ने प्रस्तावित किया है कि पापकर्म

---

1. भवि० पु० ब्राह्मपर्व, 1.65
2. वही, 7.54
3. वही, 1.81 - 84
4. वही, 7.52 - 53
5. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स भाग-10, पृ० 443 पर पार्जीटर द्वारा प्रस्तुत 'द पुराणाज' नामक लेख।
6. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 44.31
7. वही, 19.50-51
8. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 190.2-21, 191.1-29

का प्रायश्चित करना आवश्यक है अन्यथा उस पाप का नाश सम्भव नहीं।[1] शुभकर्म अथवा धर्माचरण करने वाले प्राणी सुखपूर्वक यमपुरी को प्रस्थान करते हैं।[2] इसके विपरीत जो मनुष्य क्रूर कर्म करने वाले एवं पाप में आसक्त रहने वाले हैं, वे दुर्गम पथ द्वारा यमपुरी प्रविष्ट कराए जाते हैं।[3] अधर्म अथवा पापकर्म करने वालों के लिए नरक की घोर यातनाओ एवं दुर्गम मार्ग का उल्लेख ब्राह्मपर्व में किया गया है।[4] भविष्य पुराण के ही प्रतिसर्ग पर्व के चतुर्थ खण्ड में भी धर्म एवं अधर्म को व्याख्यापित करते हुए उल्लिखित है कि धर्म वेदमय हे तथा जो कुछ भी वेदरहित है वह अधर्म है।[5] देवगण धर्म एवं असुरगण अधर्म को अपनाते हैं किन्तु इन देवो और दैत्यों से हीन एवं दूषित जो अन्य मार्ग हैं, उसे 'विधर्म' कहा गया है। उसमें रहने वाले प्राणी सदैव व्यथित रहते हैं, जिनके लिए तामिस्र, अधतामिस्र, कुम्भीपाक, रौरव, महारौरव, मूर्तिरय, अव्यंत्र, शाल्मल, असि पत्र वाला वन आदि इक्कीस (21) स्थानो की ब्रह्मा ने रचना की है।[6]

आलोचित पुराण के मतानुसार वेद, स्मृति, सदाचार एवं अपनी आत्मा के अनुकूल प्रिय कार्य ये चारों धर्म के साक्षात् लक्षण कहे गए हैं।[7] अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप और ध्यान यही दशधर्म के साधन बताए गए हैं।[8] पद्म पुराण में भी धर्म के इन्हीं दश लक्षणों का प्रतिपादन किया गया है।[9] मनु ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, ह्रीः, धैर्य, विद्या, दान, अक्रोध को धर्म का दश लक्षण बताया है।[10]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 191.27
2. वही, 192.4
3. वही, 192.8
4. वही, 192.11-29
5. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.11.22-24
6. वही, 4.11.27-30
7. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 7.57
8. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 189.34
9. पद्म पु०, भूमिखण्ड, 69.5
10. मनुस्मृति

सत्व, रज एवं तम इन त्रिगुणो की उपलब्धि भी धर्म द्वारा ही आख्यात है। धर्म द्वारा ही अर्थ एवं काम की उत्पत्ति होती है एवं मोक्ष की प्राप्ति भी धर्म द्वारा ही संभव है। अतएव धर्माचरण परमावश्यक है।[1]

कर्मयोग

आलोचित पुराण में कर्मयोग के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के व्रतोपवासों एवं अन्तर्वेदी, बहिर्वेदी कर्मों की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। निष्काम कर्म, व्यसनादिक कर्म अन्तर्वेदी कर्म के रूप हैं तथा उससे भिन्न कर्म बहिर्वेदी के।[2] देवताओं की मूर्ति स्थापन, पूजन, पौंसला स्थापन, जलाशय दान, ब्राह्मणों को संतुष्ट करना, गुरूओं की सेवा करना आदि बहिर्वेदी कर्म आख्यात हैं।[3] कर्मयोग के अन्तर्गत शमन, दमन, दया, दान निर्लोभ त्याग आर्पव, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिक होना, श्रद्धा, इन्द्रिय संयम, देवताओं की अर्चा, अहिंसा, सत्यवादी, चुगली न करना, पवित्रता, आचार कर्म, कृपा करना आदि सद्गुणों को समाविष्ट किया गया है। ये सभी वर्गों के लिए विहित एवं सनातन धर्म हैं।[4] आलोचित पुराण में साधक को सिद्धि प्राप्ति के लिए तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं- (1) मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, (2) वाणी और शरीर द्वारा किए गए कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, (3) मन और शरीर द्वारा किए गए कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति होती है। मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है।[5] अन्यत्र उल्लिखित है कि संकल्प से कामना की उत्पत्ति होती हे, यज्ञादि कार्यों में सर्वत्र इसी संकल्प का आस्तित्व रहता है। यही नहीं व्रत नियम एवं अन्य धर्म कार्य भी संकल्प उत्पन्न होने वाले कहे जाते हैं। चूँकि काम्य कर्म एवं निष्काम कर्म दोनों ही प्रशस्त नहीं माने गए हैं, अतएव

---

1. भवि० पु०, मध्यमपर्व, 1.1.19-20
2. वही, 1.9.9
3. वही, 1.9.2-3
4. वही, 1.1. 30-32, वामन पुराण, 16.2-5, मनुस्मृति, 14.92-138, पद्म पु०, सृष्टि खण्ड, 1.27-29, भागवत पु., 7.11.5.12
5. भवि० पु०, प्रतिसर्ग पर्व, 2.17.14-17

मनुष्य को सत्पुरुषों द्वारा आचरित शील, सदाचार एवं जिन कर्मों से अपनी आत्मा को वास्तविक सन्तोष हो ऐसे कर्मों को ज्ञान के नेत्रों से भली-भाँति देखकर करना चाहिये।[1]

ज्ञान योग

आलोचित पुराण में कर्मयोग के साथ ही साथ ज्ञानयोग को भी समन्वित किया गया है। मनुष्य जो कुछ भी कर्म करे, उसका सम्पादन ज्ञानचक्षुओं से भली-भाँति परखने के पश्चात ही करे।[2] अन्यत्र उल्लिखित है कि जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है। संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है।[3] इस प्रकार कह सकते हैं कि आलोचित पुराण में ज्ञानयोग को कर्मयोग से अधिक महत्व प्रदान किया गया है। एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि ज्ञान समेत कर्म द्वारा ही धर्म की प्राप्ति सम्भव है।[4] प्रवृत्ति एवं निवृत्ति ये दो प्रकार के वैदिक कर्म बताए गए हैं। इनमें ज्ञान पूर्वक कर्मों के आचरण द्वारा प्राणियो की निवृत्ति और उससे हीन कर्मों द्वारा प्रवृत्ति होती है। निवृत्ति कर्मों द्वारा ही उत्तम पद की प्राप्ति होती है। अन्यथा मोक्ष प्राप्ति असम्भव है।[5] इस ज्ञान की प्राप्ति योग द्वारा ही सम्भव है। तिल में तेल, गाय में क्षीर एवं काष्ठ में अग्नि के अदृष्ट रहने के सदृश सभी पदार्थों में अदृष्ट परमात्मा की प्राप्ति ही मोक्ष है। जिसके लिए प्रयत्नशील मनुष्य को सर्वप्रथम इन्द्रिय पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। प्राणायाम करने से सभी दोष, धारणा से पाप, प्रत्याहार, संसर्ग और ध्यान करने से संसारी गुणों की निवृत्ति होती है। इस प्रकार योग में स्थित होकर सूर्य मण्डल की प्राप्ति होती है। जहाँ पहुँचकर मनुष्य को शोक नहीं होता यही परम सौर पद है मनुष्यों के लिए वही ज्ञेय एवं मोक्षरूप है इसी को अपना कर ऋषियों ने मोक्ष प्राप्त किया।[6]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 7.49-53
2. वही, 7.53
3. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 2.18.19- 20
4. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.1.27
5. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.1.28- 29
6. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 145.1-26

भक्ति योग

भक्ति योग को पौराणिक साहित्य में प्रश्रय दिया गया है। इसका प्रमुख कारण सम्भवत समाज के सभी वर्गों के मनुष्यों को एकता के सूत्र में बाँधने तथा आत्मा को परमात्मा से साक्षात्कार कराने का अवसर विहित बनाना था। पौराणिक धर्म का दृष्टिकोण उदार था।[1]

भक्ति भाव उत्तम प्रीति धर्म, धार्मिक भावना और प्रतिपत्ति (कर्त्तव्य ज्ञान) यही श्रद्धा के पाँच नामान्तर कहे गए हैं।[2] आलोचित पुराण में भक्ति एवं श्रद्धा के माहात्म्य को वर्णित किया गया है कि दुःखी, हीन अथवा गुणी पुरुषों को जो श्रद्धापूर्वक अत्यल्प भी दान करता है, वही सफलतापूर्वक लोकों की प्राप्ति करता है क्यों कि श्रद्धा ही दान स्वरूप है।[3] श्रद्धा ही उत्तम दान, उत्तम तप, यज्ञ तथा उत्तम उपवास वाला व्रत है।[4] धर्म के पूर्व, मध्य एवं अंत में श्रद्धा स्थित है क्यों कि धर्म का नामान्तर ही श्रद्धा है।[5] श्रद्धाहीन देवगण भी शारीरिक कष्ट एवं अतुल धनराशि द्वारा सूक्ष्म धर्म की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते। श्रद्धाहीन कोई भी अपना सर्वस्व अथवा जीवनदान ही क्यों न प्रदान करे उससे कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता।[6]

जो भक्ति पूर्वक सूर्य के दर्शन करते हैं उन्हें यज्ञफल की प्राप्ति होती है।[7] जप यज्ञ विहीन होकर भी भक्ति पूर्वक दिए गए दान से पुण्य फल की प्राप्ति होती है।[8] महाधनवान होने पर भी भक्तिहीन होने से पुण्य फल की प्राप्ति नहीं होती।[9]

---

1. गोविन्द चन्द पाण्डे द्वारा सम्पादित, भारतीय संस्कृति पत्रिका का पृ. 215
2. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 189-29
3. वही, 189.32
4. वही, 189.33
5. वही, 187.9
6. वही, 187.11-13
7. वही, 187.72
8. वही, 187.74
9. वही, 162.28

सौर धर्म

सूर्य-प्रमुख देवता के रूप में

भविष्य पुराण में विवृत देवताओं में सर्वाधिक प्रतिष्ठित देवता सूर्य माने गए हैं। सूर्य को इस सम्पूर्ण संसार का कर्त्ता बताया है, जो समस्त भुवन मण्डल को प्रकाशित करते हैं।[1] भास्कर देव ने ही तीनों भुवनो की सृष्टि की है।[2] प्रस्तुत पुराण में अनेकत्र सूर्य की महिमा व्याख्यापित की गई है। सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।[3] सूर्य ही सर्वात्मा समस्त लोको के ईश, महादेव एवं प्रजापति हैं तथा त्रैलोक्य के मूल कारण हैं। सूर्य द्वारा लोकों की स्थिति एवं प्रलय पहले से ही निश्चित है। जगत के श्रेष्ठ ग्रह, प्रज्ज्वलित एवं उनका उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं। उन्हीं में उनका लय होता है और बार-बार जन्म। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, समस्तमास, वर्ष, ऋतुएँ, चारों युग, काल तथा बारह रूप धारण करने वाले प्रजापति सूर्य हैं। चर एवं अचर रूप तीनों लोकों को इन्होंने ही प्रकाशपूर्ण बनाया है।[4]

एक स्थल पर शाङ्.र्गपाणि सूर्य का उल्लेख प्राप्त होता है, जो शंख चक्र गदा धारण करते हैं।[5] आलोचित पुराण में आख्यात है कि जब रूद्र देव ब्रह्मा के शिर का कपाल भाग लिए अत्यन्त कठोर यंत्रणा से संतप्त इतस्ततः घूम रहे थे तब प्रमथगणों के मार्गदर्शन से उन्होंने सूर्यदेव की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर सूर्य देव ने उन्हें विशुद्ध होने का वरदान दिया। तब से रूद्र देव 'दिण्डी' नाम से विख्यात हुए।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 1.1
2. वही, 2.68
3. वही, 66.81 - 82
4. वही, 161.4 - 8, 123.11 - 24, 122.3 - 8
5. वही, 215.3
6. वही, 124.2-8

प्रतिपाद्य पुराणानुसार सूर्य की ही पूजा करके ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व, देवनायक विष्णु ने विष्णुत्व तथा महादेव ने महादेवत्व धर्म की प्राप्ति की। सहस्र आँख वाले देवेश इन्द्र ने भी अन्धकार नाशक सूर्य की पूजा करके इन्द्रत्व की प्राप्ति की। इसी प्रकार मातृकाएँ, देव, गन्धर्व, पिशाच नाग एवं राक्षस गण ईशान तथा सुराधिपति सूर्य की सदैव पूजा करते है। यह समस्त विश्व सूर्य देव में नित्य स्थित है। अतः स्वर्ग के इच्छुकों को चाहिये कि सूर्य की पूजा अवश्य करे। जो मनुष्य सूर्य की पूजा नही करता वह पुरूष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अधिकारी कभी नहीं हो सकता।[1]

अन्यश्च उल्लिखित हे कि सूर्य ने ही ब्रह्मा को सृष्टि रचने का[2], शिव को संहार का[3] और विष्णु को व्योम रूप में चक्र, जो समस्त शत्रुओं का नाश करने वाला है एवं लोकों के पालन का वरदान दिया।[4]

सूर्य को अजन्मा, अव्यय (अप्रत्यय) एवं अप्रमेय कहा है।[5] वे अविनाशी, अद्वितीय एवं सत् असत् से परे हैं।[6] उन्हीं के हाथों द्वारा लोक पूजित ब्रह्मा और विष्णु एवं ललाट द्वारा शिव उत्पन्न हुए हैं।[7] यही चार मुख वाले ब्रह्मा, कालरूप शिव एवं सहस्रों शिर वाले स्वयंभू पुरूष हैं।[8] इस प्रकार, सृजन, संक्षय एवं निरीक्षण का कार्य तीनों मूर्तियों द्वारा वे स्वयं करते हैं।[9]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 174.1 – 6
2. वही, 155.41
3. वही, 155.66 – 67
4. वही, 156.17 – 21
5. वही, 60.4
6. वही, 61.1
7. वही, 60.5
8. वही, 77.7 – 8, भवि० पु०, प्रतिसर्ग पर्व, 4.7.23 – 24
9. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 77.11

वही अव्यक्त कारण, गंध, वर्ण, रस, शब्द एवं स्पर्श से हीन जगत के उत्पत्ति स्थान, महद्भूत, परम तथा सनातन ब्रह्न, सभी प्राणियों के निग्रह करने वाले, अव्यक्त, आदि, अंतहीन, अजन्मा, सूक्ष्मरूप, त्रिगुण, एवं नाश करने वाले आकारहीन, अविज्ञेय एवं परमपुरूष हैं। वही महात्मा समस्त संसार में व्याप्त हैं।[1]

कृष्ण पुत्र साम्ब जो कुष्ठरोग से पीड़ित थे, उन्होंने सूर्य की स्तुति की एवं चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्य की प्रतिष्ठा कराई एवं उसे मगों को समर्पित कर दिया। इस प्रकार उन्हें कुष्ठ रोग से मुक्ति प्राप्त हुई एवं वे विशुद्ध हुए।[2]

सूर्य के द्वादशरूप

आलोचित पुराण में आख्यात है कि अदिति नाम की दक्ष की कन्या थी वही कश्यप की स्त्री हुई एवं उन्हीं के गर्भ से एक इस भाँति का अण्डा उत्पन्न हुआ जिसके अन्तःस्थल में भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक भी निहित था। उसी अण्डे से द्वादश रूप सूर्य का अविर्भाव हुआ, जिसका नव सहस्र योजन का विस्तार और सत्ताइस सहस्र योजन परिणाद (मण्डल) है।[3] सूर्य के द्वादश रूप की व्याख्या भविष्य पुराण में प्राप्त होती है। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर एवं रवि यही उनके सामान्य नाम हैं। इन नामों में कतिपय ऐसे भी नाम हैं, जिनकी प्रतिष्ठा वैदिक काल में हो चुकी थी। पर इन नामों के अधिष्ठाता देवता सूर्य के पर्याय नहीं थे। वे सूर्य के सहचर और सहभावी मात्र थे। उदाहरणार्थ वैदिक पंक्तियों में आदित्य शब्द से उन देवताओं के पद की सूचना मिलती है, जो समूह में स्थित होकर सूर्य के चक्र को अलंकृत करते हैं अथवा चक्र की गति का निर्देश

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 77.2- 4
2. वही, 140.1- 7
3. वही, 78.9- 10

करने में सहायता प्रदान करते हैं। पुराणों में आदित्य शब्द से देव पद मात्र का द्योतक न होकर देवता के विशिष्ट अभिधान का बोध होता है जो सूर्य स्वयं हैं।[1] विष्णु, धाता, भग, पूषा, इन्द्र मित्र, वरूण, अर्यमा, विवस्वान, अंशुमान, त्वष्टा और पर्जन्य ये सूर्य के पृथक-पृथक रूप हैं, जिनका बारहो मासो में क्रमश. उदय हुआ करता है।[2]

चैत में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ मे विवस्वान, अषाढ़ में अंशुमान, श्रावण मे पर्जन्य, भादों में वरूण, अश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, मार्गशीष में मित्र, पौष में पूषा, माघ में भग और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य ताप प्रदान करते हैं।[3] विष्णु नामक सूर्य बारह सौ रश्मियों द्वारा, अर्यमा तेरह सौ रश्मियों द्वारा, विवस्वान चौदह सौ, अंशुमान पंद्रह सौ, पर्जन्य चौदह सौ, वरूण तेरह सौ, इन्द्र बारह सौ, धाता ग्यारह सौ, तथा त्वष्टा, मित्र और भग ग्यारह सौ किरणों द्वारा ताप प्रदान करते हैं।[4] एक अन्य स्थल पर सूर्य की द्वादश मूर्तियों की व्याख्या प्राप्त होती है। प्रथम मूर्ति जिसका नाम इन्द्र है, दानव एवं असुरों के नाश करने के लिए देवराज की पदवी प्राप्त हुई है। दूसरी मूर्ति जिसे धाता कहते हैं वह प्रजापति होकर प्रजाओं का सृजन करती है। तीसरी मूति पर्जन्य उनकी किरणों में स्थित होकर अमृत की वर्षा करती है। चौथी मूर्ति पूषा मगों में स्थित होकर नित्य प्रजापालन करती है। अर्यमा नाम की छठी मूर्ति प्रजा संरक्षण के लिए नगरों में रहती है। भग नामक मूर्ति भूमि में स्थिति बनाकर पृथ्वी धारण करने वाले पर्वतों में सदैव स्थित रहती है। विवस्वान अग्नि में स्थित होकर प्राणियों के जठराग्नि द्वारा अन्न पचाती है। अंशुमान चन्द्रमा में स्थित होकर जगत की वृद्धि करती है। दसवीं मूर्ति जो विष्णु रूप हे देवों के शत्रुओं का विनाश करने के लिए नित्य उत्पन्न होती रहती है। वरूण नाम से ख्यात मूर्ति प्राणियों आदि को प्राणदान देने के नाते समस्त जगत उसके आश्रित रहता है। मित्र नामक मूर्ति लोक कल्याण के लिए चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित है। इस प्रकार सूर्य अपनी बारहों मूर्तियों द्वारा सम्पूर्ण जगत में व्याप्त होकर स्थित है।[5]

---

1. एस.एन. राय, अर्ली पुराणिक एकाउण्ट ऑफ सन एण्ड सोलर कल्ट पर आधारित दृष्टव्य, जर्नल ऑफ इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज 1963, पृ.44-45
2. एस.एन राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 48, वी.सी.श्रीवास्तव, सन वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 119, 213
3. भाव0 पु0, ब्राह्मपर्व, 78.55-57
4. वही, 78.58-60
5. वही, 74.8.26

सूर्य लोक एवं सूर्य परिवार

भविष्य पुराण में नारद द्वारा सूर्य परिवार का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य लोक में गन्धर्व गण गान करते हुए अपसराएँ नृत्य करती हुई, यक्ष राक्षस तथा पन्नग रक्षा करते हुए एवं ऋषिगण सूर्याराधना करते हुए स्थित हैं। तीनों सन्धयाएँ व्रज तथा बाणों को लिए सूर्य को घेरे हुए स्थित हैं। आदिगण, वसु, रूद्र मरूत तथा अश्विनी कुमार एवं अन्य देवगण तीनों सन्ध्याओं में सूर्य की पूजा करते हैं। वहाँ पर इन्द्र देव, शुक्रदेव एवं शिव भी तीनों संध्याओं में उनकी पूजा करते हुए स्थित हैं। गरूड़ के बड़े भाई अरूण उनके रथ के सारथी हैं। आकाश रूपी रानी और पृथ्वी रूपी निक्षुभा नाम की दोनां स्त्रियाँ उनके पार्श्व में स्थित हैं। अन्य नाम वाले देवगण उन्हें चारो ओर से घेरे बैठे हैं। पिंगल नामक लेखक दण्डनायक, चित्रवर्ण वाले राजा और श्रोष दो पक्षी दोनो द्वारपाल एवं मेरू के चारों शिखरों की भाँति वहाँ का आकाश सुशोभित है। उनके सामने दिण्डी और चारों दिशाओं में देवता लोग स्थित थे।[1]

आलोचित पुराण में आख्यात है कि विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा की राज्ञी, द्यौ एवं त्वाष्ट्री के नाम से ख्यात हुई।[2] सूर्य द्वारा संज्ञा के गर्भ से तीन सन्तान उत्पन्न हुए।[3] छाया को निक्षुभा कहा है।[4] जिससे तीन सन्ताने हुई। दो पुत्र श्रुतश्रवा एवं श्रुतकर्मा नामक दो धर्मज्ञ पुत्र हुए जो अपने पूर्वज मनु के समान थे।[5] इनमें श्रुतश्रवा भावी सावर्णि मनु एवं श्रुतकर्मा शनैश्वर ग्रह हुआ।[6] छाया निक्षुभा से उत्पन्न पुत्री का नाम तपती रखा गया[7] पश्चात में यही विन्ध्यपर्वत के मूल भाग से निकल कर तापी नाम की नदी हुई।[8] सूर्य को संज्ञा से दो पुत्र हुए जो वैद्यों में सर्वोत्तम हैं अश्विनी कुमार के नाम से प्रसिद्ध

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 76.1.15
2. वही, 79.17
3. वही, 79.23
4. वही, 79.18
5. वही, 79.28
6. वही, 79.29
7. वही, 79.30
8. वही, 79.74 – 76

हुए।[1] सूर्य की दो अन्य सन्ताने यमुना और यम हैं।[2] सूर्य की रेवतक नामक संतान भी संज्ञा से ही उत्पन्न हुई।[3]

क्रिया योग

सौर धर्म में क्रिया योग का विशेष महत्व है जिसके अन्तर्गत यज्ञ, पूजन, नमस्कार, जप व्रतोपवास और ब्राह्मण भोजन आदि से सूर्य नारायण की आराधना करना इसके मुख्य उपाय हैं।[4] क्रिया योग के लिए दीक्षित होना अनिवार्य है। क्योंकि दीक्षाहीन मूर्खों के लिए वास्तव में सूर्य का ज्ञान उनकी स्तुति एवं उनका दर्शन सर्वथा असम्भव होता है।[5] दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा वाले व्यक्ति को मन, वचन और कर्म से हिंसा नहीं करनी चाहिये। सूर्य भगवान की भक्ति करनी चाहिये, दीक्षित ब्राह्मणों को सदा नमस्कार करना चाहिये किसी से द्रोह नहीं करना चाहिये, सभी प्राणियों को सूर्य के रूप में समझना चाहिये। मन, वचन और कर्म से जीवों में पापबुद्धि नहीं करनी चाहिये। ऐसा ही पुरूष दीक्षा का अधिकारी होता है।[6] एक अन्य स्थल पर आख्यात है कि सूर्य मण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं कुलीन शूद्र तथा स्त्रियाँ दीक्षित हैं। सूर्यशास्त्र के जानने वाले सत्यवादी, शुचि वेदवेत्ता ब्राह्मण को गुरू बनाना चाहिये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करना चाहिये।[7] सूर्यदेव के स्नान, दान जप एवं होमादि सभी कर्म एवं दाढ़ी के बाल बनवाने से पुरूष दीक्षित होता है।[8] अतः सूर्य के भक्त को सदैव मुण्डन कराना चाहिये।[9] सौर सम्प्रदाए में चारों वर्णों के पुरूषों को दीक्षित होने का अधिकार प्राप्त है।[10]

---

1. भवि० पु० , ब्राह्मपर्व, 79.56
2. वही, 47.4
3. वही, 79.58
4. वही, 61.11.14
5. वही, 63.7
6. वही, 63.17-22
7. वही, 149.21-23
8. वही, 58.42-43
9. वही, 58.43
10. वही, 58.44

आलोचित पुराण में क्रिया योग की व्याख्या मिलती है, जिसका उपदेश स्वयं सूर्य देव ने किया है कि अपना मन, भक्ति, भजन, आत्मा सब कुछ भगवान सूर्यदेव को समर्पित करो।[1] गीता में भी भगवान कृष्ण इसी प्रकार का उपदेश देते हैं।[2]

सूर्याराधना में क्रिया योग से की गई भक्ति का सर्वाधिक महत्त्व है। सूर्य भगवान का अनुग्रह उसी पुरूष पर होता है जो सब प्राणियों के लिए अपनी समान दृष्टि रखता है एवं भक्ति पूर्वक उनकी आराधना करता है।[3] यदि सूर्य की आराधना करना चाहते हैं पहले वैवस्वत बनें। क्योंकि बिना विधिपूर्वक सौरी दीक्षा के उनकी उपासना पूरी नहीं हो सकती।[4] वैवस्वत पुरूष के लक्षण उसी प्रकार विवृत है जिस प्रकार दीक्षित पुरूष के लक्षणों का उल्लेख पहले किया जा चुका है जो मनुष्य बाहरी विषयों में निरपेक्ष रहकर भक्तिपूर्वक केवल सद्भावना द्वारा सूर्य की पूजा में क्रियाशील रहता है एवं जिसके अन्त.करण में भेदभाव न हो तथा जो समस्त विश्व को भानुमय देखे वह प्राणी वैवस्वत है।[5] वैवस्वत पुरूष जिस गति को प्राप्त करता है वह गति तपस्या तथा अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा भी मनुष्य को प्राप्त नहीं हो सकती।[6]

सूर्य भक्त को सर्वप्रथम निर्मल जल से स्नान करके आचमन करना चाहिये।[7] जल मे स्थित रहकर जल में आचमन नहीं करना चाहिये, क्योंकि जल में सूर्य, अग्नि एवं माता देवी सरस्वती सदैव सन्निहित रहती हैं।[8] इसी प्रकार का उल्लेख साम्ब पुराण में भी प्राप्त होता है।[9] प्रसन्नचित होकर नियमपूर्वक तीन बार आचमन करना चाहिये।[10] दो बार समार्जन, तीन बार अभ्युक्षण तथा सिर, नाक, कान, आँख

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 62.18 – 20
2. वही, 9.34
3. वही, 120.9 –10
4. वही, 120.19 – 28
5. वही, 120.30 – 41
6. वही, 120.40 – 41
7. वही, 143.6
8. वही, 143.8
9. साम्ब पु0, 36.5
10. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 143.10

आदि का क्रमश स्पर्श करें।[1] पवित्र देश में आचमन के उपरान्त सूर्य को नमस्कार करने से पवित्रता प्राप्त होती है।[2] जो बिना आचमन किये सूर्य देव को नमस्कार करता है वह नास्तिक कहा जाता है। वेदों में आख्यात है कि देवता पवित्रता के इच्छुक होते हैं।[3] नमस्कार की क्रिया का प्रचलन वैदिक काल में ही हो गया था। तैन्तिरीय संहिता में सूर्य नमस्कार तथा ध्यान को महत्ता दी गई है सूर्य के अश्व भी नमस्कार के योग्य उल्लिखित किए गए हैं।[4] परवर्ती हिन्दू धर्म में सूर्य नमस्कार को एक विशिष्ट पूजा पद्धति की मान्यता प्रदान की गई । महाभारत तथा रामायण में भी सूर्य नमस्कार का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] वैदिक पूजा पद्धति के अन्तर्गत प्रशंसापरक एवं प्रार्थनात्मक स्तुति गीतियों की पुनरावृत्ति की जाती थी। कालान्तर में सौरोपासना, पुष्प माला एवं दीप आदि से होने लगी थी। पुष्प- दीप, माला आदि द्वारा पूजा का प्रचलन महाकाव्यकाल से ही अस्तित्व में आ चुका था।[6]

चन्दन मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने से पुष्प, फल की प्राप्ति होती है।[7] सुगन्धित जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करने से देवलोक की प्राप्ति होती है।[8] सुवर्ण के अर्घ्य पात्र में स्थित रक्त चन्दन मिश्रित जल द्वारा अर्घ्य प्रदान करने से करोंडो वर्षों तक स्वर्ग लोक में सम्मान प्राप्त होता है उसी प्रकार भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए घी समेत गुगुल की धूप प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति हो जाती है।[10] इसी प्रकार लोहबान की धूप और कपूर मिश्रित अगुरू की धूप प्रदान करने से पुण्य फल की प्राप्ति होती है।[11] जल, क्षीर, कुशाग्र भाग, घी, दही, शहद, रक्त करवीर और रक्त चन्दन में 'अष्टांग अर्घ्य' उल्लिखित है।[12] सूर्य देव को रक्त चन्द और कवेर के पुष्प विशेष प्रिय हैं क्योंकि विश्वकर्मा/द्वारा सूर्य के शरीर को खरादते समय इन्हीं वस्तुओं का लेप लगाया गया था।[13]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 143.11
2. वही, 143.12
3. वही, 143.13
4. ऋग्वेद, 1.115.3
5. महाभारत, 3.3.68, रामायण, 6.105.16-20
6. महाभारत, 3.3.33 "पुष्पोपहारैरबलिभिर्चियत्वा दिवाकरम्।"
7. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 93.11
8. वही, 93.12
9. वही, 93.13
10. वही, 93.15
11. वही, 93.17
12. वही, 167.37-38
13. वही, 47.35-36

सौर सम्प्रदाए में गोदान की प्रथा का भी प्रचलन दृष्टिगोचर होता है। भविष्य पुराण में आख्यात है कि सूर्य के लिए धेनु समर्पित करने से निश्चित लक्ष्मी तथा देवलोक की प्राप्ति होती है।[1] सूर्य के लिए सौ गोदान करने से राजसूय यज्ञ एवं सहस्र गोदान करने से अश्वमेध के समान फल की प्राप्ति होती है।[2]

जो भक्तिपूर्वक सूर्य को स्नान कराते हैं उन्हें राजसूय तथा अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है[3] सूर्य के स्नान किए हुए जल का कभी उल्लंघन नहीं होना चाहिये अन्यथा मनुष्य नरकगामी होता है।[4] जल, शहद एवम् ऊख के रस द्वारा स्नान कराने से मनुष्य को अभीष्ट की सिद्धि होती है। कपिला गाय के पञ्चगव्य से कुश द्वारा मंत्र से पवित्र स्नान कराना 'ब्रह्मस्नान' कहलाता है।[6] वर्ष में एक बार भी ब्रह्मस्नान कराने से समस्त पापों से मुक्ति हो जाती है।[7] भविष्य पुराण में सूर्य स्नान के लिए विभिन्न नियमों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।[8]

आलोचित पुराण में आख्यात है कि तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा करनी चाहियो।[9] जिसमें रक्तवर्ण की पूर्व, चन्द्रमा की भाँति मध्यमा एवं स्थल कमल की भाँति तीसरी सन्ध्या बताई गई है।[10]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 93.34
2. वही, 93.36
3. वही, 95.5
4. वही, 95.7-8
5. वही, 95.9-10
6. वही, 163.8
7. वही, 163.9
8. वही, 163.8-31
9. वही, 76.8
10. वही, 76.5, सूर्य की पूजा पूर्वाह्न, मध्याह्न और सायं तीन बार वैदिक काल में की जाती थी। यहाँ पर वैदिक प्रभाव स्वीकार्य है, दृष्टव्य ऋग्वेद, 2.27.8, 5.76.3, 8.22.14, कौशितकी उपनिषद्, 2.7, वी० सी० श्रीवास्तव, सन वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ० 170-71

भविष्य पुराण के अध्याय 48-49 में मंत्र तंत्र का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस अध्याय में मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है। ये मुद्राएं हैं व्योम, रति, पद्मा, महाश्वेता, एवं अस्त्र। ये पाँच मुद्राएँ सभी कार्यों में सिद्धिदायक हैं।[1] मुद्रा के द्वारा ही सभी लोग संशोधित एवं रक्षित रहते हैं। इसलिए अर्घ्यदान देकर पूजा की समाप्ति में मुद्रा प्रयोग अवश्य करना चाहिये।[2] मुद्रा तान्त्रिक पूजा का एक विशिष्ट विषय है। मुद्रा के अनेक अर्थ होते हैं जिनमें चार अर्थ तांत्रिक प्रयोगों से सम्बन्धित हैं। 1- आसन, 2-अंगुलियों एव हाथों का प्रतीकात्मक ढंग, 3-पंच मकार एवं 4-वह नारी जिससे तांत्रिक योगी अपने को सम्बन्धित करता है।[3]

आलोचित पुराण में मण्डल बनाकर सूर्य पूजा का विधान उल्लिखित है। तीनों सन्ध्याओं में मण्डल बनाकर सूर्य पूजा करने से भाँति-भाँति की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।[4]

आलोचित पुराण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में मन्दिर निर्माण एवं प्रतिमा स्थापना का विशेष महत्व था। भविष्य पुराण में आख्यात है कि जो भक्त पुरूष प्रयत्न पूर्वक विशाल देव मन्दिर का निर्माण करके उसमें शीघ्रातिशीघ्र प्रेम-पूर्वक सूर्य देव की प्रतिमा का स्थापन करता है उसे दिव्य उपभोगों एवं सदैव अप्रमेय कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है।[5]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 49.25
2. वही, 49.30
3. दृष्टव्य पी0 वी काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र भाग-5, पृ0 65-66, आर0के0 पौड़वाल, एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ द आर्क्योलाजिकल डिपार्टमेन्ट (1109), पृ0 8 में मुद्रा प्रसंग में कवच, नेत्र तथा चक्र का भी उल्लेख है, स्मृतिचन्द्रिका, 1, पृ0 146-147 देवी भागवत, 11.16.98-102, आर्यमंजूश्रीमूलकल्प पृ0 380

4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 48.34-35, मण्डल के माध्यम से पूजा तान्त्रिक पद्धति थी, दृष्टव्य मत्स्य पुराण 58.22, 64.12-13, 62.15, 72.30, 74.6.9, बृहत्संहिता 47.24, ब्रह्मपुराण, 28.28, 61.1-3, वराह पुराण, 99.9.11, अग्नि पुराण,20, शारदा तिलक 3.113-118, ज्ञानार्णव तन्त्र, 260-15-17, महानिर्वाणतंत्र, 10.137-138, एकि हाई कान्ट्रीब्यूशन टूद स्टडी ऑफ मण्डल एण्ड मुद्रा, पृ0 57-91
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 137.1

आलोचित पुराण के प्रणयन काल के समय मन्दिर निर्माण द्वारा देवों की उपासना का प्रचलन बहुत ही विस्तार ग्रहण कर चुका था। इसमें उल्लिखित है कि विष्णु के भागवत, सूर्य के भग, शिव के भस्म भूषित ब्राह्मण मातृकाओं के मातृमण्डल के विद्वान और बुद्ध के शुक्ल वस्त्ररहित एवं रक्ताम्बरधारी उपासकों को चाहिये कि जो जिस देव का उपासक हो वे उस देव की प्रतिष्ठा कराए।[1]

वैदिक काल मे सौर सम्प्रदाय में मन्दिर निर्माण का प्रचलन नहीं प्राप्त होता। उस समय में सूर्य पूजा प्रतीकों के माध्यम से होती थी। किन्तु गृह्य से संकेत प्राप्त होते हैं कि पाँचवी चौथी शताब्दी ई0 पू0 तक हिन्दू समाज में मन्दिर परम्परा का विकास हो चुका था।[2]

भविष्य पुराण में सूर्य पूजा के मन्दिरका उल्लेख साम्बनगर के रूप में आता है। इसमें आख्यात है कि साम्ब ने चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्य की प्रतिष्ठा कराई।[3] यह स्थल साम्ब के द्वारा निर्माण कराए जाने के नाते साम्बपुर कहा जाता है।[4] इस स्थल का समीकरण साधारणत: चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित मुल्तान से किया जाता हे।[5] इस सुविख्यात मन्दिर का दर्शन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सातवीं शता0 ई0 में किया था। इस मन्दिर का वर्णन अबुजैद, अलमसूदी, अल-इस्तखारी, अल-इद्रीसी और अलबरूनी ने भी किया है।[6]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 137.5
2. वी0 सी0 श्रीवास्तव, सन वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ.322
3. भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, 139.88
4. वही, 140.3
5. स्टेटनक्रान, एच0 वान, इण्डिश सेक्निप्रीस्टेर साम्ब एण्ड देई शाकद्वीपीय ब्राह्मण, सारांश, पृ.279-80
6. इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-1, पृ.18-73

सौर धर्म में मन्दिर निर्माण, मूर्ति स्थापना, मन्दिर की स्वच्छता का विशेष महत्व है। आलोचित पुराण में आख्यात है कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवमंदिरों की भूमि को गोमय से शुद्ध करता है वह तत्काल पापमुक्त हो जाता है।[1] और श्वेत या रक्त वर्ण अथवा पीली मिट्टी द्वारा लीपने वाले को मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं।[2] जो चित्रभानु (सूर्य) की मूर्ति बनाकर उपवास रहते हुए सुगन्धित पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करते हैं उनके मनोरथ सफल होते हैं।[3] जो मनुष्य सूर्य मन्दिर में झाडू द्वारा बाहरी तथा भीतरी भाग की सफाई करता है, वाह्य एवं भीतर दोनों प्रकार से निष्पाप हो जाता है।[4]

जो मनुष्य घीया तिल का दीपक जलाकर सूर्य के सम्मुख स्थापित करता है वह सूर्य लोक को प्राप्त होता है।[5] तेल का दीपक प्रदान करना भी शुभ माना गया है।[6] सूर्य के मन्दिर में चौराहे या तीर्थ में जो नित्य दीपक जलाता है उसे रूप सौंदर्य एवं ओज की प्राप्ति होती हे।[7]

इसी प्रकार चन्दन, गुग्गुल, कुंकुम, कपूर एव कस्तूरी मिश्रित लेप सूर्य के लिए प्रदान करने से मनुष्य राजा होता है।[8]

उपर्युक्त क्रियाओं के महत्व को संदर्भित करते हुए भविष्य पुराण में सत्राजित नामक राजा की कथा का उल्लेख किया गया है जो अत्यन्त बलशाली राजा था एवं उसकी पुरी रावण की लंका की पुरी की भाँति उत्तम थी। वह एक धार्मिक राजा था। [9] पूर्व जन्म में वह शूद्र कुल में उत्पन्न हुआ था तथा सदैव कुष्ठ रोग से पीड़ित रहता था। किन्तु उसने अपनी पतिव्रता स्त्री के साथ निःस्वार्थ भाव से सूर्य मंदिर की सफाई की

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 93.2
2. वही, 93.3
3. वही, 93.4
4. वही, 103.32 – 34
5. वही, 93.5
6. वही, 93.6
7. वही, 93.7
8. वही,93.1 – 10
9. वही, 116.1 – 13

तथा दीप प्रज्जवलित किया। उसी का परिणाम है कि वह इस जन्म में अत्यन्त शक्तिशाली समृद्धिशाली राजा हुआ।[1]

उपुयक्त विवरण से सौर धर्म में क्रिया योग का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

रथयात्रा

आलोचित पुराण से ज्ञात होता हे कि तत्कालीन समाज में रथ महोत्सवों का भी आयोजन किया जाता था। भविष्य पुराण में स्पष्ट रूप से आख्यात है कि जिस भी प्रदेश में सूर्य देव की रथयात्रा और इन्द्र महोत्सव के आयोजन किये जाते थे उसमें राजा के द्वारा और चरों के द्वारा कोई उपद्रव नहीं होता था अतः दुर्भिक्ष की शान्ति के लिए इन महोत्सवों को अवश्य करना चाहिये।[2]

सूर्य अभिषक

भादो मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को धृत द्वारा भगवान सूर्य को श्रद्धा पूर्वक स्नान कराना चाहिये।[3] जो व्यक्ति शर्करा के साथ चावल का भात, मिष्ठान और चित्रवर्ण के भात को भगवान सूर्य को अर्पित करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।[4]

पौष शुक्ल की सप्तमी को तीर्थों के जल अथवा पवित्र जल से वेद मंत्रों के द्वारा भगवान सूर्य को स्नान कराना चाहिये।[5]

---

1. भवि0 पु0 ब्रह्मपर्व, 116.22- 93
2. वही, 55.8- 10
3. वही, 55.11- 13
4. वही, 55.14- 18
5. वही, 55, 22- 23

सूर्य भगवान के अभिषेक के समय प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पृथूदक, चन्द्रभागा, शोण, गोकर्ण, गंगा, यमुना, सरस्वती, विपाशा, वेत्रवती, शतद्रु आदि सभी तीर्थों, नदियों और समुद्रों का स्मरण करना चाहिये।[1] इस प्रकार स्नान करा कर तीन दिन, सात दिन, एक पक्ष अथवा मास भर उस अभिषेक के स्थान में ही भगवान का अधिवास करें और प्रतिदिन भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करते रहें।[2] माघ मास के कृष्ण पक्ष को मंगल कलशो तथा वितान आदि से सुशोभित चौकोर एवं पक्के ईंटों से बनी वेदी पर सूर्यनारायण को भलीभाँति स्थापित कर हवन, ब्राह्मण भोजन, वेद पाठ और विभिन्न प्रकार के नृत्य गीत, वाद्य आदि उत्सवो को करना चाहिये।[3]

रथ निर्माण

सोने चाँदी अथवा उत्तम काष्ठ का अतिशय रमणीय और बहुत सुदृढ़ रथ का निर्माण करना चाहिये उसके बीच में भगवान सूर्य की प्रतिमा को स्थापित कर उत्तम लक्षणों से युक्त अतिशय सुशील, हरितवर्ण के घोड़ो को रथ में नियोजित करना चाहिये। उन घोड़ों को केशर से रंगकर अनेक आभूषणों, पुष्प मालाओं और चँवर आदि से अलंकृत करना चाहिये। रथ के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार रथ को तैयार कर सभी देवताओं की पूजा कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये । दक्षिणा देकर दीन, अंधे उपेक्षितों तथा अनाथों को भोजनआदि से संतुष्ट करना चाहिये। क्यों कि बिना दक्षिणा के यज्ञ प्रशस्त नहीं होता।[4] तदन्तर पुण्याह्वाचन और अनेक प्रकारके मंगल वाधों की ध्वनि कर सुन्दर एवं समतल मार्ग पर रथ को चलाएँ। घोड़ों के अभाव में अच्छे बैलों को रथ में जोतना चाहिये। शुद्धाचरण और व्रती ब्राह्मण ही प्रतिमा को मन्दिर से लाकर रथ पर स्थापित करें। सूर्य देव के दोनों ओर उनकी पत्नियाँ राज्ञी और निक्षुभा को स्थापित करें। पीछे गरुड़ को

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 55.24 – 27
2. वही, 55.32 – 33
3. वही, 55.35 – 36
4. वही, 55.60 –67

बैठाएँ। तत्पश्चात् सुवर्णदण्ड युक्त छत्र एवं चित्र-विचित्र सुवर्णदण्ड से भूषित सात पताकाओं से अलंकृत करे। रथ पर श्रद्धाहीन व्यक्ति को आरूढ़ न होने दें। रथ का वहन ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कर सकते हैं, किन्तु शूद्र कदापि नहीं।[1]

रथ का संचालन धीरे-धीरे करना चाहिये क्योंकि उसके जुआ, धुरी पर चक्के को हानि न पहुँचे क्योंकि जुए के मध्यवर्ती काष्ठ के टूटे पर द्विजों को भय, अक्ष के टूटने पर क्षत्रियों का नाश, धुरा के टूटने पर वैश्यों का एवं बैठने के स्थान भंग होने पर शूद्रों का नाश होता है।[2] इसी भाँति जुए के भंग होने पर अनावृष्टि, पीठ के भंग होने पर जनता को भय, चक्के के टूटने पर वह राज्य किसी अन्य के अधीन हो जाता है और ध्वजा के गिरने पर राजा का नाश, प्रतिमा के भंग होने पर राज का मरण एवं छत्र के भंग होने पर युवराज को भय होता है। इस प्रकार के उत्पात होने पर बलि एवं शक्तिपाठ हवन को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण द्वारा कथा को सुनकर उन्हें दान द्वारा प्रसन्न करें।[3]

इसके पश्चात् ग्रहों को प्रसन्न करने के लिए एवं दुष्ट ग्रहों की शान्ति के लिए हवन करना चाहिये।[4] उत्पात होने पर जिस प्रकार ग्रहों की पूजा होती है, उसी भाँति रथ के आश्रित सभी देवताओं की पूजा करनी चाहिये।[5]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 55.71-98
2. वही, 56.7-8
3. वही, 56.9-12
4. वही, 15.13-52
5. वही, 56.51-52, 57.1-32

सूर्य की पूजा के पश्चात् अन्य देवताओं एवं अनुचरो की पूजा करने वाला मनुष्य श्री सम्पन्न होकर पूज्य होता है।[1] जो, प्रथम सूर्य की पूजा न करके अन्य देवों की पूजा करता है उसके पाद्यादि को सूर्य देव स्वीकार नही करते।[2] इस भाँति पूर्णिमा, अमावस्या, सप्तमी और षष्ठी के दिन सूर्य के दर्शन अत्यन्त पुण्यदायक कहे गए हैं।[3] आषाढ़, माघ तथा कार्तिक मास की तिथियाँ पुण्यस्वरूप है। विशेषकर कार्तिक मे की गई पूजा विशेष महत्व प्रदान करती है। इसलिए कार्तिक की पूजा का नाम महाकार्तिकी बताया गया है।[4]

इस प्रकार जो मनुष्य तेजस्वी भगवान सूर्य की रथ यात्रा स्वयं करता है या कराता है, वह परार्द्ध वर्ष पर्यन्त सूर्य में पूजित रहता है और उसके कुल में कभी दरिद्र या कोई रोग नहीं होता है।[5]

---

1. भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, 58.33-34
2. वही, 58.35
3. वही, 58.37
4. वही, 58.38-39
5. वही, 58.1-2

व्रत-उपवास

सौरोपासना में व्रत का विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। अनेक आदित्य व्रतों का उल्लेख पुराणों एवं निबन्धो में विवेचित है।[1] भविष्य पुराण के अनुसार व्रत रखने वाले मनुष्य को पाखण्डी एवं अनाचारियों के साथ किसी प्रकार की बाते नहीं करनी चाहिये।[2] क्षमा, सत्य, दान, दया, पवित्रता, इन्द्रिय संयम सूर्य-पूजा, अग्नि हवन, संतोष और स्तेय के त्याग, यही दस सामान्य धर्म सभी व्रती मनुष्यों के लिए बताए गए हैं।[3] अन्यश्च उल्लिखित है कि समाधि दोष, दूषित चिन्त द्वारा आराधना करने पर सूर्य कभी प्रसन्न नहीं होते। रागादि दोषरहित वाणी तथा हिंसा शून्य कर्म, ये तीनों सूर्य की आराधना में प्रशस्त बताए गए हैं।[4] आलोचित पुराण में ही एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि पापों की निवृत्ति पूर्वक समस्त उपभोग पदार्थों के त्याग करते हुए गुणों के साथ रहने को उपवास कहते हैं।[5]

सौर धर्म में सप्तमी तिथि का विशेष महत्त्व है। भादो मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन जो उत्तम भोज्य आदि पदार्थों से सूर्य की विधिवत पूजा करता है वह निश्चित रूप से पुण्य फल प्राप्त करता है।[6] इसे फल सप्तमी भी कहा गया है, चूँकि यह फल प्रदान करने वाली कही गई है।[7] इसे फल सप्तमी व्रत से ब्राह्मणों को मोक्ष, क्षत्रियों को इन्द्रलोक, वैश्यो को कुबेरलोक और शूद्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है।[8] माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में इन्द्रिय संयमपूर्वक उपवास रहकर गंध और पुष्पादि आहार द्वारा सूर्य पूजा करके रात्रि में उन्हीं के पास शयन करे, पुन: सप्तमी में प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक भानु की पूजा के पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार खाण्ड के लड्डू, ऊख के गुड़ के मालपुए आदि ब्राह्मणों को प्रदान करें। वर्ष की समाप्ति में सप्तमी तिथि के दिन सूर्य की रथयात्रा सम्पन्न करें।[9] इस पुण्य रथवाली सप्तमी को 'महासप्तमी' भी कहते हैं

---

1. पी0 वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, भाग-4, पृ.105-106 में आदित्यवार व्रत, आदित्यमण्डल विधि, आदित्यशयन तथा आदित्यहृदय विधि इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है।
2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 110.2
3. वही, 168.7-8
4. वही, 112.1-8
5. वही, 64.4
6. वही, 55.11-12
7. वही, 64.63
8. वही, 64.59-60
9. वही, 59.1-4

इसमें सूर्य के स्नान, दान, हवन पूजन करने से वह सहस्रों गुना अधिक पुण्यप्रद होती है।[1] माघ मास की सप्तमी का व्रत करके मनुष्य सूर्य का सेवक हो जाता है इसके प्रभाव से ब्राह्मण देवता, क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य क्षत्रिय तथा शूद्र वैश्य हो जाते है। इससे मनुष्य ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो जाता है।[2]

रहस्य नामक सप्तमी का आरम्भ चैत्र मास में करना चाहिये।[3] सूर्योपासना सदैव करनी चाहिये, किन्तु सप्तमी के दिन तेल का स्पर्श, नील वस्त्र का धारण, आँवले का स्नान एवं कहीं भी कलह नहीं करनी चाहिये।[4] क्योंकि नील वस्त्र धारण करके द्विज स्नान, दान, जप हवन, अध्ययन एवं पितृ तर्पण आदि जो कुछ करता है, वे सभी निष्फल हो जाते हैं।[5] तथा दिन रात का उपवास करके एवं पंचगव्य का पान करने पर ही उसकी शुद्धि सम्भव है।[6] इस रहस्य नामक सप्तमी व्रत करने से मनुष्य के सात पूर्व और सात पर पीढ़ी संसार सागर को पार कर लेते हैं।[7]

इस प्रकार विभिन्न प्रकार से जो सूर्य की पूजा करके षष्ठी एवं सप्तमी के दिन जो भास्कर की पूजा करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है। कृष्ण पक्ष की सप्तमी में रक्त वर्ण मय उपहारों, कमल, करवीर, कुंकुम और चन्दन द्वारा सूर्य पूजा करके लड्डू समर्पित करते हैं तो उन्हें सूर्य लोक की प्राप्ति होती है। शुक्ल पक्ष की सप्तमी में शुक्ल वर्णमय समस्त उपहारों चमेली, मल्लिका, श्वेत कमल कदम्ब, पायस, प्रपुष्प द्वारा सूर्य की पूजा से हंस लोक की प्राप्ति होती है।[8]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 59.19-20
2. वही, 59.21-26
3. वही, 65.26
4. वही, 65.5-6
5. वही, 65.10-11
6. वही, 65.12
7. वही, 65.1-4
8. वही, 80.18-22

भविष्य पुराण मे सप्तमी कल्प की व्याख्या के अन्तर्गत सात सप्तमियों का उल्लेख किया गया है, जिनके नाम जया, विजया, जयंती, अपराजिता, महाजया, नंदा और भद्रा।[1] शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन रविवार पड़े तो उसे विजया सप्तमी कहा जाता है।[2] जिसमे दान रूप में दिया हुआ सभी कुछ अत्यन्त फलदायक होता है। पञ्चमी में एक बार भोजन करके षष्ठी मे नक्त व्रत, सप्तमी में उपवास एवं अष्टमी में पारण करना बताया गया है।[3] इस प्रकार विजया सप्तमी में किए गए स्नान, दान, हवन और उपवास ये सभी महापातक के नाश करते हैं।[4]

शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उसे जयासप्तमी कहा जाता है।[5] इसे तीन पारण में सम्पन्न करना बताया गया है चार मास का एक पारण है।[6] प्रत्येक पारण में किए गए विधिवत दान, हवन, जप, तर्पण, देवपूजन तथा सूर्य की पूजा सौ गुने फल प्रदान करती है। यह सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय एवं पाप नाशिनी है तथा यश पुत्र एवं कामनाओं समेत लक्ष्मी प्रदान करती है।[7]

माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी का जो पुण्य रूप पाप का नाश करने वाली एवं कल्याण रूप है, 'जयंती' नाम बताया गया है। इस व्रत के चार पारण हैं, जिनकी व्रत विधि का वर्णन भविष्य पुराण में मिलता है। पञ्चमी में एक भुक्त, षष्ठी में नक्तव्रत, सप्तमी मे उपवास तथा अष्टमी में पारण करना चाहिये। माघ मास, फाल्गुन चैत्र मास में सुन्दर बक पुष्प, कुंकुम के लेपन, मोदक का नैवेद्य, घी की धूप, सूर्य को अर्पित करें।[8]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 81.1
2. वही, 81.2
3. वही, 81.4
4. वही, 81.3
5. वही, 96.3
6. वही, 96.8-32
7. वही, 96.4-5
8. वही, 97.1-28

भादो मास की शुक्ल सप्तमी जो महान पातकों का नाश करती है, 'अपराजिता' नाम से विराजमान है। उसके अनुष्ठान में चतुर्थी में एक भुक्त, पञ्चमी में नक्तव्रत, षष्ठी में उपवास एवं सप्तमी में पारण बताया है। इसके अनुष्ठान में चार पारण बताए हैं। पुष्प, चन्दन, धूप नैवेध द्वारा विधिपूर्वक व्रत करने से मनुष्य युद्ध स्थल में शत्रुओं द्वारा सदैव अपराजित ही रहता है। त्रिवर्ग की तथा सूर्य लोक की प्राप्ति होती है।[1]

शुक्ल पक्ष की सप्तमी में सूर्य की संक्रांति प्राप्त होने पर उस सूर्यप्रिया सप्तमी को 'महाजया' नाम की सप्तमी बताया गया है। सूर्य के कथनानुसार उसमें किए गए दान, स्नान, जप, हवन एवं पितरों तथा देवताओं के पूजन आदि ये सभी कोटि गुने अधिक फल प्रदान करते हैं। घी एवं दूध से स्नान का विधान बताया है। जिससे उत्तम फलों की प्राप्ति होती है।[2]

मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सभी भाँति के आनन्द एवं कल्याण दायिनी होने के नाते 'नन्दा सप्तमी' कहा जाता है। तीन दिन का व्रत विधान बताया गया है तथा तीन पारण करने का भी विधान उल्लिखित है। नील कमल, गुग्गुल, धूप, खीर, चन्दन सूर्य की प्रिय वस्तुओं को समर्पित करना चाहिये।[3]

शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र के समागम से उस सप्तमी का 'भद्रा नाम' बताया गया है। यह सप्तमी कल्याण दायिनी है। इसमें भद्र मूर्ति निर्माण का विधान बताया है। गेहूँ के आटे (चूर्ण) से निर्मित मूर्ति में चार सींगों की रचना करके उन्हें मोती, हीरा, रक्तमणि, मकर और पद्मराग मणि से विभूषित करें। इस मूर्ति के अर्पित करने से पुत्र प्राप्ति होती है। तीन दिन के व्रत का विधान उल्लिखित है।[4] सप्तमी कल्प के इन व्रतों में पहली सप्तमी का व्रत श्वेत राई, दूसरी में अर्क सम्पुर, तीसरी में मरिच, चौथी में तिल एवं सातवीं में भात के पारण द्वारा व्रत की समाप्ति होती है। इस प्रकार ऐश्वर्य इच्छुक को सातों सप्तमी की समाप्ति करनी चाहिये।[5]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 98.1-19
2. वही, 98.1-7
3. वही, 100.1-16
4. वही, 101.1-25
5. वही, 193.3-4

इसकी 'सौम्य' संज्ञा होती है।[1] मार्ग शीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में प्राप्त रविवार को 'कामद' नामक कहा गया है।[2] जिस रविवार के दिन पाँच तारा (हस्त) नामक नक्षत्र प्राप्त होता है वह 'पुत्रद' नामक वार बताया गया है।[3] इसमें उपवास, श्राद्ध एवं पिंड का प्राशन भी करना चाहिये।[4] इस व्रत के विधिवत पूजन से पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। अतएव, इसे देव का पुत्रद नामक वार बताया गया है।[5] सूर्य के दक्षिणायन समय में प्राप्त रविवार को 'जप' नामक बताया है।[6] एवं उत्तरायण रहने के समय प्राप्त रविवार को 'जयन्त' नामक कहा जाता है।[7] यदि शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार के दिन रोहिणी नक्षत्र भी प्राप्त हो जाए तो उसे समस्त पापों का नाशक एवं 'विजय' नामक रविवार भी कहा जाता है।[8] माघ मास की कृष्ण पक्ष की सप्तमी में प्राप्त रविवार को "आदित्याभिमुख" नामक वार जानना चाहिये।[9] सूर्य की सक्रांतिकाल में प्राप्त रविवार को सूर्य के हृदय प्रिय होने के कारण 'हृदय' नामक बताया गया है।[10] सूर्य देव के प्रधान पूर्वा - फाल्गुनी नक्षत्र में प्राप्त रविवार को सभी रोगों के भयनाशक होने के नाते 'रोगहा' नामक वार कहा जाता है।[11] सूर्य ग्रहण के दिन प्राप्त रविवार को 'महाश्वेता' वार कहा जाता है।[12]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 84.1
2. वही, 85.1
3. वही, 86.1
4. वही, 86.2
5. वही, 86.11 - 12
6. वही, 86.15
7. वही, 87.1
8. वही, 88.1
9. वही, 89.1
10. वही, 90.1
11. वही, 91.1
12. वही, 92.1

इस प्रकार रविवार के दिनो में सूर्य पूजन सभी के लिए परमावश्यक है। पूजक महान पापी ही क्यों न हो। क्यों कि जो उनकी पूजा करता है, उन्हें परम गति प्राप्त होती है।[1] जो पुरूष सप्तमी व्रत विधान का यथावत पालन करता है उसके कुल में कोई व्यक्ति अंधा, कुष्ठी, नपुंसक, व्यंग एवं निर्धन नहीं होता।[2]

देवता-ब्रह्मा

भविष्य पुराण में सूर्य के पश्चात दूसरे प्रमुख देवता ब्रह्मा हैं। आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि ब्रह्मा ने पुष्कर तीर्थ में जाकर सूर्य की आराधना की[3] तथा सूर्य ने ब्रह्मा को सृष्टि रचने का वरदान दिया।[4]
इस प्रकार यद्यपि ब्रह्मा का स्थान सूर्य के बाद है। किंतु विष्णु तथा शिव से उन्हें श्रेष्ठ बताया गया है। विष्णु तथा शिव दोनों की उत्पत्ति ब्रह्मा से बताई गयी है। रूद्र ब्रह्मा के मन से तथा विष्णु ब्रह्मा के वक्षस्थल से उत्पन्न बताए गए हैं।[5] अन्यश्च उल्लेख प्राप्त होता हे कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रूद्र के विधान को अतिक्रान्त करने वाले हैं।[6]

भविष्य पुराण में ब्रह्मा को नारायण कहा गया है क्योकि जल (नार) ही सबसे पहले उनका अयन (निवास) रहा है।[7] इसके अतिरिक्त उनके लिए विभु[8], स्वयंभू[9], वागीश्वर[10], नाभिय[11], प्रजापति[12], पद्मोद्भव[13] आदि विरूदों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मा ने ही समस्त ग्रहों को विश्व द्वारा पूजित होने का वर प्रदान किया[14] ब्रह्मा के समान न तो कोई देव है, न कोई गुरू है, न कोई ज्ञान है, न कोई तप है।[15] आलोचित पुराण

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 207.11
2. वही, 208.27
3. वही, 155.24
4. वही, 155.33-45
5. वही, 17.6
6. वही, 17.91
7. वही, 2.19
8. वही, 17.67
9. वही, 44.6
10. वही, 44.7
11. वही, 44.8
12. वही, 4.23
13. वही, 18.15
14. वही, 56.45
15. वही, 17.42

में ब्रह्मा सृष्टिकर्ता के रूप मे उल्लिखित है। चतुर्मुख ब्रह्मा ने प्रलय के बाद पुन समस्त देवताओं, लोकों, भूतो, स्थावर, जंगम, जीव की सृष्टि की। इस प्रकार ब्रह्मा देवताओ के पिता एवं भूतों के पितामह कहे जाते हैं। वे परम पूज्य हैं। समस्त संसार की सृष्टि पालन एव सहार करते हैं।[1] उन्ही के मुख से चारो वेद एवं समस्त वेदांग प्रादुर्भूत हुए। सम्पूर्ण लोक ब्रह्ममय है। इनकी भक्ति पूर्वक पूजा करने से मनुष्य स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।[2]

रथ यात्रा

आलोचित पुराण में बह्मदेव की रथयात्रा का भी विधिवत उल्लेख प्राप्त होता है। कार्तिक मास में ब्रह्मदेव की रथयात्रा करना शुभ माना गया है।[3] कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को सावित्री के साथ मृगचर्म पर भगवान ब्रह्मा को स्थापित कर अनेक प्रकार के वाद्यो के साथ-साथ रथ को नगर में सर्वत्र घुमाना चाहिये। तत्पश्चात रथ को एक स्थल पर स्थापित कर दें।[4] रथ के अग्रभाग में विधान पूर्वक शाण्डिलीपुत्र ब्राह्मण की पूजा कर देव को रथ पर आरोपित कर रात्रि जागरण करें।[5] प्रात:काल अपनी शक्ति अनुसार ब्राह्मणों को वस्त्र भोजनादि द्वारा संतुष्ट करें।[6] रथ का वहन उच्च कोटि के पण्डित एवं वेद ब्राह्मणों द्वारा ही होना चाहिये। शूद्र द्वारा रथ का वहन कदापि नहीं करवाना चाहिये।[7] भगवान ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में सावित्री, वाम पार्श्व में भोजक ब्राह्मण एवं सम्मुख भाग में पद्मोद्भव (ब्रह्मा) को स्थापित करना चाहिये।[8] अंत में तुरही आदि वाद्यों के साथ रथ को पुट की प्रदक्षिणा क्रम से घुमाते हुए अपने स्थान पर लाकर पुनः स्थापित कर देना चाहिये।[9] इस प्रकार ब्रह्मदेव की रथ यात्रा सम्पन्न कराने वाला मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है।[10]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 17.2-5
2. वही, 17.6-10
3. वही, 18.3
4. वही, 18.4-5
5. वही, 18.7-8
6. वही, 18.9-10
7. वही, 18.13-14
8. वही, 18.15
9. वही, 18.16
10. वही, 18.17

ब्रह्मा की स्नान विधि एवं महत्व

आलोचित पुराण में ब्रह्मदेव की स्नान विधि एवं उनसे प्राप्त होने वाले पुण्य फलों का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है!कपिला गौ के पञ्च गव्य तथा कुशमिश्रित जल से जो मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित स्नान किया जाता है, उसे ब्रह्म स्नान कहा जाता है।[1] प्रतिपदा तिथि को पंकजोद्भव ब्रह्मा को केवल एक बार घृत स्नान कराने से मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर विष्णु लोक में पूज्यनीय होता है।[2] जो मनुष्य घृत एवं क्षीर द्वारा ब्रह्मा को केवल एकबार स्नान कराता है वह ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है।[3] इसी प्रकार दही[4], मधु[5], ईख[6] एवं शुद्ध जल[7] द्वारा कराया गया स्नान भी पुण्य फल प्रदान करता है। ब्रह्म स्नान के अवसर पर कमलपद्म करवीर आदि स्थिर सुगन्ध वाले पुष्पों का सर्वदा प्रयोग करना चाहिये।[8] मिट्टी के कुंभों, ताम्र के कुंभों एवं चाँदी के कुम्भों द्वारा कराया गया स्नान पुण्यफलदायी होता है।[9]

अन्यश्च जो मनुष्य मिट्टी, काष्ठ, ईट अथवा पत्थरों से ब्रह्मा का मंदिर बनवाता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।[10] ब्रह्मा के टूटे-फूटे वा अपूर्ण आयतन का जो मनुष्य जीर्णोद्धार करा देता है, अथवा पूर्ण करा देता है तथा उसमें वाटिका एवं विश्राम स्थल आदि का निर्माण करा देता है, वह भी मोक्ष फल प्राप्त करता है।[11] कार्तिक मास की अमावस्या तिथि को जो ब्रह्मा के आयतन में दीपदान करता है वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है।[12] ब्रह्मा की पूजा में पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, श्री खण्ड, लड्डू, श्री वेष्टकासार, अशोकवर्तिका, दुग्ध, तिल मिश्रित मिष्ठान, पके हुए विविध फल और गुड़ से बने हुए विविध पदार्थों का दान करना चाहिये।[13]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 17.48
2. वही, 17.54
3. वही, 17.56
4. वही, 17.57
5. वही, 17.57
6. वही, 17.58
7. वही, 17.59
8. वही, 17.63
9. वही, 17.69
10. वही, 17.28
11. वही, 17.41
12. वही, 18.18
13. वही, 17.93

देवता– विष्णु

आलोचित पुराण में यद्यपि सूर्य ही सर्वप्रधान एवं सर्वोपरि देवता उल्लिखित हैं तथापि विष्णु का उल्लेख प्रमुख देव के रूप में किया गया है। आलोचित पुराण में उन्हें कृष्ण, जगत्पति, श्रीवत्सधारी, श्रीकान्त, श्रीपति[1], वैकुण्ठ[2], नारायण[3], मुरारि[4] आदि नामों से अभिहित किया गया है। शंख, चक्र, गदाधारी विष्णु का अस्त्र चक्र उल्लिखित है[5] तो शुक्ल वर्णी मुरारि का आयुध धनुष कहा गया है।[6] उनकी ध्वजा गाए तथा वृष की मूर्तियों से सम्पन्न है।[7] एक अन्य स्थल पर उन्हें गोपशक्ति एवं गोरूप कहा गया है।[8] आलोचित पुराण में विष्णु भगवान की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए परम ब्रह्म को नारायण हरि, महाविष्णु कहा गया है।[9] विष्णु पुराण में आख्यात है कि इन्द्र ने अमरेशतत्त्व की प्राप्ति के लिए सौ यज्ञों का अनुष्ठान करके देवेश विष्णु को परितुष्ट किया था।[10] वामन पुराण में उल्लिखित है कि विष्णु के अनुग्रह से ही इन्द्र को स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी।[11] इसी पुराण में उन्हें विश्वदेवेश, विश्वभू, विश्वात्मक, स्वयंभू, इन्द्र, अग्नि, भानु, चन्द्रमा आदि शक्तियों का सृष्टा कहा गया है।[12]

यद्यपि ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि, मरुत, वरुण जैसे देवों की अपेक्षा विष्णु स्तुति सम्बन्धित ऋचाएँ कम हैं।[13]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 20.5– 6
2. वही, 22. 19
3. वही, 144.1
4. वही, 1.1
5. वही, 144.1, भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 2.24.10– 13
6. भवि० पु०, मध्यम पर्व, 1.1.2, ब्राह्मपर्व, 1.1
7. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 154.7
8. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.25.197
9. वही, 4.25.14–15
10. विष्णु पु०, 5.17.7
11. वामन पु०, 52.88
12. वही, 66.35– 41
13. वी० एस० घाटे, लेक्चर्स ऑन ऋग्वेद, पृ० 154

ऋग्वेद में विष्णु के मानवीयकरण का प्रयास मिलता है। उन्हें तीव्रगति युक्त तीन पग तथा विशाल युवा पुरूष के रूप में चित्रित किया गया है।[1] सम्भवतः इसी कारण उन्हें 'उरूगाए'[2] की उपाधि से अलंकृत किया गया है। अपने तृतीय पाद की स्थिति के कारण कहीं-कहीं उनका व्यक्तित्व अग्नि के समरूप प्रस्तुत किया गया है।[3] ऋग्वैदिक विष्णु गौण होते हुए भी व्यक्तित्व में उपकारी[4], निरूपद्रव[5], कृपालु, उदार[6], एक मात्र रक्षक[7], अप्रमित स्वाभाव[8], तीनों लोकों के प्राणियों के धारक[9], प्रेरणा स्रोत[10] तथा मुक्ति दाता जैसे महान गुणों से युक्त बताए गए हैं। किंतु उत्तर वैदिक काल में विष्णु के व्यक्तित्व के समुन्नत पक्ष को और अधिक स्वीकार किया गया और उन्हें अन्य देवों की अपेक्षा श्रेष्ठतर कहा गया।[11] ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को सर्वोच्च एवं अग्नि को निम्नस्थ देव प्रतिपादित करते हुए अन्य सभी देवों को इन दोनों के मध्य स्थित बताया गया है।[12]

पौराणिक साहित्य में वैष्णव धर्म एवं इसमें प्रमुख आराध्य देव विष्णु को प्रधानतम देव ही नहीं प्रत्युत उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म की सम्पूर्ण दार्शनिक अवधारणा को उनमें समाविष्ट करके उन्हें परा और अपरा प्रकृति का मूल नियामक तथा जगत्दृष्टा नारायण मान लिया गया।

---

1. ऋग्वेद, 1.55
2. 'अत्राह तदुरूगायस्य वृष्णः' ऋग्वेद, 1.154 - 156
3. मैक्डानल, वैदिक माइथॉलोजी, पृ0 70
4. ऋग्वेद, 1.156
5. वही, 8.25
6. वही,7.40
7. वही, 3.55
8. वही, 1.52
9. वही, 1.54
10. वही, 1.56
11. 'तद्विष्णुः प्रथमः पाप। सदेवानां श्रेष्ठोऽभवत्तस्मादाहुर्विष्णुः देवानां श्रेष्ठः इति',शतपथ ब्रा0, 14.1.1.5
12. ऐतरेय ब्रा0, 1.1

आलोचित पुराण मे भी विष्णु को जगत को उत्पन्न करने वाला तथा ब्रह्मरूप धारण करने वाला कहा गया है।[1] जहाँ पहुँचने पर पुन. वहाँ से निवृत्ति नही होती है वही विष्णु का परम पद कहा गया है।[2] एक अन्य स्थल पर उल्लिखित है कि लोकों के ऊपर अनुग्रह करने वाले विष्णु ने ही निखिल विश्व की रचना करके उसे विस्तृत किया है।[3] माधव की कृपामात्र से ही मूक पण्डित हो जाता है और पंगु पर्वत लांघने योग्य।[4]

सूर्य एवं विष्णु

आलोचित पुराण में विष्णु को सूर्य की पूजा करते हुए प्रदर्शित किया गया है। भविष्य पुराण में स्पष्ट रूप से आख्यात है कि विष्णु ने सूर्य की पूजा करके सूर्य से चक्र, समस्त लोकों में वन्दनीय उत्तम स्थान एवं लोकों के पालन की शक्ति का वरदान प्राप्त किया।[5] विष्णु ने शालग्राम में जाकर सूर्य की पूजा की।[6] विष्णु के अवतार कृष्ण के द्वारा भी सूर्य पूजन का उल्लेख प्राप्त होता है।[7] सूर्य अपनी किरणों सहित कृष्ण के चक्र में सन्निहित हैं।[8] अतएव विष्णु के चक्र के नाम वही हैं, जो सूर्य देव के नाम हैं। जो इस प्रकार हैं- अर्यमा, मित्र, भग, वरूण, विवस्वान्, सविता, पूषा, त्वष्टा, अंशभग, अतितेज एवं आदित्य।[9] चूँकि आलोचित पुराण के प्रधान एवं सर्वोपरि देवता सूर्य हैं, अतएव उन्हें विष्णु के ऊपर स्थान प्राप्त है। किन्तु वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा विष्णु पुराण को आदित्यों का अधिपति कहा गया है।[10] विष्णु पुराण में तो आदित्य को विष्णु का उपासक कहा गया है।[11]

---

1. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.1.6
2. भवि0 पु0 प्रतिसर्गपर्व, 4.7.28
3. वही, 2.32.6-7
4. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 1.3
5. वही, 157.1- 25
6. वही, 155.24
7. वही, 50.38
8. वही, 50.39
9. वही, 125.8-9
10. वायु पु0, 7.5, ब्रह्माण्ड पु0, 3.8, मत्स्य पु0, 8.4, विष्णु पु0, 1.22.3
11. विष्णु पु0, 4.11.2

विष्णु और लक्ष्मी

विष्णु की अर्द्धांगिनी लक्ष्मी का आलोचित पुराण मे अनेक नामों से उल्लेख मिलता है यथा श्रीकान्त, श्रीपति[1], माया[2], लक्ष्मी[3], महाकाली[4] आदि। आलोचित पुराण में एक स्थल पर माया को ही महाकाली और महागौरी नामों से आख्यात किया है। विष्णु की सनातनी माया उनकी इच्छानुसार अनेक भाँति के लोकों की रचना करके महाकाली का स्वरूप धारण कर लेती है, जिससे कालमय एवं चराचर इस सम्पूर्ण जगत का भक्षण कर लेती है और तदन्तर वही महागौरी के रूप में परिवर्तित हो जाती है।[5] यहाँ पर लक्ष्मी एवं विष्णु के सम्बन्धों की वैदिक एवं पुराण पूर्व युगों में अवधारणा की विवेचना आवश्यक हो जाती है। वैदिक साहित्य में देवो के साथ देवियों को सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। ऋग्वेद में इन्द्र, रुद्र, सूर्य तथा वरुण की भार्याओं को क्रमश. इन्द्राणी, रुद्राणी, सूर्या और वरुणानी के रूप में सम्बोधित किया गया है।[6] वैदिक काल में यद्यपि लक्ष्मी को देवी के रूप में उल्लिखित अवश्य किया है किन्तु आदित्य की भार्या के रूप में[7] लक्ष्मी को विष्णु से सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति मूलतः पौराणिक भावना की ही देन प्रतीत होती है। वस्तुतः लक्ष्मी ऐश्वर्य एवं समृद्धि की प्रतीक देवी है। अत विष्णु के पौराणिक स्वरूप में हुए उत्कर्ष के साथ सम्पृक्त हो गई। जे0 गोण्ड ने लक्ष्मी का व्यक्त अर्थ सौभाग्य माना है।[8]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 20.5- 6
2. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.3.9
3. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 2.29.1- 5
4. वही, 4.5.34
5. वही, 4.5.32- 34
6. मैकडॉनल, वैदिक माइथॉलौजी, पृ0 25, तथा दृष्टव्य एस0 एन0 राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, पृ0 23
7. "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहो रात्रे----।" वाजसनेयी सं0 31.22
8. जे0 गोण्ड, ऐस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म, पृ0 216

पुराण वाड्.मय मे लक्ष्मी विष्णु की भार्या के रूप मे प्रतिष्ठित हो गई।[1] विष्णु पुराण मे विष्णु एव लक्ष्मी के सम्बन्ध को अर्थ और वाणी, न्याय और नीति, बोध और बुद्धि, सृष्टा और सृष्टि, काम और इच्छा, समुद्र एवं तरंगों के समतुल्य अभिन्न कहा गया है।[2] ब्रह्माण्ड तथा विष्णु पुराणो मे समुद्र मंथन के प्रसग में वर्णित है कि समुद्र से बहिष्कृत होने पर लक्ष्मी ने विष्णु के वक्षस्थल का आश्रय ग्रहण कर लिया।[3] मत्स्य पुराण मे विष्णु की पूजा से सम्बन्धित व्रतों के अवसर पर विष्णु प्रतिमा के साथ लक्ष्मी की प्रतिमा भी स्थापित करने का निर्देश दिया गया है।[4]

---

1. विष्णु पुराण, 1.9.144– 145 तथा 1.8.17
2. विष्णु पुराण, 1 3.35
3. ब्रह्माण्ड पुराण, 4.10.82, विष्णु पुराण, 1.9.105
4. मत्स्य पुराण, 81.1, 5.15, 54.24–27

वैष्णव भक्ति के प्रसार में आचार्यों तथा साधु सन्तों की देन

वैष्णव धर्म की प्रचीनतम संज्ञा भागवत धर्म तथा पांचरात्र मत है। षट् ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण विष्णु ही 'भागवत' शब्द से अभिहित किए जाते है और उनकी भक्ति करने वाले साधक 'भागवत' कहलाते हैं। विष्णु भक्तो के द्वारा उपास्य धर्म होने के कारण यह धर्म कहलाता है-भागवत धर्म।[1]

दक्षिण भारत में वैष्णव गुरूओ की दो श्रेणियाँ थीं आलवार एवं आचार्य। आलवारों में निर्मल अनुराग और विष्णु अथवा नारायण के प्रति अटूट भक्ति थी। वे भजनों की रचना करते थे, जब कि आचार्यों का उद्धेश्य शास्त्रार्थ करना एवं अपने निजी सिद्धान्तों एव मतो की प्रतिष्ठा के लिए यत्न करना था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार जनसाधारण को सदाचारों का महत्व दिखाकर रहस्यपूर्ण मन्त्रों की व्याख्या करके धर्म, कर्म और ज्ञान के उपदेशों से शिष्यो का पथप्रदर्शन करने वाले विद्वान आचार्य होते है।[2] अमरकोश के अनुसार मन्त्रों की व्याख्या करने वाले आचार्य होते है।[3] वे केवल उपदेशक नहीं होते। उनके आचरण सबके लिए आदर्श प्राय होने योग्य होते हैं। धर्माचरण के साथ-साथ वे भावना प्रधान भक्ति के प्रसार के लिए भी कम महत्व नहीं देते। आचार्य शंकर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य ये सभी आचार्य ज्ञान तथा भक्ति का सांमजस्य करने में अग्रगण्य हैं।

साधु सन्तों का प्रमुख कार्य आत्मानुभव से प्राप्त ज्ञान के प्रसार से जनसाधारण को सन्मार्ग पर लाना है। वैष्णव साधु सन्त आत्मानुभव की प्राप्ति के लिए योगशास्त्र के यम, नियम आदि कठिन अभ्यासों से अनन्य भक्ति को श्रेष्ठ समझते हैं। उनके अनुसार भगवद्दर्शन के लिए सांसारिक व्यवहारों को छोड़कर वन में जपतपादि से देह को सुखाना अनावश्यक है। विश्व की जड़ चेतन वस्तुओं में व्याप्त भगवान के दर्शन प्राप्त करने के लिए सांसारिक जीवन और सभी सामग्रियों को उपयोगी बनाना भी उनका उद्धेश्य होता है। उनके लिए गुणातीत परमात्मा साकार वं सकल, सद्गुणसम्पन्न के रूप में सर्वत्र लक्षित होते हैं।

---

1. बलदेव उपाध्याय, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, पृ0 64
2. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.2.6
   "आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापिष्यति
   स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेनचोच्यते।।"

3. अमरकोश, 2.518– 'मन्त्रकृदाचार्य '।

श्री वैष्णव मत के आचार्यों मे श्री रामानुजाचार्य का स्थान सर्वोपरि है। आलोचित पुराण में रामानुजाचार्य और शकराचार्य के मध्य कृष्ण एव शिव की श्रेष्ठता को लेकर हुए विवाद का उल्लेख प्राप्त होता है। इस विवाद मे शकराचार्य ने शिव पक्ष का समर्थन किया तथा रामानुजाचार्य ने कृष्ण पक्ष का। अन्त मे शकराचार्य ने निर्मल गोविन्द नाम का स्मरण करते हुए रामानुज का शिष्य होना स्वीकार किया।[1] रामानुजाचार्य ने अपने समन्वयात्मक भक्ति सिद्धान्त एवं विशिष्टाद्वैत का मण्डन किया। इनके विशिटाद्वैत के मतानुसार जीवात्मा और जगत वस्तुत. परमात्मा के गुणावशेष है और उसे एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं वह विशिष्ट ब्रह्म अद्वितीय है और उसकी प्राप्ति केवल ज्ञान मात्र के आधार पर न होकर वेदविहित कर्मानुष्ठान तथा विविध भक्ति साधनाओं के अभ्यास द्वारा ही संभव हो सकती है। उन्होंने शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन किया जिसके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। अहं की अनुभूति एवं जीवात्मा के दूसरे गुणो की प्रतीति तथा जड़ जगत की विविधता भ्रमजन्य है, फलत वास्तविक नही है। शकराचार्य के इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रेम और अनुकम्पा के लिए कोई स्थान नहीं है। वैष्णव मत के दक्षिणात्य आचार्यों की प्रबल इच्छा भ्रम या माया के इस सिद्धान्त को उन्हीं उपनिषद आधारों पर उखाड़ फेकने की थी जिस पर यह सिद्धान्त खड़ा किया गया था। फलस्वरूप रामानुज ने भक्ति और उपासना की भावना को प्रतिष्ठित करने के लिए ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषदों पर आधारित जिस वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसमे नित्य तत्त्व तीन बताए गए हैं- जीव या जीवात्मा (चित्), जड़ जगत (अचित्) तथा परमात्मा (ईश्वर)। उनका कथन है कि यह विशिष्टाद्वैत मत बोधायन, टंक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दि, भारुचि आदि प्राचीन वेदान्ताचार्यों के द्वारा व्याख्यात उपनिषद सिद्धान्तों के ऊपर ही आश्रित है।[2]

अपने श्रीभाष्य में उन्होंने श्रीमन्नारायण को ही जगत्कारण बताया है जो सूक्ष्म तथा चिदचित् विशिष्ट हैं। ईश्वर प्रेरक हैं और जीवात्मा भोक्ता, पंचमहाभूत एवं इन्द्रियां उनकी भोग्य वस्तुएँ हैं। ईश्वर, जीवात्मा और जीवरहित भूतेन्द्रिय तत्त्वत्रय कहलाते हैं।[3]

---

1. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.14.86- 118
2. द्रष्टव्य, पी. एन. श्रीनिवासचारी, समकालीन भारतीय तत्त्व विचार (मैसूर वि.वि) पृ.324-339
3. द्रष्टव्य, एम.एस. अय्यंगार- श्रीभाष्य तात्पर्य सार, 9

श्री रामानुज के महनीय उद्योगो से वैष्णव धर्म का दक्षिण देश में खूब प्रचार और प्रसार हुआ। उन्होंने 1098 ई0 में मैसूर के शासक बिट्टिदेव को वैष्णव धर्म में दीक्षित किया। 1100 ई0 के लगभग रामानुज ने मेलकोट में भगवान श्री नारायण के मन्दिर की स्थापना की। उन्होंने श्रीरंगम में अनेक मंदिरों का निर्माण किया तथा दक्षिण में विष्णु मंदिरों मे वैखानस आगम के द्वारा होने वाली उपासना को हटाकर उसके स्थान पर पाञ्चरात्र आगम को प्रतिष्ठित किया।[1]

वैष्णव आचार्यों का महान लक्ष्य मायावाद का खण्डन कर भक्ति के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करना था। वैष्णव भक्ति को सम्पूर्ण देश मे प्रसार करने वालों को रामानुजाचार्य के पश्चात् मध्वाचार्य का नेतृत्व प्राप्त हो सका। भविष्य पुराण में मध्वाचार्य का उल्लेख वैदिक धर्म के प्रचारक के रूप मे हुआ है तथा जो वैष्णव धर्म के पोषक थे।[2] श्री रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाए की भाँति इन्होंने भी अपने माध्व सम्प्रदाए को प्रचलित किया। श्री सम्प्रदाए के अनुयायी भक्त का भगवान के समान होकर उसके समक्ष किंकरवत बना रहना परम मुक्ति का ध्येय मानते हैं, तो माध्व सम्प्रदाए वाले भगवान में प्रवेश कर वा उसके साथ युक्त होकर समग्र आनन्द का उपभोग करना मोक्ष का अंतिम उद्धेश्य बताते हैं।[3] मध्वाचार्य द्वैत सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक हुए। उनके अनुसार, हरि परतत्व है, जगत सत्य है, जीवात्मा परमात्मा के अनुचर तथा उनसे पृथक हैं। जीवात्माओं में तारतम्य है और मुक्ति निजी सुखानुभूति है। मुक्ति के लिए विशुद्ध भक्ति ही साधन है। समस्त वेदों में हरि का ही वर्णन है। वेद, शास्त्र और प्रत्यक्ष प्रमाणो से भगवान के अस्तित्व का पता लगता है।[4]

---

1. रामानुज के जीवन चरित के लिए दृष्टव्य गोविन्दाचार्य, द लाइफ ऑफ रामानुज, मद्रास 1906 तथा श्री ग्रेट आचार्याज (नटेसन, मद्रास)

2. भवि0 पु0, प्रतिसर्ग पर्व, 4.8.7-12

3. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा - पृ0 80

4. कर्णामृतमहार्णव - 223, विशेष दृष्टव्य, एस. वेणुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ0 140

मध्वाचार्य ने शंकर के अद्वैत एव रामानुज के विशिष्टाद्वैत का विरोध करते हुए पाँच नित्य सम्बन्धो का वर्णन किया, 1- ईश्वर तथा जीवात्मा, 2- ईश्वर तथा जड जगत, 3. जीवात्मा तथा जड़ जगत, 4- एक जीवात्मा तथा दूसरी जीवात्मा, 5-एक जड़ पदार्थ और दूसरा जड पदार्थ।[1]

माध्वाचार्य के रचित ग्रन्थों में द्वैतमत का पूर्ण प्रतिपादन ही मुख्य उद्धेश्य है। वे सैंतीस ग्रन्थो के रचयिता माने जाते है।[2] उडुपी में मध्वाचार्य ने कृष्ण की मूर्ति स्थापित करके एक मन्दिर बनवाया उस मंदिर में पूजा का कार्य आठ मठाधीशों को सौंपा गया।[3] मध्वाचार्य की संगीत शैली मे रचित 'द्वादशस्तोत्र' से ही प्रेरणा पाकर नरहरितीर्थ आदि हरिदासों नें असंख्य कीर्तनो की रचना से वैष्णव भक्ति को सर्वव्यापी बनाया।[4]

वैष्णव भक्ति के प्रचारार्थ निंबार्काचार्य ने अपने द्वैतादैत सिद्धान्तों के आधार पर राधाकृष्ण की भक्ति प्रतिपादित की। आलोचित पुराण में निम्बार्क की उत्पन्ति कथा का उल्लेख है, जो निम्बादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।[5] इसी पुराण में अन्यत्र आख्यात है कि उन्होने दशसहस्रात्मक कृष्ण खण्ड की रचना की जो पुराण का अंग कहा गया है।[6] निम्बार्क का वेदान्त सिद्धान्त द्वैताद्वैतवादी है। जड़ जगत, जीवात्मा एवं परमात्मा एक दूसरे से भिन्न तथा अभिन्न दोनो ही हैं। अभिन्न इस अर्थ में कि जड़, जगत और जीवात्मा की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है, अपितु वे अपनी सत्ता और क्रिया के लिए ईश्वर पर आश्रित हैं।[7]

---

1. आर0 जी0 भण्डारकर, वैष्णव शैव तथा अन्य धार्मिक मत, पृ0 66
2. श्री एस0 एस0 राघवाचार एव के0 एम0 कृष्णाराव, तत्व निर्णय का कन्नड़ अनुवाद, 5, विशेष दृष्टव्य, एस0 वेणुगोपालाचार्य- वैष्णव भक्ति, पृ0 140
3. एस0 वेणुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ0 142
4. एच0 के0 वेदव्यासचार्य, कर्नाटकद हरिदासरु(परिमल प्रकाशन नंजनगूडु) 245, विशेष दृष्टव्य एस0 वेणुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ0 140
5. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.7.67-85
6. वही, 4.19.39
7. आर0 जी0 भण्डारकर, वैष्णव शैव तथा अन्य धार्मिक मत, पृ0 72

रामानुज ने जहाँ स्वय को नारायण तथा उनकी शक्तियो लक्ष्मी, भू, लीला तक ही सीमित रखा है वहीं निम्बार्क ने कृष्ण तथा सहस्रों सखियो द्वारा सेवित उनकी प्रिया राधा को प्रधानता प्रदान की है।[1] डा० एस० वेपु गोपालाचार्य के अनुसार निम्बार्क सम्प्रदाए रामानुजाचार्य के तत्व तथा गौड़ीय सम्प्रदाए का मिश्रण है।[2] इनके अनुयायी समस्त उन्तर भारत में फैले किन्तु मथुरा और बगाल मे अधिक।

वैष्णव भक्ति मे चौथा सम्प्रदाए है श्री विष्णु स्वामी सम्प्रदाए या रूद्र सम्प्रदाए। भविष्य पुराण में विष्णु स्वामी के जन्म की कथा का वर्णन आता है, जो वेद एव शास्त्रो के मर्मज्ञ थे।[3] एव जिन्होंने वैष्णवी सहिता की रचना की।[4] श्री विष्णु स्वामी के इष्टदेव नरसिंह थे और वे मानते थे कि विष्णु का शरीर नरसिंह के रूप में ही शाश्वत है। डा० एस० वेपुगोपालाचार्य के अनुसार इसी कारण उनसे प्रवर्तित सम्प्रदाए का नाम रूद्र सम्प्रदाए पड़ा होगा।[5] विष्णु स्वामी कृत वेदान्त की टीका का नाम सर्वज्ञ सूक्ति है। उनके अनुसार परमात्मा और जीवात्माओं का संबंध अग्नि और उसके स्फुलिंगों के सदृश है। एकैक परम आत्मा और उनकी अपरिमित शक्ति से सृष्ट जगत दोनों एक प्रकार सत्य है।[6]

श्रीधर स्वामी इसी सम्प्रदाए के अनुयायी बने। श्रीधर स्वामी ने भागवत के भाष्यों में विष्णु स्वामी कृत वेदान्त की टीका से अनेक श्लोक उद्धृत किए। श्रीधर स्वामी की टीका में विष्णु स्वामी के कतिपय सिद्धान्तों का भी आभास मिलता है।[7] भविष्य पुराण में श्रीधर स्वामी के जन्म की कथा का वर्णन है, जिन्होंने भागवत पुराण की टीका की रचना की।[8]

---

1. आर० जी० भण्डारकर, वैष्णव शैव तथा अन्य धार्मिक मत, पृ० 75
2. एस० वेपुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ० 151
3. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.8.31 – 57
4. वही, 4.19.47
5. एस० वेपुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ० 152
6. पूर्वोद्धृत, पृ० 152
7. बलदेव उपाध्याय, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, पृ० 339
8. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.8.13 – 30, 4.19.20

दक्षिण भारत की अपेक्षा उन्तर भारत मे वैष्णव धर्म का आन्दोलन अधिक सफल एवं प्रभावशाली बन सका क्योंकि दक्षिण भारत मे वैष्णव धर्म की अपेक्षा शैव धर्म का प्रभुत्व अत्यन्त प्राचीन काल से बना हुआ है।

तेरहवीं शती से उन्तर भारत में जन साधारण के हृदय मे देवमूर्तियों की शक्ति सम्बन्धी श्रद्धा कम होती गई। सिंध और राजस्थान के लाखो साकारोपासक वीर मूर्ति भंजक मुसलमानों से मारे गए या पराजित हुए। उनके मंदिर मस्जिदों में परिवर्तित होते गए और देवमूर्तियाँ तोड़ी गयी। इसी समय पर वैष्णव भक्ति के निर्गुण पंथी संत उन्तर भारतीयों के हृदयों में धैर्य धारण कराने में सहायक हुए। कबीर, नामदेव, रैदास, दादू, गुरू नानक आदि संतो के प्रयत्नों से उन्तर भारत के कोने-कोने मे वैष्णव भक्ति का प्रसार हुआ। कबीर, रैदास आदि संत श्री सम्प्रदाए के आचार्य रामानन्द स्वामी से दीक्षित थे।

उन्तरी भारत की संत परम्परा के इतिहास मे स्वामी रामानन्द का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उन्तर भारत में रामानन्द ने राम के नाम को लाकर वैष्णव धर्म को एक नया मोड़ दिया। रामानन्द की धार्मिक क्रियाशीलता को चौदहवीं शताब्दी में रखा जा सकता है। उन्होंने सभी जातियों के लोगों को अपना शिष्य बनाया और रामभक्ति के उपदेश दिए। भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि रामानन्द का जन्म काशी के एक कान्यकुब्ज परिवार ब्राह्मण के घर मे हुआ था। वे बाल्यकाल से ही ज्ञानी तथा रामनाम के अत्यन्त प्रेमी थे। आलोचित पुराण में उन्हें सूर्यदेव का अंश कहा गया है।[1] प्रवृन्ति परक विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में दीक्षित श्री रामानन्द स्वामी ने अपने शिष्यों को यज्ञोपवीत के बदले तुलसी माला का धारण कराया और वैदिक मंत्रों के बदले नामजप की दीक्षा दी।[2] उन्होंने रामवत सम्प्रदाय का प्रचार किया। इस सम्प्रदाए के बहुत से लोग वैरागी न बनकर गृहस्थ रूप में ही पाए जाते हैं। इन सबके लिए मूल मंत्र केवल 'राम' व 'सीताराम' हैं। इनके इष्टदेव श्री रामचन्द्र हैं, जिन्होंने ब्रह्म की दशा में निर्गुण और निराकार होते हुए भी भक्तों के लिए तथा विश्व का संकट दूर करने की भी इच्छा से नरदेह धारण किया था।[3]

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.7.53– 56
2. एस0 वेणुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ0 227
3. द्रष्टव्य, परशुराम चतुर्वेदी, उन्तरी भारत की संत परम्परा, पृ0 232

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि कबीर[1], नामदेव[2], रंकण वैश्य[3], रैदास[4], पीपा[5], नानक[6], नरश्री[7], त्रिलोचन वैश्य[8] ये सभी रामानन्द के शिष्य हुए। ये सभी निर्गुण भक्ति धारा से सम्बन्धित थे। इनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म का ही नाम राम है।

सगुण भक्ति धारा के कवियो मे भक्त सूरदास कवि का उल्लेख भविष्य पुराण में प्राप्त होता है। सूरदास के विषय में उल्लिखित है कि वे कृष्ण लीला के परमोत्तम कवि थे जो जन्माध थे तथा वे अकबर के समकालीन थे।[9]

समग्र उत्तरी भारत को विशेषत बंगाल को भक्ति से आप्लावित करने का श्रेय महाप्रभु चैतन्य को है। चैतन्य यद्यपि बंगाल के निवासी थे परन्तु उनके अनुयायी गोस्वामियों ने वृन्दावन को ही अपनी उपासना तथा शास्त्र चिन्तन का निकेतन बनाया, स्वयं महाप्रभु चैतन्य के धार्मिक सिद्धान्तो का तथा अध्यात्मिक तथ्यों का शास्त्रीय विवेचन वृन्दावन की पवित्र तीर्थ स्थली मे सम्पन्न हुआ। यद्यपि चैतन्यमत माध्वमत की ही गौडीय शाखा है तथापि माध्वमत द्वैतवाद का पक्षपाती है और चैतन्यमत अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त का अनुयायी।[10]

श्री चैतन्य महाप्रभु विशुद्ध भक्ति के लिए ज्ञान तथा तत्वशास्त्र संबंधी बाधक विचार, व्रतनियमों का पालन, पूजा की गतिविधि, आदि को अनावश्यक समझते थे। भगवान के नाम जप और गुणगान या कीर्तन उनके अतिसुलभ साधन हैं। वे भगवान के स्वरूप ज्ञान और परमात्मा से जीवात्माओ के संबंधों का ज्ञान भक्ति के लिए आवश्यक कहते थे। उनके अनुसार भक्ति दो प्रकार की है- वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति अध्यात्मिक विचारों के ज्ञान से और रागानुगा भक्ति परमात्मा के प्रति भक्त के हृदय में गोचर होने वाले स्वाभाविक प्रेम से उत्पन्न होती है। वे श्रीमत भागवत को सत्यान्वेषण के लिए अत्युपयुक्त धार्मिक ग्रन्थ

---

1. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.17.40
2. वही, 4.16.52
3. वही, 4.16.81
4. वही, 4.18.55
5. वही, 4.17.85
6. वही, 4.17.89
7. वही, 4.17.66
8. वही, 4.15.66
9. वही, 4.22.29-30

मान्ते थे। उनके अनुसार ब्रह्म प्राकृतगुणविहीन और अनन्त अप्राकृतगुण पूर्ण हैं। ब्रह्म का अर्थ है 'बडा'। अत ब्रह्म के श्रेष्ठतम गुणों और जीवात्माओं के हेयगुणो मे किसी तरह का साम्य नहीं हो सकता। परमात्मा नियन्त्रक और विश्वसृष्टा है। वे विश्व के व्यवस्थित तथा अव्यवस्थित दोनो प्रकार की वस्तुओं और विषयो के प्रभु हैं।[1] उन्होने राधाकृष्ण के प्रेम और भक्ति सबधी कीर्तनों का प्रचलन करके लोगों के मन को जीतने का प्रयत्न किया।

आलोचित पुराण में कृष्ण चैतन्य (चैतन्य प्रभु) के लिए यज्ञांशदेव एवं यज्ञकर्ता शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] उनके अनुसार श्रुति स्मृतियों से ब्रह्म के निज स्वरूप का पूर्ण ज्ञान होता है।[3] आलोचित पुराण में उनके अनुसार सुकृत (धर्म), पूर्ण (चैतन्य) और **अर्थ** (बीज) ये तीनो श्रुतियों के तत्व कहे गए हैं[4] आलोचित पुराणानुसार चैतन्य प्रभु शाक्तमत, शैव मत एव वैष्णव मत तीनों के प्रति समान श्रद्धाभाव रखते थे।[5] अन्यश्च उल्लिखित है कि कृष्ण ही राधाकृष्ण भगवान एवं सनातन पूर्ण ब्रह्मा हैं। अत चैतन्य कृष्ण के अनुसार राधाकृष्ण भगवान ही सबसे पर एवं स्वामी हैं।[6]

---

1. द्रष्टव्य, एस0 वेणुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ0 153
2. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.19.6
3. द्रष्टव्य, एस0 वेणुगोपालाचार्य, वैष्णव भक्ति, पृ0 153
4. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.19.11
5. वही, 4.19.35
6. वही, 4.19.63– 65

भविष्य पुराण में अनेक ऐसे कथानक भी उपलब्ध हैं जिनमें विभिन्न धर्मों के अनुयायी (यथा शाक्त, वैष्णव, शैव और सौर) भी उनके सिद्धान्तों के आगे नतमस्तक हुए। प्रतीत होता हे कि पुराणकार स्वयं चैतन्य प्रभु से अत्यन्त प्रभावित थे अतएव उन्होंने आलोचित पुराण में भागवत पुराण के टीकाकार श्रीधर[1], निम्बादित्य[2], रामानुज[3], विष्णु स्वामी[4], मध्वाचार्य[5], सिद्धान्त कौमुदी के रचनाकार भट्टोजि दीक्षित[6] वराहसंहिता एवं वृहज्जातक के रचयिता वाराहमिहि[7] वेदांग छन्द ग्रन्थ के रचनाकार वाणी भूषण[8] इन सभी से यज्ञांशदेव चैतन्यकृष्ण को श्रेष्ठ बताया हे तथा उपर्युक्त सभी महान विभूतियों को यज्ञांश देव कृष्ण चैतन्य का शिष्य स्वीकार किया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि भविष्य पुराण के इस भाग विशेष के प्रणयन काल के समय उत्तर भारत में सर्वत्र श्री चैतन्य प्रभु के दर्शन और उपदेशों का ही प्रभाव सर्वोपरि था।

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.19.20
2. वही, 4.19.39
3. वही, 4.19.37 – 38
4. वही, 4.19.47
5. वही, 4.19.66
6. वही, 4.20.9 – 10
7. वही, 4.20.20 – 21
8. वही, 4.20.34 – 35

देवता- शिव

आलोचित पुराण में विष्णु की ही भाँति शिव को भी प्रमुख देवता के रूप में परिगणित किया गया है। गणो के अधिनायक, नीलकण्ठ, शूल, अस्त्रधारी, विरूपाक्ष, तीनों लोकों के अधिपति[1], शशांक मौलि[2] महाबाहुभीम,[3] त्रिलोचन[4], नन्दिकेश्वर[5], शंभु[6] आदि कतिपय विरूपों के द्वारा उनकी महत्ता को प्रतिष्ठित किया गया है।

ऋग्वेद में शिव को 'रूद्र' नाम से अभिहित किया गया है ऋग्वैदिक देवमण्डल में रूद्र का स्थान गौण था क्योंकि केवल तीन सम्पूर्ण सूक्तों में तथा अंशत दो मंत्रों में सोम के साथ देवता के रूप में इनकी ख्याति है।[7] परन्तु उत्तर वैदिक काल मे रूद्र शिवत्व के लिए विशिष्ट देव के रूप में पूजे जाने लगे। यजुर्वेद में एक सम्पूर्ण अध्याय रूद्र के लिए समर्पित है। तैन्तिरीय संहिता का सोलहवां अध्याय 'रूद्राध्याय' के रूप में विन्यस्त किया गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के द्वितीय सूक्त में रूद्र की स्तुति में अनेक सूक्त आख्यात हैं।[8] वैदिक ग्रन्थों में रूद्र के स्वरूप का विशद वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार रूद्र की भुजाएँ तथा शरीर बलवान है।[9] उनके ओष्ठ सुन्दर तथा सिर पर बालों का एक जटाजूट है, जिसके कारण उन्हें 'कपर्दी' सम्बोधन प्रदान किया गया है।[10] आलोचित पुराण में भी शिव के लिए 'कपर्दी' विरूद का प्रयोग देखने को मिलता है।[11] उनका रंग भूरा, आकृति देदीप्यमान तथा अंग सुवर्ण के अलंकरणों से विभूषित है।[12]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 136.63
2. वही, 142.22
3. वही, 22.46
4. वही, 55.7
5. वही, 178.14
6. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.3.25-26
7. ए.ए. मैकडोनल, वैदिक माइथॉलोजी, हिन्दी अनुवाद, पृ0 139
8. अथर्ववेद, 11.2.5- 6
9. ऋग्वेद, 2.33
10. वही, 1.14.1
11. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 3.1.7
12. द्रष्टव्य, बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ0 468

अथर्ववेद में उनके मुखमण्डल, उदर तथा त्वचा आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।[1] शुक्ल यजुर्वेद में उन्हें सहस्राक्ष, नीलग्रीव, शतिकर्ण, कपर्दी, व्युप्तकेश तथा हरिकेश कहा गया है।[2] उनके माथे पर उर्ष्णीष तथा शरीर का रंग कपिल बताया गया है।[3] अवान्तर युगीन पौराणिक भावना में शिव के व्यक्तित्त्व एवं स्वरूप का सम्यक् उपबृंहण देखने को मिलता है।

शिव के वैदिक कालीन व्यक्तित्त्व का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष योद्धा के रूप में उनके विशिष्ट सम्मान का निरूपण है। वे धनुषबाण[4] अथवा युद्धास्त्रों से सुसज्जित पिनाकी और धनुर्धारी उपाधियों के साथ वर्णित हैं।

आलोचित पुराण में पिनाकी और धनुर्धारी शिव के लिए एक कथानक मिलता है कि जब देवाधिदेव शंकर अपने दिव्य रथ पर विराजमान हुए तो उनके लिए 'अजगव' नामक धनुष का निर्माण किया गया जिसे सत्यदेव भगवान ने अत्यन्त कठोर बनाया था किन्तु देवाधिदेव शंकर द्वारा उसे भग्न होते देखकर आश्चर्यचकित होकर भगवान विष्णु ने उस समय स्वर्गलोक के सार द्वारा एक दिव्य धनुष का निर्माण किया। जब भगवान रूद्र नेउस विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाई तब से वह 'पिनाकी' के नाम से प्रख्यात हो गए।[5]

आलोचित पुराण में धनुष का वर्णन करते हुए उल्लिखित है कि उस धनुष की प्रत्यञ्चा शेष और बाण इन्द्र हुए थे तथा अग्नि और वायु उस बाण के पक्ष एवं शल्य स्वयं सनातन विष्णु भगवान हुए।[6]

---

1. अथर्ववेद, 12.5.6
2. शुक्ल यजुर्वेद, 16.28 - 29
3. वही, 16.22 - 18
4. अथर्ववेद, 11.1 - 12
5. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.12.36 - 46
6. वही, 4.12.40 - 41

वैदिक वाङ्.मय में रूद्र को "प्रशस्तरथी" कहा गया है। अत उनका प्रमुख वाहन रथ था।[1] आलोचित पुराण में शिव के रथ का वर्णन प्राप्त होता है कि उस रथ मे चन्द्र और सूर्य के सार से चक्र, सुमेर पर्वत के सार से केतु (धुरा) निर्मित था। ब्रह्मा उस रथ के सारथी पद पर विराजमान थे और वेदों ने उनके वाहन का रूप धारण किया।[2]

उपनिषदों में शिव का संबंध ईश्वर, जीव और प्रकृति तत्वों से स्थापित कर उन्हे सर्वोच्च देव का पद प्रदान किया गया है।[3] सूत्र ग्रन्थों में रूद्र को विभिन्न प्रकृतियों के देवता के रूप में तथा विशिष्ट देवता के रूप में आराध्य कहा गया है। कठिन परिस्थितियोंमें यथा पर्वत, जंगल, श्मशान तथा गोशालादि से गुजरते समय सुरक्षा एवं कल्याण के लिए रूद्र की स्तुति तथा मंत्र का जप किया जाता था।

महाभारत में शिव का उल्लेख वैदिक एवं अन्यान्य लौकिक देव मण्डल में श्रेष्ठ देवता के रूप में किया गया है। एक कथा में कृष्ण एवं अर्जुन द्वारा शिवाराधना की सूचना मिलती है। आलोचित पुराण में भी कृष्ण द्वारा रूद्र की मानसिक स्तुति का उल्लेख आता है।[4] इसमें अर्जुन ने पशुपति अस्त्र की प्राप्ति के लिए किरातवेशधारी शिव की आराधना की थी।[5] महाभारत मे शिव के दो परस्पर विपरीत स्वाभावों का उल्लेख मिलता है। आर० जी० भण्डारकर के अनुसार एक ओर जहाँ शिव शक्तिशाली, क्रोधी एवं प्रचण्ड रूप ग्रहण करते हैं वहीं दूसरी ओर कृपालु, दानशील एवं कल्याणकारी रूप भी उल्लेखनीय है।[6]

---

1. वाजसनेयी संहिता, 16.26
2. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.12.33- 35
3. छान्दोग्य उप०, 3.7.4, बृहदारण्यकोपनिषद्, 3.9.4, श्वेताश्वतर उप०, 3.2.4
4. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व 3.1.6-8, महाभारत, अनुशासनपर्व, 14 अध्याय, द्रष्टव्य आर० जी० भण्डारकर, वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 129
5. महाभारतवन पर्व, 38-40
6. रामगोपाल भण्डारकर- वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 131

शिव का रौद्ररूप

आलोचित पुराण में अनेक स्थलों पर शिव के रौद्र रूप का उल्लेख मिलता है। दक्षयज्ञ के प्रसंग में सभी देवगण पहुँचकर उन्हें नमस्कार पूर्वक यथेच्छ विचरण कर रहे थे किन्तु भूतनाथ महादेव ने उन्हें किसी भाँति नमस्कार नहीं किया जिससे क्रुद्ध होकर दक्ष ने उन्हें शिवभाग देना अस्वीकार कर दिया तब मृगव्याध शिव ने उस अपमान को सहन न कर 'वीर भद्र' का रूप धारण किया। 'वीर भद्र' शिव ने तीन नेत्र, तीन सिर और तीन चरण धारण किए और यज्ञ पुरूष का अंग छिन्न- भिन्न कर दिया।[1] वामन पुराण में क्रोद्धावेश मे युद्ध के लिए तत्पर होने पर शिव पावक सदृश त्रिशूल के अतिरिक्त धनुषबाण तथा गदा आदि अस्त्रों को धारण किए हुए वर्णित मिलते हैं।[2] वामन पुराण में उल्लिखित है कि शिव का रौद्र रूप इतना भयानक है कि उससे विष्णु भी भयभीत हो जाते हैं।[3] आलोचित पुराण में ही शिव के रौद्र रूप धारण करने का एक अन्य कथानक उपलब्ध है कि जब ब्रह्मा शारदा देवी को देखकर कामपीड़ित हो जाते हैं तो मां शारदा देवी ब्रह्मा से क्रुद्ध होकर कहती हैं कि यह तुम्हारा पाँचवा मुख अशुभ होने के नाते कन्धे पर रहने योग्य नहीं है। वेदमय ये चार मुख ही शुभ हैं। तब भयंकर रूद्र का आर्विभाव होता है, जो भैरव, कालात्मा, सप्तवाहन नाम से प्रख्यात हैं और रूद्र वेश में भीषण गर्जना करते हुए नरसिंह के समान नखों द्वारा ब्रह्मा के पाँचवे मुख का छेदन कर देते हैं।[4]

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी शिव के रौद्र रूप का उल्लेख मिलता है। वायु पुराण में शिव की स्तुति करते हुए उन्हें 'उग्ररूपधर' तथा 'क्रोद्धागार' जैसे विशेषणों से अभिहित किया गया है।[5]
ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णन मिलता है कि शुक्राचार्य ने विष्णु की स्तुति करते हुए उन्हें क्रूर एवं वीभत्स रूपधारी कहा है।[6] इसी प्रकार विष्णु पुराण में एक स्थान पर ब्रह्मा ने रूद्र की उत्पत्ति को क्रोध से निर्दिष्ट किया है।[7] मत्स्य पुराण में आषाढ़ मास में शिव के उग्ररूप की उपासना का विधान विकृत है।[8]

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.10.70- 75
2. वामन पु0, 4.2, 24.25
3. वही, 5.1
4. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.13.1-9
5. वायु0 पु0, 24.240, 24.259 'भीमाय चोग्ररूपधराय च'
6. ब्रह्माण्ड पु0, 3.72
7. विष्णु पु0, 4.1.85 ' क्रोधात्च रूद्रः'
8. मत्स्य पु0, 56.3 'आषाढ़े उग्रमर्चयेत्------।'

उपर्युक्त पुराणांशो से स्पष्ट होता है कि पौराणिक धर्म में शिव के वैदिक रूद्र स्वरूप को उपबृंहित किया गया है।

कामान्तक शिव

आलोचित पुराण में शिव का कामदाहक स्वरूप भी चित्रित किया गया है। जब शिव पार्वती के साथ कैलाश की गुफा में सहस्र वर्ष तक आनन्द मग्न रहे उसी बीच देवगणों ने लोक नाश के भय से भयभीत होकर ब्रह्मा को आगे कर शिव की आराधना की। उस समय शिव पार्वती लज्जित तो हुए, किन्तु शिव के क्रोध से भयभीत होकर अन्य देवों ने पलायन किया किन्तु बलवान प्रद्युम्न (कामदेव) निश्चल वृषभ की भाँति उसी स्थान पर होने के नाते उस प्रचण्ड रूद्र कोपाग्नि में दग्ध हो गए। भस्ममय होकर उस स्थूल रूप के परित्याग पूर्वक सूक्ष्म देह की प्राप्ति की जिससे उन्हें 'अनङ्ग' कहा जाने लगा। तत्पश्चात रति ने गिरिजावल्लभ शंकर की आराधना की।[1] वामन पुराण में शंकर के अनेक नामों में 'कामेश्वर' नाम भी आख्यात है।[2]

शिव की कामान्तक मूर्ति का विश्लेषण डा0 जे0 एन0 बनर्जी[3] ने किया है, जो सम्प्रति गंगैकोण्डचोलपुरम् के बुद्धीश्वर मन्दिर में स्थापित है। शिव का यह रूप तीन भागों में अंकित है। प्रतिमा के मध्य में शिव योगासन मुद्रा में बैठे हैं। ध्यान मुद्रा में होने वे कारण उनके सामने की दो आँखे बन्द हैं। उनके वाम भाग में कामदेव और रति का अंकन है। रति भयभीत मुद्रा में हैं और कामदेव उन्हें समझा रहे हैं। शिव के दक्षिण भाग में पार्वती तथा अन्य गण अंजलिबद्ध मुद्रा में स्तुति करते प्रदर्शित हैं। प्रतिमा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि शिव क्रोधाक्रान्त हैं तथा अपने तीसरे नेत्र से जो थोड़ा खुला है, काम को भस्म कर देना चाहते हैं। इस मुद्रा को काम देव के भस्म करने के पूर्व की मुद्रा का प्रतीक माना जा सकता है।

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.14.74- 79
2. वामन पु0, 55.6
3. जे0 एन0 बनर्जी, द डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ0 488

शिव कपालिन्

आलोचित पुराण में दो स्थलों पर कपालिन् शिव की कथा का उल्लेख मिलता है। किन्तु दोनों ही कथानकों में अन्तर स्पष्ट है। पहला कथानक भविष्य पुराण के ब्रह्मपर्व में प्राप्त होता है, जिसमे कार्तिकेय शिव से कहते हैं कि आपके हाथ में अविवेक के कारण किसी ब्राह्मण के कपाल का स्थापन होगा और उससे आपकी कपाली नाम से ख्याति होगी।[1] कथानक इस प्रकार है कि एक बार ब्रह्मा और शिव में अहंकारवश अपनी–अपनी श्रेष्ठता को लेकर विवाद खड़ा हो गया। जब ब्रह्मा के पाँचवे मुख ने शिव पर अट्टहास किया तब रुद्र ने अपने नख के अग्रभाग से ब्रह्मा के उस महान हय शिर को धड़ से अलग कर दिया। अलग होने पर वह सिर रुद्र के हाथों में स्थित हो गया और वह 'कपाली' कहलाए।[2] कथानक के अनुसार इस विवाद में शिव को ब्रह्मा के समक्ष लघुता माननी पड़ी।[3] दूसरा कथानक भविष्य पुराण के प्रतिसर्गपर्व के चौथे चरण में प्राप्त होता है किन्तु इस कथानक में ब्रह्मा को शारदा देवी के श्राप के कारण अपने पाँचवे मुख से हाथ धोना पड़ा। श्राप के फलस्वरूप भयंकर रुद्र का आविर्भाव हुआ और रुद्र ने नृसिंह समान नखो से ब्रह्मा के पाँचवे मुख का छेदन किया। शिव जी ने ब्रह्मवध से भयभीत होकर उनके कपाल को ग्रहण किया जिससे उनकी भैरव की 'कपाली' नाम से प्रख्याति हुई।[4] ब्रह्म हत्या से मुक्त होने के लिए शिव ने रुद्राक्ष को धारण किया और काशी आकर उस कपाल का मोचन किया, जिससे उस स्थान की 'कपालमोचन' नामक तीर्थपद से ख्याति हुई।[5] वामन पुराण में भी शिव के कपाली स्वरूप की कथा प्राप्त होती है।[6]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 22.10– 11
2. वही, 22.12– 14
3. वही, 22.34– 35
4. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.13.1–12
5. वही, 4.13.12– 17
6. वामन पु0, 2.30– 37

गणेश

भविष्य पुराण में गणेश का शिव पार्वती के यहाँ जन्म लेने का उल्लेख मिलता है। एक बार ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न शिव ने पार्वती समेत व्रती होकर भगवान गणेश की आराधना की। शिव जी की पूजा से प्रसन्न होकर भगवान गणेश ने वर याचना के लिए कहा। शिव जी ने वर माँगा कि आप (गणेश) प्रसन्नतया मेरा पुत्र होना स्वीकार करें। इसे सुनकर भक्त वत्सल एवं आदि शून्य गणेश ने तेजरूप मे पार्वती के समस्त अंगों से निकलकर बालक रूप धारण किया। उस समय शंकर के घर पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में सभी इन्द्रादि देव उपस्थित हुए।[1]

चार भुजाएँ, साँप का यज्ञोपवीत धारण किए, गजेन्द्र वदन, श्वेत वस्त्र, बाँए दोनों हाथों मे फरसा और छड़ी दाहिने दोनों हाथों मे दण्ड एवं कमल लिए, चुहे पर स्थित, महाकाय शंख, कुन्द, पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, सुबुद्धि, दुर्बुद्धि से युक्त, एक दाँत वाले, भयनाशक अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित सम्पूर्ण आपन्तियो के विदारक इस प्रकार से गणेश का वर्णन आलोचित पुराण में प्राप्त होता है।[2] एक स्थल पर गणेश को विनायक कहा गया है।[3] वामन पुराण में उल्लिखित है कि गणेश का जन्म बिना नायक के हुआ था। अत: वे विनायक थे।[4] आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि गांगेय स्वामी कार्तिकेय पुरुषों और स्त्रियों के लक्षणों को निर्दिष्ट कर रहे थे। उनके इस कार्य में विघ्न उपस्थित करने के कारण ' विघ्नेश विनायक' कहलाए।[5] विघ्न उपस्थित होने के कारण स्वामी कार्तिकेय ने उनके मुख से एक दाँत को निकाल दिया। जिसे शंकर के कहने पर पुन उस विषाण (दाँत) को गणेश के हाथ में सौंप दिया। यही कारण है कि विनायक की प्रतिमा विषाण युक्त हाथ से समन्वित दिखाई पड़ती है।[6] इसी सम्बन्ध में एक अन्य कथानक भी मिलता है कि जामदग्न्य ऋषि के कोप वश खण्डित-दंत होने के कारण उन्हें एक दन्त रूप प्राप्त हुआ था।[7] शनि की क्रूर दृष्टि के कारण उनका सिर विलीन हो गया। देवों द्वारा निन्दित होने पर जनभयंकर शनि ने गज का मस्तक (काटकर) गणेश के मस्तक स्थान पर रख दिया, जिस कारण वह गजानन कहलाए।[8]

---

1. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.12.87– 94
2. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 2.19.140–142
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 178.5–7
4. वामन पु0, 28.74
5. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 22.6– 7
6. वही, 22.40– 46
7. दृष्टव्य, एस.एन. राय, पौराणिक धर्म एवं समाज,पृ0 43
8. भवि0 पु0, प्रतिसर्गपर्व, 4.12.95–100

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार शिव द्वारा गणेश को अन्य सभी देवों के पूर्व पूजन का वरदान प्राप्त था। गजानन पूजा प्राय. समस्त शुभ कार्यों को प्रारम्भ करने के पहले करने का विधान मिलता है।[1]

मत्स्य पुराण में गजानन उत्पत्ति का प्रसंग भविष्य पुराण से थोड़ा भिन्न प्राप्त होता है। इसमें शिव द्वारा पुत्र की अभिलाषा से निर्मित गजाकृति पुतले का निर्माण एवं गंगाजल द्वारा उसकी प्राण प्रतिष्ठा का उल्लेख है।[2] इसमें एक अन्य स्थल पर गणेश प्रतिमा निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है। शिव के वाम भाग में पार्वती तथा उसके पास गणेश की मूर्ति निर्मित करने का विधान है।[3] श्री गोपी नाथ राव ने मत्स्य पुराण के उल्लेख को गणेश प्रतिमा निर्माण के लिए महत्वपूर्ण साक्ष्य माना है।[4] त्रिवेन्द्रम की हाथी दाँत से निर्मित मूर्तियाँ इसी प्रकार निर्मित हैं।[5] अजमेर संग्रहालय में सुरक्षित गणेश की मूर्ति उनके शैशवावस्था की है तथा शिव एवं पार्वती की मूर्तियों के निचले भाग में निर्मित है।[6]

विघ्न विनायक की पूजा विधि

आलोचित पुराण में ब्रह्मपर्व के 29वें और 30वें अध्याय में गणेश की पूजा का सविधि उल्लेख मिलता है। भविष्य पुराण के अनुसार विघ्नों को दूर करने के लिए विधि विधान सहित गणेश तथा ग्रहों की पूजा करने से निर्विघ्न कार्य की समाप्ति होती है तथा उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।[7]

विघ्नों को दूर करने के लिए मनुष्य को पुण्य दिन में यथाविधि सफेद सरसों के कल्क से जिसमें घृत एवं सुगन्धित द्रव्य मिले हों स्नान करें। चतुर्थी तिथि (शुक्ल पक्ष) में वृहस्पति के दिन वीर नक्षत्र के सम्मुख यह क्रिया करें। शुभ आसन पर बैठ कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराएँ। शिव पार्वती तथा गणेश की पूजा करके पितरों समेत सभी ग्रहों की पूजा करें।[8] जो मनुष्य चतुर्थी में उपवास कर उनकी पूजा करता है उसके द्वारा आरम्भ किए हुआ कार्य नि:सन्देह सफल होते हैं।[9] उमा और महेश के पुत्र गणेश जिसके अनुकूल हों उसके सभी कार्यों में सारा संसार सहायक रहता है। इस लिए श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में तोरण वंदनवार बाँधकर कुंकुम, गुग्गुल धूप कमल के फूल की माला, कूटा हुआ तिल, जूही एवं धतूर का फूल इन

---

1. ब्रह्माण्ड पु0, 3.42-44
2. मत्स्य पु0, 154.502- 505
3. वही, 260.18
4. द्रष्टव्य, गोपीनाथ राव, एलेमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, जिल्द-2, भाग-2,पृ0 38-39
5. गो0 ना0 राव, एलेमेण्टस ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग-2, खण्ड-1,पृ0136-137,फलक 25
6. वही, फलक26, चित्र-2
7. भवि0पु0, ब्राह्मपर्व, 23.12-31
8. वही, 23.12- 16

सामग्रियों से विधिवत पूजा की जाए तो उसके सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं। स्वामी गणेश के प्रसन्न होने पर पितर, देवता और मनुष्य सभी संतुष्ट रहते हैं। अतएव चन्दन, कमल एवं लड्डू आदि सामग्रियों द्वारा सविधि उनकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिये।[1]

शक्ति की पौराणिक महत्ता

आलोचित पुराण में प्रकृति देवी द्वारा महालक्ष्मी एवं महाकाली का रूप धारण करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] शक्ति को अष्टभुजी[3], चन्द्रिका देवी[4], अम्बिका देवी[5], चण्डिका देवी[6], जगदम्बिका देवी[7] आदि अभिधानों से विभूषित किया गया है। सप्तमातृकाएँ , ब्राह्मणी, रूद्राणी, कौमारी वैष्णवी, इन्द्राणी, वाराही तथा चामुण्डा देवी जो पापनाशिनी, महापराक्रमी, महाबलशाली, वरदायिनी स्वरूपा हैं, का उल्लेख भविष्य पुराण में किया गया है।[8] उपद्रवों का नाश करने वाली देवी दुर्गा नाम से आख्यात हैं।[9] देवों को उत्पन्न करने के कारण लोकमाता के नाम से प्रसिद्ध हुईं।[10] शक्ति को पौराणिक भावना में विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र, आदि श्रेष्ठ देवों द्वारा स्तुत्य कहा गया है। इन उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि पुराण संरचना के काल तक शक्ति को सर्वशक्तिमयी देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी।

शक्ति की पौराणिक महत्ता के प्रतिपादक अनेक वर्णन वायु[11], ब्रह्माण्ड[12], विष्णु[13], मत्स्य[14], मार्कण्डेय[15], देवी भागवत[16], स्कन्द[17], वराह[18] तथा शिव[19] पुराणों में भी मिलते हैं।

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 30.5-9
2. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 4.12.63,75
3. भवि० पु०, मध्यमपर्व, 2.8.26
4. वही, 2.8.27
5. वही, 2.19.50
6. वही, 2.19.51
7. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 3.21.26
8. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 177.1-21
9. वही, 178.12-13
10. वही, 178.10-11
11. वायु पु०, 9.86-87
12. ब्रह्माण्ड पु०, 4.29.145
13. विष्णु पु०, 5.1.86
14. मत्स्य पु०, 13.56
15. मार्कण्डेय पु०, 82.1,84.36
16. देवीभागवत पु०, 5.2.3-44
17. स्कन्द पु०,7.1.83, 1.60

स्वतन्त्र देवीके रूप मे उनका आस्तित्व पौराणिक वाङ्.मय की ही देन है। वैदिक वाङ्.मय में वे किसी न किसी देव की पत्नी के रूप में ही परिकल्पित है। इस संदर्भ मे आर० जी० भण्डारकर का कथन समीचीन प्रतीत होता है कि वैदिक अथवा गृह्यसूत्रों में विकृत रूद्राणी अथवा भवानी स्वतंत्र रूप में उल्लिखित नहीं हैं।[1]
दुर्गा अथवा शक्ति का प्रारम्भिक स्वरूप महाभारत के भीष्म पर्व में निर्दिष्ट है।[2] कौरवों के साथ हो रहे युद्ध में विजय के लिए अर्जुन ने कृष्ण के परामर्श से दुर्गा की स्तुति की थी। स्तुतियों में वर्णित कुमारी, काली, कपाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, कटाला, विजया, कौशिकी, उमा आदि शक्ति के विविध नाम उसे स्वतन्त्र देवी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

असुरों के विनाश में शक्ति का सहयोग

आलोचित पुराण में शक्ति के अनेक स्वरूपो में उसके असुरहन्ता रूप को विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है। एक स्थल पर उन्हें मधु कैटभ को सम्मोहित करनेवाली, महिषासुर का उन्मूलन करने वाली, धूम्रलोचन को भस्म करने वाली, चण्डमुण्ड की विनाशिनी, रक्तबीज के रक्त का पान करने वाली, समस्त दैत्यों को भयभीत करने वाली, शम्भु एवं निशम्भु दैत्य का वध करने वाली देवी के रूप में उल्लिखित किया गया है।[3]

वामन पुराण के अनुसार ब्रह्मा, आदित्य, चन्द्रमा, प्रजापति, यक्ष, वायु आदि देवों के तेज को ग्रहण कर शक्ति का व्यक्तित्व असुर हन्ता बन गया।[4] इसी पुराण में आख्यात है कि असुरों की यातना से कुपित होकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के मुख से महान तेज प्रकट हुआ, जो कात्यायन ऋषि के आश्रम में एकत्र होकर महान तेज पिण्ड बन गया।[5] महर्षि कात्यायन द्वारा देव तेज संयुक्त उक्त पिण्ड सहस्र सूर्य के सदृश जाज्वल्यमान तथा देवी कात्यायनी का शरीर पिण्ड बन गया।[6] महेश्वर के तेज से उनका मुख, अग्नि के तेज से तीन नेत्र, यम के तेज से केश, तथा हरि के तेज से उनकी अट्ठारह भुजाएँ उत्पन्न हुईं।[7] आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि

---

1. दृष्टव्य, राम गोपाल भण्डारकर, वैष्णव शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ0 163
2. महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय–23
3. भवि0 पु0 प्रतिसर्गपर्व, 3.21.27– 31
4. वामन पु0, 10.17
5. वही, 19.6–7
6. वही, 19.8
7. वही, 19.9

भद्रकाली रूप देवी ने ज्योतिर्लिंग से प्रकट होकर महिषासुर का वध किया।[1] ब्रह्मरूपिणी देवी ने सीता रूप में रावण का विनाश किया।[2] विजया नामक सात वर्ष की कुमारी का रूप धारण कर मुर नामक दैत्य का वध किया[3] और एकादशी के रूप में नरकासुर का विनाश किया।[4]

आलोचित पुराण में वर्णित व्रतोपवास

आलोचित पुराण में विशेष तिथियों पर रखे जाने वाले उपवासों का क्रमानुसार विधिवत उल्लेख प्राप्त होता है। एक स्थल पर इन उपवासों में ग्रहण किए जाने वाले आहार का तिथि के अनुसार वर्णन प्राप्त होता है। यथा प्रतिपदा तिथि को दुग्धार, द्वितीया को नमक के बिना भोजन, तृतीया को तिलान्न, चतुर्थी को दुग्धाहार, पञ्चमी को फलाहार, षष्ठी को शाकाहार, सप्तमी को बेल का आहार, अष्टमी को उरदी का पीसा हुआ आहार, नवमी को बिना अग्नि का पका हुआ भोजन अर्थात् फलाहार, दशमी तथा एकादशी को घृत का आहार, द्वादशी को दुग्धाहार, त्रयोदशी को गोमूत्र का आहार, चतुर्दशी को जव का आहार, पौणमासी को कुश मिश्रित जल का आहार, अमावस्या को हविष्यान्न।[5] विभिन्न तिथियों में इन उपर्युक्त आहारों का विधान है। इस विधि से उपवास रखने से पुण्य फल की प्राप्ति होती है।[6] अन्यश्च उल्लिखित है कि जो व्यक्ति इन नियमों का आश्विन की नवमी, माघ मास की सप्तमी, वैशाख की तृतीया, तथा कार्तिक की पूर्णिमा को इन तिथियों के व्रत को प्रारम्भ करता है वह चाहे ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो, नर नारी अथवा शूद्र हो, मन एवं इन्द्रियों को संयत रख कर करता है, वह दीर्घायु होकर सविता लोक को प्राप्त करता है।[7]

---

1. भवि० पु० प्रतिसर्गपर्व, 4.16.19
2. वही, 4.16.26 – 27
3. वही, 4.16.35 – 36
4. वही, 4.16.42
5. भवि०पु०, ब्राह्मपर्व, 16.18 – 20
6. वही, 16.21 – 25
7. वही, 16.25–26

प्रतिपदा तिथि व्रत

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि भगवान ब्रह्मा ने इसी पूर्व तिथि प्रतिपदा को ही दिशाओं, उपदिशाओं देवता एवं दानवों की रचना की। लोगों ने इसका प्रतिपादन किया। अतः यह तिथि प्रतिपदा कही जाती है।[1] जो मनुष्य विधिवत एवं भक्तिपूर्वक पूर्णिमा की तिथि को उपवास रखकर प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की पूजा करता है, वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है।[2] कार्तिक मास की प्रतिपदा तिथि बलि राज्य दायिनी, पशुकल्याणकारी एवं अशुभ विनाशिनी है[3] एवं चैत्र की प्रतिपदा तिथि परम पुण्यदायिनी है। इस तिथि को चण्डाल का स्पर्श कर, स्नान मात्र कर लेने से कोई पाप नहीं लगता।[4] आलोचित पुराण में इस तिथि के महात्म्य के लिए एक कथानक प्राप्त होता है। जब विश्वामित्र ने ब्राह्मण की पदवी जीतने के लिए विपुल तपस्या की किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व की पदवी नहीं मिली प्रत्युत अनेक विघ्न एवं कष्ट झेलने पड़े तब उन्होंने ब्रह्मप्रिया प्रतिपदा तिथि को नियमपूर्वक उपवास रखा जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें परम दुर्लभ ब्राह्मणत्व का वरदान दिया।[5]

पुष्प द्वितीया व्रतः

यह द्वितीया तिथि अश्विनी कुमारों की परम इष्ट तिथि है। इसी पुष्प तिथि को उन्होंने देवत्व एवं यज्ञों में भाग प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया।[6] कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को पुष्प द्वितीया कहा जाता है। इस व्रत में केवल पुष्पाहार किया जाता है।[7] इस तिथि में विधिवत व्रतोपवास करने से मनुष्य ब्राह्मण जाति में जन्म लेता है एवं राज्य पद का अधिकारी होता है।[8]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 16.43-44
2. वही, 18.1
3. वही, 18.28
4. वही, 18.23-26
5. वही, 16.56-58
6. वही, 19.80
7. वही, 19.82
8. वही, 19.86- 88

अशून्यशयन नामक द्वितीया व्रतः

इस व्रत के आराध्य देव विष्णु तथा लक्ष्मी हैं।[1] जिस समय भगवान विष्णु लक्ष्मी के साथ शयन करते हैं, उसी समय वह अशून्यःशयना नामक द्वितीया उपोषित करनी चाहिये अर्थात् श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को श्रीवत्सधारी विष्णु की लक्ष्मी समेत विधिवत् पूजा करनी चाहिये।[2] इस तिथि में विष्णु के लिए मधुर फल यथा खजूर, मातुलिंग (बिजौरा) श्वेत शिर (नारियल) को अर्पित करना चाहिये।[3] इस
इस पुण्यशाली व्रत की उपोषिका स्त्री कभी विधवा नहीं होती। इसी प्रकार विधिवत् उपोषक पुरुष भी सर्वदा पत्नी सहित रहता है।[4] परम फल प्रदान करने वाली इस तिथि को फलद्वितीया भी कहा जाता है।[5]

तृतीया तिथि व्रतः

इस व्रत की आराध्य देवी गौरी पार्वती हैं।[6] अपने अनुकूल पति की प्राप्ति के लिए तृतीया तिथि व्रत का पालन करना चाहिये। इस व्रत में नमक वर्जित है। सुवर्णमयी गौरी की वस्त्रालंकारों से विभूषित मूर्ति की स्थापना करनी चाहिये।[7] माघ तथा भाद्रपद की तृतीया विशेषतया स्त्रियों के लिए धन्य कही जाती है तथा वैशाख मास की तृतीया समान्य लोगों के लिए।[8] तृतीया तिथि के व्रत से स्त्री अपनी इच्छानुकूल पति की प्राप्ति तथा सूर्यलोक, चन्द्रलोक, सप्तर्षियों के लोक तथा भगवान वामदेव की सभा में पति के साथ स्थान प्राप्त करती है। पति के साथ इच्छुक फलों का उपभोग करती है, यथा इन्द्राणी, अरुन्धती, रोहिणी को प्राप्त हुआ।[9]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 20.6
2. वही, 20.5- 6
3. वही, 20.16-19
4. वही, 20-2
5. वही, 19.90
6. वही, 21.4-7
7. वही, 21.7-14
8. वही, 21.23-25
9. वही, 21.14- 22

चतुर्थी तिथि व्रत :

चतुर्थी तिथि व्रत के आराध्य देव भगवान विनायक हैं।[1] इस चतुर्थी तिथि को जो मनुष्य निराहार व्रत का पालन करके ब्राह्मण को तिल का दान करता है तथा अन्त में स्वयं तिल मिश्रित ओदन का भोजन करता है। इस प्रकार दो वर्ष तक अपने इस व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न कर लेता है, उसके ऊपर विनायक प्रसन्न होते हैं तथा उनके समस्त मनोवाञ्छित कार्यों की सिद्धि करते हैं।[2] चतुर्थी तीन प्रकार की बताई है- शिवा, शांता और सुखा। इन तीनों आराध्यदेव गणेश विनायक हैं।[3]

शांता चतुर्थी व्रत :

माघ मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का नाम शांतिदायिनी होने के कारण शांता है जो सदा शान्ति प्रदान करती है इसमें जो विशेषकर स्त्रियाँ उपवास दान स्नान आदि के द्वारा विघ्न विनायक की पूजा करती हैं, उनके होमादिक कार्य हजार गुने अधिक फल देते हैं। इसमें भी घी, लवण, मालपूए के दान का विधान है।[4]

शिवा चतुर्थी व्रत

भादो के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का नाम शिवा है।[5] उसमें किया गया स्नान, दान, उपवास और जप गणेश की कृपा से सौ गुना अधिक होता है।[6] उसमें लवण तथा घी का दान अत्यन्त शुभ बताया गया है तथा गुड़ का बना मालपुआ ब्राह्मणों को खिलाना विशेष पुण्यप्रद होता है।[7] इस तिथि में जो स्त्रियाँ गुड़, लवण और मालपुआ से सास-ससुर की पूजा अर्थात् मीठी और नमकीन वस्तुएँ खिलाती हैं गणेश की प्रसन्नता से वे सभी निश्चित सौभाग्यशालिनी होती हैं। विशेषकर कन्याओं को इस विधि से अवश्य पूजन करना चाहिये।[8]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 22.1-2
2. वही, 22.1-2
3. वही, 31.1
4. वही, 31.6-10
5. वही, 31.1
6. वही, 31.2
7. वही, 31.3
8. वही, 31.4-5

सुखा चतुर्थी व्रत :

शुक्ल पक्ष में मंगल के दिन वाली चौथ को सुखा कहते हैं जो सुख प्रदान करती है। जो स्त्री पुरूष इस चतुर्थी में उपवास करके रात में लाल फल और लेप चन्दन द्वारा मंगल की पूजा में सर्वप्रथम गणेश की पूजा करते हैं उसे प्रसन्न होकर वे रूप सौंदर्य एवं सौभाग्य प्रदान करते हैं।[1] इस सुखा चतुर्थी को अंगारक की चौथ भी कहते हैं।[2] यह पुण्यस्वरूपा तिथि सभी तिथियों में श्रेष्ठ है। जिसमें गणपति की कृपा द्वारा मनुष्य शिव लोक को प्राप्त करता है।[3]

नागपञ्चमी व्रत :

पञ्चमी तिथि जो नागों के आनन्द को बढ़ाने वाली है, नागों को अतिप्रिय है। अतः जो लोग पञ्चमी में नागों को दूध से स्नान पूजन कराते हैं, उनके कुल को वे सदैव अभयपूर्वक प्राण दान देते रहते हैं।[4]

नाग के काट लेने पर उस प्राणी के निमित्त भादों मास के कृष्णपक्ष की पञ्चमी अधिक पुण्य प्रदान करती है।[5] जो मनुष्य भादो की पञ्चमी में श्रद्धा पूर्वक काले रंग की साँपों की मूर्ति बनाकर उसे गंध फूल, घी, गुग्गुल से उसकी पूजा करता है तो तक्षकादिक साँप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और इसके कुल में सात पीढ़ी तक साँपों का कभी भय नहीं होता।[6] इसीप्रकार श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी[7] के दिन और कुवार मास की पञ्चमी[8] का विधिवत पूजा करने से उन्हें साँपों का कभी भय नहीं रहता।

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 31.11- 22
2. वही, 31.51
3. वही, 31.58- 60
4. वही, 32.1- 5
5. वही, 32.42-46
6. वही, 37.1- 3
7. वही, 36.60- 64
8. वही, 38.1-5

षष्ठी तिथि व्रत :

इस तिथि के आराध्य देवता कार्तिकेय हैं। कार्तिकेय को यह महा षष्ठी तिथि अत्यन्त प्रिय है क्योंकि इसी तिथि में वे देव सेना के अधिनायक हुए। आलोचित पुराण के अनुसार स्कन्द को शिव जी का ज्येष्ठ पुत्र बनाने का श्रेय इसी षष्ठी तिथि को प्राप्त है।[1] शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष की षष्ठी में जो ब्रह्मचर्य पूर्वक व्रत रहकर फलाहार करता है उसे स्कन्द सिद्धि, धैर्य, प्रसन्नता, राज्य, आयु एवं लोक परलोक का सुख प्रदान करते हैं। जो नक्त व्रत करता है उसकी ख्याति लोक परलोक में होती हैं।[2]

कार्तिकेय मास की षष्ठी तिथि में नक्त भोजन करना चाहिये। पूजनोपरान्त दक्षिण की ओर मुख करके स्कन्द को अर्घ्य घी, दही आदि का 'सप्तर्षिदारजस्कन्द' आदि मंत्रों के अर्घ्य प्रदान करके ब्राह्मणों को भोजन एवं दान देना चाहिये।[3] इस तिथि का विशेष महत्व है। राजा को अपना छूटा हुआ राज्य प्राप्त हो जाता है। अतएव विजय की अभिलाषा वाले को सदैव इसका व्रत करना चाहिये।[4]

भादो मास की षष्ठी तिथि में स्नान दान एवं किए गए सभी कुछ कार्य अक्षय होते हैं। यह तिथि पुण्य प्रदान करने वाली पापनाशिनी, कल्याण एवं शान्ति स्वरूप एवं कार्तिकेय के लिए अत्यन्त प्रिय है।[5]

शाक सप्तमी तिथि व्रत :

आलोचित पुराण के अनुसार सूर्य को सप्तमी तिथि में ही स्त्री, पुत्र और सुन्दर शरीर की प्राप्ति हुई। इसलिए सूर्य को सप्तमी तिथि अत्यन्त प्रिय है।[6] शाक सप्तमी व्रत का विशिष्ट भोज्य पदार्थ साग है। यह व्रत कार्तिक शुक्ल पक्ष से आरम्भ करना चाहिये। यह व्रत चार पारणों में सम्पन्न होता है। जिसे अपराजित तथा करवीर

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 39.3-4
2. वही, 39.9-13
3. वही, 39.4-7
4. वही, 39.1-2
5. वही, 46.1-4
6. वही, 47.46

पुष्पादि गंध धूप आदि तथा भोज्य पदार्थों से इस व्रत को सम्पन्न करें।[1] इस व्रत से त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है। कालान्तर में वह राजा होता है। शत्रुओं द्वारा कभी पराजित नहीं होता[2]।

महासप्तमी व्रत :

यह सप्तमी, रथ सप्तमी के नाम से भी विख्यात है। जिसमें उपवास रहकर धन, पुत्र, विद्या की प्राप्ति होती है।[3] इस व्रत के लिए माघ शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में एक बार भोजन, षष्ठी में नक्त व्रत एवं सप्तमी में उपवास का विधान बताया है तो कुछ ने षष्ठी और सप्तमी में पारण का विधान कहा है।[4] तीसरे पारण के अन्त में दुगने तप में पूजा रथ दान और रथ यात्रा अवश्य करनी चाहिये।[5]

श्री सत्यनारायण व्रत

आलोचित पुराण में सत्य नारायण व्रत का माहात्म्य छः अध्यायों में उल्लिखित हैं। प्रस्तुत संदर्भ में अनेक कथानकों का उल्लेख किया गया है। भविष्य पुराण के अनुसार नारायण (विष्णु) देव की पूजा करने से निर्धन, धनवान, अपुत्री, पुत्रवान, अपहरण किए गए राज्य का लाभ, अंधे को सुन्दर नेत्र, बंधे हुए को बंधन मोक्ष, भयभीत निर्भय की प्राप्ति करता है तथा सभी मनोकामनाएँ सफल होती हैं।[6]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 47.57–72
2. वही, 47.49–53
3. वही, 57.14– 16
4. वही, 51.1– 2
5. वही, 51.12–13
6. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 2.24.21– 23

प्रातःकाल दातुन समेत स्नान करने के उपरान्त पवित्र होकर तुलसी की मंजरी हाथ में लेकर सत्यस्थित भगवान का ध्यान करना चाहिये। सयंकाल में उनकी विधिवत पूजा करनी चाहिये। पाँच कलशों को सुसज्जित करके कदली के तोरण समेत आत्मसूक्त द्वारा सुवर्ण युक्त शालिग्राम की अर्चना करते हुए पंचामृत[1] से स्नान कराके चन्दन अर्चित कर देना चाहिये। हवन, तर्पण और मार्जन सुसम्पन्न करते हुए छः अध्याय वाली सत्यनारायण की कथा का श्रवण करना चाहिये। इसके उपरान्त प्रसाद वितरित करना चाहिये।[2]

---

1. पंचामृत, जो गाए के दूध, दही, घी, गंगाजल और शहद से बनता है।
2. भवि० पु०, प्रतिसर्गपर्व, 2.24.25– 33

श्राद्ध

श्राद्ध का अर्थ

ब्रह्म पुराण में लिखा है कि देश, काल तथा पात्र का विचार करके पितरों के लिए जो कुछ भी वस्तु श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को दी जाती है उसे श्राद्ध कहते हैं।[1] मिताक्षरा के अनुसार प्रेत के लाभ के लिए श्रद्धा पूर्वक भोज्य पदार्थ तथा अन्य पदार्थों का त्याग श्राद्ध कहा जाता है।[2]

धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में श्राद्ध की बड़ी प्रशंसा की गई है। बौधायन का कथन है कि पितरों के लिए श्राद्ध करने से आयु, स्वर्ग, कीर्ति और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।[3] हरिवंश में लिखा है कि श्राद्ध पर ही लोक की प्रतिष्ठा है। इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है। सुमन्तु के अनुसार श्राद्ध से बढ़कर अधिक कल्याणकर कोई वस्तु नहीं है। अतः मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये।[5] विष्णु पुराण का मत है कि यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध कर्म करता है तो इससे ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र अन्य देवता पितर तथा ऋषिगण प्रसन्न होते हैं। यम का विधान है कि पितरों की पूजा करने से मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पशु, सुख, धन धान्य की प्राप्ति करता है।[6] इस प्रकार प्रत्येक हिन्दू के लिए पितरों का श्राद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है।

---

1. 'देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
   पितृनुदिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्।। '

2. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.217 की मिताक्षरा
3. बौधायन धर्मसूत्र, 2.8.1
4. हरिवंश, 1.21.1
5. स्मृति चन्द्रिका, पृ0 333 में सुमन्तु का कथन
6. स्मृति चन्द्रिका, पृ0 333 में यम।

श्राद्ध के भेद

भविष्य पुराण में नित्य नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध सपिण्डन पार्वण, उत्तम गोष्ठ कर्मांग तथा वैदिक कर्म इन्हें सुसम्पन्न करना मनुष्यों के लिए नितान्त आवश्यक कहा गया है।[1] प्रतिदिन किए जाने वाले श्राद्ध को नित्य श्राद्ध कहते हैं।[2] एकोदिष्ट श्राद्ध को 'नैमित्तिक श्राद्ध' कहा है, जिसे सदैव करना चाहिये और इसमें विषम संख्या वाले ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिये।[3] कामनावश किए गए श्राद्ध को 'काम्य' कहा गया है। इसे पार्वण के विधान द्वारा समाप्त करना चाहिये।[4] वृद्धि के लिए किए गए श्राद्ध को 'वृद्धिश्राद्ध' बताया है।[5]
गंध, जल तथा तिल मिश्रित चार पात्रों की स्थापना अर्घ्य के निमित्त करके पितृ के पात्रों में प्रेत पात्र के अर्घ्य जल का सम्मिश्रण मंत्रोचारण पूर्वक करना इसी का नाम 'सपिण्डन श्राद्ध' है।[6] पर्व की तिथियों में किए जाने वाले श्राद्ध को 'पार्वण' कहते हैं और अमावस्या के दिन किया गया श्राद्ध भी पार्वण कहा जाता है।[7] गौओं के उद्धेश्य से किए जाने वाले श्राद्ध को 'गोष्ठ श्राद्ध' कहते हैं।[8] पितरों के तृप्ति के लिए एवं इसी ब्याज से विद्वान ब्राह्मणों की कुछ सेवा भी हो जाएगी इस विचार से किए गए श्राद्ध को " सम्पत्सुखार्थ" कहा जाता है।[9]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 183.6
2. वही, 183.9
3. वही, 183.10
4. वही, 183.11
5. वही, 183.12
6. वही, 183.13– 14
7. वही, 183.15
8. वही, 183.15
9. वही, 183.16

बुद्धि शुद्धि के निमित्त जिस कर्म में ब्राह्मणों को भोजना कराया जाता है उसे 'शुद्ध्यर्थ' बताया है।[1] गर्भाधान के समय चन्द्र शुद्धि में सीमन्तोन्नयन तथा पुंसवन में किए जाने वाले श्राद्ध को 'कर्माङ्ग' कहते हैं।[2] देवताओं के उद्धेश्य से विदेश यात्रा के समय सप्तमी आदि तिथियों में घी द्वारा जो श्राद्ध किया जाता है, उसे 'यात्रार्थिक' कहा जाता है। इसके सुसम्पन्न करने से यात्रा सफल होती है।[3] शरीर के अवयवों के उपचयार्थ अश्वों के वृद्ध्यर्थ और पुष्टि के लिए किए गए श्राद्ध को 'औपचारिक' कहा जाता है।[4] 'वार्षिक श्राद्ध' को सभी श्राद्धों में श्रेष्ठ कहा गया है, जो मृत प्राणी के मरण मास तिथि में विद्वान ब्राह्मणों द्वारा सुसम्पन्न किया जाता है।[5] जो मनुष्य 'वार्षिक श्राद्ध' को नहीं करते 'तामिस्र' नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है।[6]

इस प्रकार भविष्य पुराण में बारह प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख है। कल्पतरू ने भी बारह प्रकार के श्राद्धों को बताया है।[7] बृहस्पति[8] के अनुसार श्राद्ध पाँच प्रकार के होते हैं- नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण। मनु ने भी इन्हीं पाँच विभागों को स्वीकार किया है।।

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 183.16
2. वही, 183.17
3. वही, 183.18
4. वही, 183.19
5. वही, 183.20
6. वही, 183.25
7. कल्पतरू, पृ0 6 में विश्वामित्र का उद्धृत वचन।
8. 'नित्यं नैमित्तिकं काम्यं, वृद्धिश्राद्धं तथैव च।
   पार्वण चेति मनुना श्राद्धं पंचविधिं स्मृतम्।।

   रूद्रधर के 'श्राद्ध विवेक' में बृहस्पति का उद्धरण, पृ0 1

श्राद्ध विधि

रात में श्राद्ध कदापि नहीं करना चाहिये[1] तथा दोनो संध्याओं एवे सूर्यास्त के समय श्राद्ध न करें।[2] मातृ यज्ञ किए बिना पिता का श्राद्ध का परिवेषण नहीं करना चाहिये।[3] आलोचित पुराण में मातृ श्राद्ध की विधि विस्तार पूर्वक वर्णित है।[4] जो मनुष्य, मृत प्राणी के दिन को नहीं जानता, अमावस्या के दिन उसे उस मृत प्राणी के निमिन्त वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये।[5]

विभिन्न वर्णों के लिए अशौच की अवधि भी भिन्न-भिन्न उल्लिखित है। मरणाशौच में ब्राह्मण दसवें दिन शुद्ध होता है, बारहवें दिन क्षत्रिय, पन्द्रहवें दिन वैश्य और एक मास में शूद्र की शुद्धि होती है।[6] पद्म पुराण में उल्लिखित है कि राजा के लिए केवल एक ही दिन अशौच रहता है, परन्तु साधारणतया तीन दिन में भी सबकी शुद्धि हो सकती है।[7] इसी पुराण से पता चलता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात एक वर्ष तक अशौच रहता है। माता के लिए छ. मास, स्त्री के लिए तीन मास तथा भाई और पुत्र के लिए डेढ़ मास तक अशौच माना जाता है।[8]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 185.1
2. वही, 185.1
3. वही, 185.2
4. वही, 185.4-28
5. वही, 183.28-29
6. वही, 186.39
7. पद्म पु0, सृष्टि खण्ड, 10.3
8. वही, 47.275

अन्तर्वेदी एवं बहिर्वेदी कर्म

भविष्य पुराण के अनुसार जो कर्म ज्ञान द्वारा सिद्ध होते हैं उसे अन्तर्वेदी कर्म कहते हैं।[1] अन्तर्वेदी के भी दो रूप उल्लिखित हैं 1. निष्काम कर्म 2. व्यसनादिक कर्म।[2] इनसे जो भिन्न कर्म हैं यथा पौंसला स्थापन, जलाशय दान, ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना तथा गुरूओं की सेवा, देवताओं की मूर्तियों का स्थापन, पूजा कर्म करना, इस प्रकार के कर्म बहिर्वेदी कहे गए हैं।[3] अर्थात् जो कर्म परोपकार से सम्बन्धित हैं वे बहिर्वेदी कर्म के अन्तर्गत आते हैं। आलोचित पुराण में अन्तर्वेदी एवं बहिर्वेदी कर्मों की व्याख्या पूर्त निर्णय के प्रसंग में प्राप्त होती है। इष्टापूर्त एक पारिभाषिक शब्द है। रघुनन्दन भट्ट ने अपने मलमासतत्व में जातुकर्ण्य के वचन से अग्निहोत्र, वैश्वदेव, सत्य, तप, वेदाध्ययन एवं उनके अनुकरण को 'इष्ट' तथा वापी, कूप तडाग, देवमन्दिर, पौंसला, बगीचा आदि को 'पूर्त' कहा है।[4] संहिता भाग में 'इष्टापूर्त' का व्यापक वर्णन है।[5] बह्वृचपरिशिष्ट में इष्टापूर्त के सभी अंगों प्रतिमा, कूप, आराम, तडाग, वापी आदि की प्रतिष्ठा यज्ञ, हवन एवं शान्तियों का उल्लेख है।[6] षड्विंशब्राह्मण में भी इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।[7] आलोचित पुराण के मध्यम पर्व में उपवन, सरोवर, छोटे जलाशय, बावली, लघु उपवन, श्रेष्ठ वृक्ष पिप्पल वृक्ष, वट वृक्ष, बिल्व वृक्ष, रूद्रवृक्ष, पुष्पवाटिका, तुलसी, गोचर-भूमि, देवी आदि की प्रतिष्ठा का विधि विधान सहित विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

---

1. भवि0 पु0, मध्यमपर्व, 1.9.2
2. वही, 1.9.4
3. वही, 1.9.3-4
4. मलमासतत्व, उद्धृत, जातुकर्ण्य।"अग्निहोत्रं तपः सत्यं--------पूर्तमित्यभिधीयते।"
5. वाजसनेयी संहिता, 15.14, तै0 सं0 4.7.3, का0 सं0 18.18, मै0 सं0, 7.12, 4.22
6. बह्वृचपरिशिष्ट, अध्याय-4,खण्ड-1 से 21 तक।
7. षड्विंशब्राह्मण, 6.10.1-3

भविष्य पुराण में स्पष्ट रूप से आख्यात है कि जीर्ण-शीर्ण सेतु, प्रसाद और बावलियों की प्रतिष्ठा कभी नहीं करनी चाहिये।[1] प्रसाद, सेतु और सरोवर आदि की प्रतिष्ठा तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए बताई गई है।[2] किन्तु, नदी के तीर, श्मशान, और मनुष्यों के आश्रमों के सन्निकट तालाब का निर्माण न करना चाहिये।[3] गृहबावली, सरोवर, तालाब, महल कूप, आदि के नव निर्माण करने के उपरान्त उसकी प्रतिष्ठा के साथ किसी अन्य यज्ञ का प्रारम्भ नहीं करना चाहिये।[4] मनुष्यों को यथाशक्ति समयानुसार अपनी पुण्य की कमाई परोपकार के कार्यों में व्यय करनी चाहिये।[5] एकदम नष्ट-भ्रष्ट एवं जीर्ण-शीर्ण मन्दिर की रक्षा करने वाला मनुष्य विष्णु लोक को प्राप्त होता है।[6]

वर्षाकाल में बावली मे जल रखने से अग्निष्टोक, यज्ञ के फल, शरद काल में उसमें जल रखे तो वह जल यज्ञीय जल से अधिक महत्वपूर्ण होता है एवं गर्मी के दिनों में उसमें जल (पीने योग्य) रखने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है[7] देवालयों के सामने ब्राह्मणों की सामूहिक बस्ती राजद्वार और चौराहे पर पुष्करिणी नामक जलाशय बनाना चाहियो।[8] इस प्रकार देव और ब्राह्मणों के लिए सभी भाँति से सुख प्रदान करना चाहियो।[9] सघन, छाया, पुष्प और फलों वाले वृक्षों का आरोपण मार्ग चौराहे या देवालय में करने से शुभ फल की प्राप्ति होती है।[10]

---

1. भवि० पु०, मध्यम पर्व, 1.9.18-19
2. वही, 1.9.20
3. वही, 1.9.36
4. वही, 1.9.38
5. वही, 1.9.40
6. वही, 1.9.53
7. वही, 1.9.57-58
8. वही, 1.9.77
9. वही, 1.9.78
10. वही, 1.10.35

वृक्षों के आरोपण का फल

भविष्य पुराण में विभिन्न वृक्षों के आरोपण के फल का विधान बताया गया है। प्राचीन भारत में वृक्षो को लगाना पुण्य कर्म समझा जाता था और वे पुत्र का प्रतिनिधित्व करते थे।[1] मध्यम पर्व से पता चलता हे कि पीपल के वृक्ष आरोपण करने से धन, अशोक से शोक नाश, पाकड़ से स्त्री प्राप्ति, बेल से आयु, जामुन से धन की प्राप्ति होती हे।[2] आँवले से स्वर्ग, बरगद से मोक्ष, आम से सभी कामनाएँ, सुपारी से सिद्धि, कदम्ब से कीर्ति की प्राप्ति होती है।[3]

---

1. भवि0 पु0, मध्यम पर्व, 1.10. 37
2. वही, 1.10.40
3. वही, 1.10.42

तीर्थ विवरण

प्रचीन साहित्य जैसे ऋग्वेद तथा अन्य संहिताओ में तीर्थ शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में प्रतीत होता है कि 'तीर्थ' शब्द मार्ग या सड़क के अर्थ मे आया है, परन्तु ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ पर यह शब्द पवित्र स्थान का वाचक है।[1] ऋग्वेद[2] की ऋचा 'सुवास्त्वा अधितुग्वान्' की व्याख्या में निरुक्त ने कहा है कि सुवास्तु एक नदी है और तुग्वन् का अर्थ है तीर्थ(तरण स्थान या प्रसिद्ध स्थल)। तैत्तरीय संहिता[3] में उल्लेख मिलता है कि यजमान को तीर्थ पर स्नान करना चाहिये। प्राचीन काल में तीर्थ वह स्थल था जहाँ पर किसी नदी को आसानी से पार किया जा सकता था। धीरे-धीरे आगे चलकर तीर्थ शब्द पवित्रता से सम्पन्न स्थान का वाचक बन गया।

तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते है- स्थल की कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक विशेषताओं के कारण, किसी जलीय स्थल की अनोखी रमणीयता के कारण, किसी तप·पूत ऋषि या मुनि के वहाँ रहने के कारण। अतः तीर्थ का अर्थ है वह स्थान या स्थल या जलयुक्त स्थान जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जागृत करे। ऐसा भी कहा जा सकता है कि वे स्थल जिन्हें बुध लोगों एवं मुनियों ने तीर्थों की संज्ञा दी तीर्थ हैं, जैसा कि अपने व्याकरण में पाणिनी ने नदी एवं बुद्धि जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। स्कन्द पुराण[4] ने कहा है कि जहाँ प्राचीन काल के सत् पुरुष पुण्यार्जन के लिए रहते थे, वे स्थल तीर्थ हैं। तीर्थ की महिमा महाभारत[5] और पुराणों में गायी गयी है, जिसमें तीर्थों को यज्ञों से उत्तम कहा गया है।

---

1. ऋग्वेद, 10.31.3
2. वही, 8.19.34
3. तैत्तरीय संहिता, 6.1.12
4. स्कन्द पु., 1.2.13.10
5. महाभारत, वनपर्व, 82.13.10

कुरूक्षेत्र

आलोचित पुराण में कुरूक्षेत्र का उल्लेख अनेक स्थलो पर किया गया है।[1] एक स्थल पर उल्लिखित है कि यहाँ देवगण और सिद्धगण निवास करते है।[2] कुरूक्षेत्र हरियाणा के अम्बाला और करनाल जिले में सरस्वती और दृष्द्वती (घाघरा) के मध्य का प्रदेश है। आरम्भ में यह आर्यधर्म व सभ्यता का गृह है। यह पवित्र भूमि ब्रह्मावर्त, धर्मक्षेत्र, स्यमन्त, पंचक, रामह्रद और सन्निहित करके भी प्रसिद्ध है। मत्स्य पुराण[3] में लिखा है कि सूर्यग्रहण में महापुण्य वाले व्यक्ति यहाँ आते हैं। वामन पुराण[4] में उल्लिखित है कि यहाँ पर वामन भगवान कुरूध्वज रूप में वर्तमान हैं। जिनका दर्शन प्रह्लाद ने किया था।

कपालमोचन

भविष्य पुराण में उल्लेख मिलता है कि शिव जी ने ब्रह्मवध से भयभीत होकर उनके कपाल को ग्रहण किया तथा काशी आकर उस कपाल का मोचन किया। जिस कारण उस स्थान की 'कपालमोचन' नामक तीर्थपद से विस्तृत ख्याति हुई।[5] यह वाराणसी में है। मत्स्य पुराण[6], वराह पुराण[7], पद्म पुराण[8], कूर्म पुराण[9] तथा वामन पुराण[10] में यही वर्णन उल्लिखित है।

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31, 189.23
2. वही, 189.23
3. मत्स्य पुराण, 191वां अध्याय
4. वामन पु., 63.5, 55.3
5. भवि. पु., प्रतिसर्ग पर्व, 4.13.12- 16
6. मत्स्य पु., 183.84-103
7. वराह पु., 97.24-26
8. पद्म पु., 5.14.185- 189
9. कूर्म पु., 1.35.15
10. वामन पु., 3.499, 51

केदार

भविष्य पुराण में केदार तीर्थ का उल्लेख आता है[1] केदार तीर्थ मे महाश्रावणी पूर्णिमा मे स्नान करना शुभ माना गया है।[2] वामन पुराण में वर्णन प्राप्त होता है कि शंकर की जटा से वीटा निकली और पृथ्वी पर गिर पड़ी। उस वीटा के गिरने से पर्वत विदीर्ण होकर समतल पृथ्वी वाला हो गया और वहाँ केदार नामक तीर्थ की स्थापना हुई।[3]

गोकर्ण

भविष्य पुराण में इसका उल्लेख मात्र प्राप्त होता है।[4] स्थाणुवट के उत्तर दिशा में महात्मा रावण द्वारा गोकर्ण नामक लिंग की स्थापना हुई है।[5] यह बम्बई प्रान्त के उत्तरी कनारा जिले मे एक गाँव है। महाभारत के अनुसार दक्षिण की ताम्रपर्णी नदी के देश में विख्यात गोकर्ण तीर्थ है।[6] गोकर्ण क्षेत्र में मृत्यु होने से मनुष्य निस्सन्देह शिव रूप हो जाता है, उसका फिर जन्म नहीं होता।[7]

चक्रतीर्थ

चक्रतीर्थ का भी भविष्य पुराण में उल्लेख मात्र प्राप्त होता है।[8] वामन पुराण में उल्लेख आता है कि इस तीर्थ का गण सुचक्राक्ष था, जिसे उसने कार्तिकेय को राज्याभिषेक के समय दिया था।[9] यह तीर्थ

---

1. भवि. पु., प्रतिसर्ग पर्व, 2.31.4
2. भवि. पु., मध्यम पर्व, 2.8.128 - 129
3. वामन पु., 34.10 - 15
4. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24 -31
5. वामन पु., सरोमाहात्म्य, 25.16
6. महाभारत, वन पर्व, अध्याय-88
7. पद्म पु., 22वां अध्याय
8. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24 - 31
9. वामन पु., 7.37

नीम सागर सीतापुर से 20 मील पश्चिम की ओर है। स्कन्द पुराण में उल्लिखित है कि सेतुमल के समीप यह तीर्थ है।[1]

नैमिष

भविष्य पुराण में नैमिष तीर्थ का उल्लेख मिलता है।[2]

प्रयाग

भविष्य पुराण में प्रयाग तीर्थ का सबसे अधिक उल्लेख प्राप्त होता है।[3] आलोचित पुराण में इसे तीर्थराज कहा गया है।[4] प्रयाग में विद्यमान रहते जो अन्यत्र स्नान करता है, वह पशु समान है।[5]आलोचित पुराण में उल्लेखित है कि माघ मास में प्रयाग में स्नान करने से अनेक पुण्य फल प्राप्त होते हैं।[6]

पुष्कर

पुष्कर तीर्थ का भी आलोचित पुराण में अनेक बार उल्लेख किया गया है।[7] भविष्य पुराण मे पुष्कर के जल की प्रशंसा करते हुए उल्लिखित है कि पुष्कर का जल स्वच्छ, चन्द्र की भाँति विशुद्ध, ब्राह्मणगण द्वारा सेवित, ओंकार से विभूषित तथा ब्रह्मा की आँखों द्वारा पवित्र तथा जो पापनाशक है।[8] पुष्कर में

---

1. स्कन्द पु., सेतुबन्ध खण्ड, तीसरा अध्याय
2. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24–31
3. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24–31, ब्राह्मपर्व, 189.23, प्रतिसर्गपर्व, 4.6.64, मध्यम पर्व, 1.5.41, प्रतिसर्ग पर्व, 4.9.1–2, मध्यम पर्व, 2.8.128–129
4. भवि. पु., प्रतिसर्गपर्व, 4.6.64
5. भवि. पु., मध्यमपर्व, 1.5.41
6. वही, 8.128– 129
7. भवि. पु., मध्यम पर्व, 1.1.1, ब्राह्मपर्व, 155.29, मध्यमपर्व, 2.8.128–129, ब्राह्मपर्व, 189.23, ब्राह्मपर्व, 55.24–31
8. भवि. पु., मध्यमपर्व, 1.1.1

महाकार्तिकी पूर्णिमा में स्नान करना शुभ कहा गया है।[1] पुष्कर क्षेत्र में देवगण तथा सिद्धगण निवास करते हैं।[2] आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि ब्रह्मा ने पुष्कर तीर्थ मे जाकर सूर्य देव की आराधना की थी।[3]

पृथूदक

भविष्य पुराण में पृथू दक का उल्लेख मात्र किया गया है।[4] वामन पुराण में इसे तीर्थों में प्रधान तीर्थ कहा गया है।[5] इसको आजकल पिहोवा कहते हैं, जो थानेश्वर से 14 मील पश्चिम है। यह एक छोटा कस्बा है, जो पवित्र स्थान है। यहाँ अनेक उत्तम मन्दिर हैं। अश्विन और चैत्र मास की अमावस्या को यहाँ मेला लगता है।

बदरिकाश्रम

भविष्य पुराण में उल्लिखित है कि भादो मास की पूर्णिमा में बदरिकाश्रम में स्नान करना शुभ होता है।[6] यह हिमालय पर्वत के गढ़वाल क्षेत्र में एक प्रसिद्ध स्थान है। यह भारत वर्ष के चार प्रसिद्ध धामों में से एक है। जगदुरू शंकराचार्य ने बद्रीनाथ की मूर्ति स्थापित की थी। बद्रीनाथ की सबसे ऊँची चोटी समुद्र जल से 23,200 फीट ऊँची है। यहाँ पर अलकनन्दा नदी बहती है। बद्रीनाथ का मन्दिर इस नदी के दाहिने किनारे पर पत्थर से बना हुआ 45 फीट ऊँचा है। मन्दिर के भीतर एक हाथ ऊँची बद्रीनारायण की द्विभुजी श्यामल मूर्ति विराजमान है। बहुमूल्य वस्त्राभूषण और विचित्र मुकुट से सुशोभित वह ध्यान में मग्न बैठी है।

---

1. भवि. पु., मध्यम पर्व, 2.8.128-129
2. भवि.पु.,ब्राह्मपर्व, 189.23
3. वही,155.24
4. वही, 55.24-31
5. वामन पु., 12.45
6. भवि. पु., मध्यम पर्व, 2.8.128-129

ब्रह्मावर्त

भविष्य पुराण मे ब्रह्मावर्त का उल्लेख मिलता है।[1] यहाँ स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। सरस्वती एवं दृषद्वती के मध्य की पवित्र भूमि ब्रह्मावर्त के नाम से प्रसिद्ध है।[2]

वाराणसी

यहाँ पर देवगण एव सिद्धगण निवास करते हैं।[3] यह नगरी गंगा तट पर स्थित है। यह परम हरि का क्षेत्र है। यह वरूणा और अस्सी नदियों के बीच मे स्थित है। इसके कई प्राचीन नाम है- काशी, अविमुक्त क्षेत्र, पुष्पवती, रूद्र क्षेत्र, शिवपुरी और महाश्मशान।

मानस तीर्थ

भविष्य पुराण मे उल्लिखित है कि मानस तीर्थ मे जो सत्य रूप जल से परिपूर्ण एव रागद्वेष रूपी मल से हीन है, इसमें स्नान करने से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं।[4] यह एक महान तीर्थ है तथा इसमें ब्रह्मदर्शन प्राप्त होता है।[5] हिमालय में एक झील है, जो कैलाश के उत्तर एवं गुरला मान्धाता के दक्षिण, बीच में अवस्थित है यह झील समुद्र से 14,950 फीट ऊँची है। इससे मानस तीर्थ का समीकरण किया जाता है।

---

1. भवि. पु., ब्राह्मपर्व, 55.24-31
2. वही, 7.60
3. वही, 189.128-129
4. भवि. पु., प्रतिसर्ग पर्व, 2.31.11
5. वही, 2.31.12

शालग्राम

भविष्य पुराण के अनुसार शालग्राम मे ही जाकर विष्णु ने सूर्य देव की आराधना की थी।[1] शालग्राम तीर्थ में महाचैत्री की पूर्णिमा में स्नान करना शुभ कहा गया है।[2] यह नेपाल में हिमालय की सप्तगण्डकी पर्वत श्रेणी में एक स्थान है। यहाँ भरत और पुलह ऋषि ने तपस्या की थी। मार्कण्डेय ऋषि का यहाँ जन्म हुआ था। इसी के समीप से गण्डक नदी निकलती है।

हरिद्वार

कुम्भ राशि में बृहस्पति के स्थित होने पर महान उत्सव के आयोजन का उल्लेख मिलता है।[3] यह नगर वर्तमान उत्तर प्रदेश में है, जहाँ हर बारहवें वर्ष मे कुम्भ का मेला लगता है।

---

1. भवि. पु , ब्राह्मपर्व, 55.24
2. भवि. पु., मध्यम पर्व, 2.8.128- 129
3. भवि. पु., प्रतिसर्ग पर्व, 4.7.36- 37

अष्टम अध्याय

शिल्प एवं कला

भविष्य पुराण में वर्णित सूर्य-मंदिर निर्माण योजना

यह मत सर्वसम्मति से स्वीकार किया जा चुका है कि भारतीय सौर धर्म में प्रतिमा-पूजा की उपज देशज नहीं है। भारत में इसके प्रचार का श्रेय ईरान के मग नामक पुरोहितों को दिया जाता है, जो सूर्य की उपासना 'मिथ्र' अथवा 'मिहिर' के नाम से करते थे। इसके पूर्व भारत में सूर्य की उपासना या तो चक्र के माध्यम से अथवा कमल के माध्यम से होती थी। मग पुरोहितों ने अपना आवास पजाब में चन्द्रभागा के तट पर बनाया तथा यहीं पर उन्होंने मूल स्थान नामक नगर और सूर्य मंदिर की स्थापना की। इन विदेशी सौर पूजको के क्रियाकलाप का, प्रतिमा और मंदिर निर्माण संबंधी आदेश-निर्देशों का तथा भारतीय धर्म और समाज में इनके समादर तथा स्वीकृति का समर्थन अभिलेख, मुद्रा-अभिलेख, मुहर अभिलेख तो करते ही है, इसके साथ-साथ साहित्यिक साक्ष्य विशेषतया बृहत्संहिता तथा कतिपय उत्तर कालीन पुराणों के उद्धरण भी इसका पूर्ण अनुमोदन करते हैं।

भविष्य पुराण में प्रतिमा- निर्माण विधि के साथ ही मंदिर- निर्माण- विधि, स्थापना तथा महत्व आदि पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। भूमि की विधिवत परीक्षा करके सूर्य मंदिर का निर्माण करवाना चाहिये।[1] सुगन्ध रस युक्त एवं स्निग्ध भूमि प्रशस्त बताई गई है।[2] कंकड़, भूसी, केश, अस्थि, खार एवं कोयले वाली भूमि गृह निर्माण के लिए वर्जित की गई है।[3] जहाँ मेघ या नगाड़े की भाँति शब्द सुनाई पड़े और सभी प्रकार के बीज जहाँ अंकुरित हो सकें, वही भूमि मंदिर निर्माण के लिए प्रशस्त होती है।[4] भविष्य पुराण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लिए अलग-अलग मंदिरों का विधान प्रतिपादित किया गया है।[5] सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा करने के उपरान्त उसके मध्य भाग में

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 130.41
2. वही, 130.42
3. वही, 130.43
4. वही, 130.43
5. वही, 130.44

चार हाथ लम्बी एवं चौकोर भूमि गोबर से लीपकर उसमे एक हाथ लम्बा और दस अंगुल गहरा गड्ढा खोदकर पुनः उसी मिट्टी से उस गड्ढे को भर दे।[1] यदि उस खोदी गई मिट्टी द्वारा वह गड्ढा भर जाए तो समान फल और कुछ कम हो जाए तो वह भूमि निकृष्ट हो जाती है। यदि गड्ढा भरने के बाद कुछ मिट्टी शेष रह जाए तो वह भूमि वृद्धि करने वाली होती है।[2] मंदिर का द्वार पूरब दिशा की ओर रखना शुभकर होता है।[3] सूर्य-मंदिर के दाहिने पार्श्व में स्नानगृह, उत्तर की ओर अग्निहोत्र गृह होना चाहिये। उसी प्रकार शम्भू एवं माताओं का गृह उत्तराभिमुख होना चाहिये।[4] पश्चिम की ओर ब्रह्मा, उत्तर की ओर विष्णु की स्थापना करनी चाहिये। सूर्य के दाहिने पार्श्व में निक्षुभा और बाँए पार्श्व में राज्ञी की स्थिति होनी चाहिये।[5] सूर्य परिवार के अन्य सदस्य तथा अनुचर भी उपस्थित हों जिनका विवेचन मूर्ति- उपासना प्रसंग में किया जाएगा।

मंदिर में ध्वजा का होना भी महत्वपूर्ण प्रतिपादित किया गया है।[6] ध्वजा के लिए सीधा, छिद्ररहित और नीरोग बाँस होना चाहिये। मंदिर के व्यास के समान ध्वजा के लम्बे होने का प्रमाण बताया गया है।[7] इसी प्रकार गर्भ गृह के भीतर की सूत्र से नापी गई वेदी तथा प्रसाद के व्यास के समान बाँस की लम्बाई होना उत्तम बतायी गई है।[8] आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि यद्यपि चार हाथ का ध्वज प्रशस्त होता है। आठ हाथ लम्बे प्रमाण का एवं दश हाथ के प्रमाण का भी ध्वज-दण्ड होता है, पर ये सभी समान्य ध्वज दण्ड हैं। दण्डपाणि ध्वज सोलह हाथ लम्बा होता है।[9] सूर्य के लिए बीस हाथ से लम्बा ध्वज-दण्ड कदापि न करना चाहिये।[10] चार अंगुल का मोटा, दो अंगुल के

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 130.45-46
2. वही, 130.47
3. वही, 130.48
4. वही, 130.49
5. वही, 130.50
6. वही, 138.2
7. वही, 138.4
8. वही, 138.6
9. वही, 138.9- 10
10. वही, 138.11

ऊपर से सुन्दर गोलाकार होना चाहिये। जो न अधिक पतला हो, न ही अधिक मोटा एवं झुकी हुई गाँठ भी नही होनी चाहिये।[1] इस प्रकार समान चार गाँठ वाला, अत्यन्त दृढ़ तथा पतले बाँस का ही ध्वज-दण्ड बनाना चाहिये। क्योंकि उसके टेढ़े होने से पुत्र नाश, ब्रण युक्त होने से अर्थनाश, दो हाथ लम्बे होने से रोग, फटे होने से अनंत दु:ख तथा प्रमाण छोटा होने पर धर्म की हानि होती है।[2] उसीप्रकार विषम हाथ के लम्बे, असमान गाँठ एवं नीचे की ओर उन्नत होने से दु ख की प्राप्ति होती है।[3] जय,जयंत,जैत्रेय, शत्रुहन्ता, जयावह, नंद, उपनंद, इन्द्र, उपेन्द्र एवं आनन्द, ये दस भेद ध्वज-दण्ड के बताए गए है।[4]
जिसमे दो हाथ के ध्वज-दण्ड की जय, उससे दुगने लम्बे ध्वज-दण्ड की जयत, बारह हाथ लम्बे ध्वज-दण्ड की जैत्रेय, सोलह हाथ वाले की शत्रुहन्ता, दस हाथ वाले की जयावह, बारह हाथ वाले की नन्द, चौदह हाथ वाले की उपनन्द, सोलह हाथ वाले की इन्द्र, अट्ठारह हाथ वाले की उपेन्द्र एवं बीस हाथ वाले ध्वज-दण्ड की इन्द्र संज्ञा है। इसलिए फटे, टेढ़े प्रमाण हीन बाँस के ध्वज-दण्ड नही बनाने चाहिये।[5] ध्वज-दण्ड के ऊपर लटकने वाली पताका को भी कल्याण मूर्ति ही बनाना चाहिये।[6] पताका के भी दस भेद उल्लिखित हैं। अंकुर, पल्लव, स्कन्ध, शाखा, पताका, कंदली, केतु, लक्ष्म, जय एवं ध्वज, ये दस भेद बताए गए हैं।[7] दो अंगुल की पताका अंकुर, चार अंगुल वाली स्कन्ध, आठ अंगुल वाली शाखा, ग्यारह अंगुल वाली पताका, चौदह अगुल वाली कंदली, सोलह अंगुल वाली केतु, अट्ठारह अंगुल वाली लक्ष्म, बीस अंगुल वाली जया तथा ध्वज नाम की बताई गई है।[8] देव मंदिर के प्रथम कलश (शिखर) भाग की शुद्धि करने वाली पताका अंकुर के नाम से व्यवहृत होती है।[9] द्वितीय कलश की शुद्धि करने वाली पल्लवा, मंदिर के तृतीय भाग तक की शुद्धि करने वाली स्कन्ध, पाँचवें भाग तक

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 138.12
2. वही, 138.13- 14
3. वही, 138.15
4. वही, 138.15- 16
5. वही, 138.17- 19
6. वही, 138.21
7. वही, 138.22- 24
8. वही, 24-26
9. वही, 138.27

की शुद्धि करने वाली शाखा, छठे भाग तक की शुद्धि करने वाली पताका, सातवें भाग तक की शुद्धि करने वाली कदली, आठवें भाग तक की शुद्धि करने वाली केतु, नवें भाग की शुद्धि करने वाली लक्ष्म, उसके अन्तर भाग की शुद्धि करने वाली जया और वृषस्थान तक की शुद्धि करने वाली पताका ध्वज के नाम से कही जाती है।[1] अतः गज, मेष, महिष, कबन्ध, वृष, हरिण, कृक, एवं नाग इन आठो स्थानो मे ध्वज लगाना चाहिये। इस प्रकार पूरब की ओर से आरम्भ करके सभी दिशाओ में क्रमश ध्वजा स्थापित करने का विधान कहा गया है।[2] सफेद वस्त्र की बनी हुई चित्र- विचित्र, घण्टा समेत, अत्यन्त मनोरम, भाँति-भाँति के चामरों से सुशोभित एवं छोटी-छोटी घंटियों के समूहों से विभूषित पताका होनी चाहियें।[3] ध्वजा के अग्रभाग मे देवता सूचक चिह्न बना देना चाहियें।[4] इसी प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि एवं रत्नों मे से किसी के द्वारा अथवा रंग के द्वारा उस देवता के वाहन के समान आकृति का निर्माण भी करना चाहियें।[5] जिस प्रकार विष्णु की ध्वजा में गरूड़, शिव की ध्वजा मे वृष, ब्रह्मा की ध्वजा में कमल, सूर्य की ध्वजा मे धर्म, जलाधिप की ध्वजा मे हंस, सोम की ध्वजा में नर, बलदेव की ध्वजा में काल, काम की ध्वजा में मकर, और दुर्गा की ध्वजा में सिंह के आकार बनाए जाते हैं, उसी प्रकार उमा देवी की लिए गोधा (रेह), रैवत के लिए अश्व, वरूण के लिए कच्छप, वायु का हरिण, अग्नि का मेष, गणपति का चूहा एवं ब्रह्मर्षियों के लिए कुश का चिह्न निर्मित करना बताया गया है।[6] इसलिए विष्णु की ध्वजा में इस भाँति का सुवर्ण-दण्ड लगाए जिसमें गरूड़ की मूर्ति चिह्न के समेत पीत वर्ण की पताका भी भूषित हो।[7] शिव का ध्वज-दण्ड चाँदी का होना चाहिये तथा श्वेत वर्ण की पताका भी उनके वृष के समीप स्थित करें।[8] पितामह ब्रह्मा की ध्वजा में ताँबे का दण्ड होना चाहिये जिसमें कमल वर्ण की पताका पंकज के समीप स्थित की जाती है।[9] आदित्य की ध्वजा में सुवर्ण दण्ड का विधान बताया गया है। उनकी पाँच रंग की पताका धर्म के नीचे स्थापित होनी

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 138.27- 30
2. वही, 138.31- 32
3. वही, 138.34
4. वही, 138.35
5. वही,138.35- 36
6. वही, 138.37- 41
7. वही, 138.42
8. वही, 138.43
9. वही, 138.44

चाहिये।[1] जो छोटी-छोटी घंटियों के समूहों से सुसम्पन्न अनेकों फेन की भाँति सौन्दर्यपूर्ण, पुष्पो तथा मालाओं से आच्छन्न एवं अनेक बाजों को बजाने वाले अनेक मनुष्यों की मूर्तियों से आवृत हो।[2] इन्द्र का ध्वज दण्ड सुवर्ण का बनाएँ। उनकी अनेक रंगों की पताका हाथी के समीप स्थित करें।[3] यम का दण्ड लोहे का होना चाहिये। उनकी काले रंग की पताका महिष के समीप स्थापित होनी चाहिये।[4] जलाधिप के लिए चाँदी का ध्वज दण्ड बताया गया है। उनकी सफेद वर्ण की एवं चित्र-विचित्र पताका होनी चाहिये।[5] कुबेर का ध्वज दण्ड मणिमय आख्यात है। उनकी लाल रंग की पताका नर के चरण के समीप स्थापित होनी चाहिये।[6] बलदेव की ध्वजा में चाँदी का दण्ड बनाएँ उनकी शुक्ल वर्ण की पताका ताल के नीचे स्थापित करें।[7] काम की ध्वजा में त्रिलोह का दण्ड होना चाहिये। उनकी रोहिणी पताका मकर के समीप स्थापित होनी चाहिये।[8] लोकों में कार्तिकेय का मयूर चिह्न विख्यात है। उनकी ध्वजा के त्रिलोह का दण्ड तथा उस चिह्न को अनेकों भाँति के रत्नों से विभूषित होना चाहिये।[9] गणपति का ध्वज-दण्ड हाथी के दाँत का होना चाहिये। उसमें विशुद्ध ताँबे का सम्मिश्रण रहे अथवा केवल ताँबे का ही दण्ड बनाया जा सकता है। प्रमाण पूर्ण उनकी शुक्ल वर्ण की पताका होनी चाहिये।[10] मातृगणों के लिए अनेकों भाँति की ध्वजाएँ बनानी चाहिये और पताकाएँ भी अनेकों रत्नों से सुसम्पन्न होनी चाहिये।[11] रैवत की ध्वजा में अश्व का चिह्न होना चाहिये तथा उनकी पताका लाल वर्ण की होनी चाहिये।[12] चामुण्डा देवी के मंदिर में मुण्ड-माला चिह्न से अंकित ध्वजा बनाएँ तथा नील वर्ण एवं लोहे का दण्ड होना चाहिये।[13] मातृगणों एवं रैवत का ध्वज दण्ड पीतल का होना चाहिये। गौरी का ध्वज-दण्ड ताँबे का बनाएँ।[14] अग्नि का

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 138.45
2. वही, 138.46
3. वही, 138.47
4. वही, 138.48
5. वही, 138.49
6. वही, 138.50
7. वही, 138.51
8. वही, 138.52
9. वही, 138.53
10. वही, 138.54-55
11. वही, 138.56
12. वही, 138.57
13. वही, 138.58
14. वही, 138.59

ध्वज-दण्ड सुवर्ण निर्मित एवं मेष युक्त होना चाहिये तथा विभिन्न रगों अथवा रत्नों से विभूषित पताका होनी चाहिये।[1] वायु का ध्वज-दण्ड लोहे का बताया गया है, उनकी काले रंग की पताका हरिण के समीप स्थापित होनी चाहिये।[2] भगवती का ध्वज-दण्ड समस्त रत्नों से निर्मित होना चाहिये। तीन रगों की उनकी पताका सिंह के नीचे स्थापित करे।[3] तदन्तर समस्तमिश्रित औषधियो द्वारा प्रयत्न पूर्वक स्नान कराकर मध्य भाग मे आलम्भन पूर्वक बाँधकर स्थापित करें।[4] कल्याणप्रद वेदी की रचना कर उसे कलशों से सुशोभित करके उसमें ध्वजा का आरोपण करउस रात उसका अधिवासन करना चाहिये।[5] भाँति-भाँति के पुष्पों की मालाएँ लटकाने के पश्चात् प्रयत्नपूर्वक उसकी विधिवत पूजा करके धूप प्रदान करें।[6] बलिकर्म के उपरान्त कृशरान्न, मालपुआ, दही, खीर, दाल आदि पदार्थों को लोकपालों एवं कौए के उद्देश्य से बलि रूप में अर्पित करें। इसके उपरान्त ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन कराकर पुण्य एव मांगलिक वाद्यों की ध्वनियों से पूर्ण, सत्कार सम्पन्न अनेक भाँति की विधियो से सुशोभित तथा नए वस्त्र से परिवेष्टित उस ध्वजा का किसी शुभ लग्न, दिन एवं नक्षत्र में विद्वानो को आरोपण करना चाहिये।[7] देवमन्दिर के ऊपर इस प्रकार जो ध्वजा का आरोहण करता है उसकी नित्य वृद्धि होती है और उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है।[8]

भविष्य पुराण में साम्बपुर में सूर्य-मंदिर की स्थापना का उल्लेख आता है। यह स्थान चन्द्रभागा नदी की तट पर स्थित है।[9] इसे मित्रवन की संज्ञा भी प्रदान की गई है।[10] भविष्य पुराण में

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 138.60
2. वही, 138.61
3. वही, 138.62
4. वही, 138.64
5. वही, 138.65
6. वही, 138.66
7. वही, 138.67 – 70
8. वही, 138.71
9. वही, 140.1-3
10. वही, 129.7

उल्लेख आता हे कि सम्ब ने सिन्ध नदी के उत्तरी तट पर जाकर उस चन्द्रभागा नामक महानदी को पार किया। उसके पश्चात वहाँ से मित्रवन नामक तीर्थ स्थल पर जाकर सूर्याराधना की।[1] चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित होने से इस स्थान का समीकरण मुल्तान से किया जाता है।[2] इस प्रसिद्ध मंदिर का दर्शन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में किया था। इस मंदिर का वर्णन अबुजैद, अलमसूदी,अल इस्तखारी, अल इद्रीसी और अलबरूनी ने भी किया है।[3] इनके उल्लेखो के आधार पर कहा जा सकता है कि मुल्तान में एक से अधिक सूर्य मंदिर थे। कतिपय विद्वान इस मंदिर को शक-कुषाण काल (द्वितीय शताब्दी ई0पू0 - द्वितीय शताब्दी ई0) में निर्मित हुआ मानते हैं।[4] किन्तु इसकी तिथि से संबंधित कोई पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। ह्वेनसांग के काल में यह मंदिर सौरोपासना का महान केन्द्र था।[5] देश के विभिन्न भागों से सूर्य-भक्त सूर्य भगवान को अपनी श्रद्धा अर्पित करने के लिए आते थे। मंदिर की विशालता तथा भव्यात्मकता का वर्णन ह्वेनसांग ने बड़े विस्तार से किया है।[6]

भविष्य पुराण में सूर्य देव का द्वितीय स्थान मुण्डीर उल्लिखित है।[7] एक अन्य स्थल पर आलोचित पुराण मे इस स्थान को सुतीर भी कहा गया है।[8] साम्ब पुराण में इसे कुतीर, उदयाचल,

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 127.6-8
2. स्टेटनक्रान, एच0 वान0, इण्डिशसेन्न प्रीस्टेर सम्ब एण्ड दें शाकद्वीपीय ब्राह्मण, सारांश, पृ0 279- 80, स्टेटनक्रान महोदय की धारणा है कि प्राचीन काल में चन्द्रभागा मुल्तान से लगभग 35 मील दूर प्रवाहित होती थी। मुल्तान चन्द्रभागा की सहायक नदी रावी पर स्थित था।
3. इलियट एण्ड डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज़ होल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-1, पृ0 18-73
4. वी0 सी0 श्रीवास्तव, सनवर्शिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 323
5. ए0 बील, बुद्धिस्ट रिकार्ड ऑफ वेस्टर्न कन्ट्रीज, भाग-2, पृ0-274, भगवान सूर्य की श्रद्धाभिव्यक्ति में एक भव्य मंदिर बनाया गया जो अनेक अलंकरणों से सुन्दर बन पड़ा है।
6. एल0 पी0 पाण्डेय, सन वर्शिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 252
7. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 72.4- 5
8. वही, 129.16

सूर्यकानन, रविक्षेत्र और मित्रवन की सज्ञा से भी अभिहित किया है[1] साम्ब पुराण मे यह भी आख्यात है कि समुद्र के किनारे सूर्य पूजा के पवित्र स्थल मुण्डीर में सूर्य का ध्यान करने वालों ने उनकी प्रतिमा को स्थापित किया।[2] ब्रह्मपुराण में इस मंदिर को उत्कल में स्थित कोणार्क मंदिर से समीकृत किया गया है।[3] अन्य अनेक विद्वानों ने भी इसका समीकरण उडीसा में पुरी जिले में स्थित कोणार्क मंदिर से किया है।[4] जबकि काणे महोदय मुण्डीर का समीकरण उत्तरी गुजरात में स्थित मोढेरा से करते हैं।

कोणार्क सूर्य–पूजा का स्मरण कराने वाला भव्यतम मंदिर है।[5] इसे मध्यकालीन भारतीय कलाकृतियों में अत्यन्त मनोहारी बताया गया है।[6] सामान्यत स्वीकार किया जाता है कि इस मंदिर का निर्माण 13वीं शताब्दी में पूर्वी गंग नरेश नरसिंह प्रथम ने कराया था।[7] मित्र महोदय के अनुसार यह मंदिर प्राचीनकाल से ही सूर्य–पूजा का प्रमुख केन्द्र रहा है और इसका निर्माण पुरानी परम्परापर हुआ।[8]

भविष्य पुराण मे तृतीय स्थान जहाँ सूर्य देव का निवास है वह कालप्रिय उल्लिखित है। इसका समीकरण यमुना के दक्षिणी किनारे पर स्थित काल्पी से किया जाता है।[9] कालप्रिय मंदिर तथा कालप्रिय नाथ जहाँ भवभूति के तीनों नाटक खेले गए थे, दोनों के तादात्म्य पर विशेष विवाद है।[10] अन्य विद्वान कालप्रिय का तादात्म्य उज्जयिनी के महाकाल से स्थापित करते हैं।[11]

---

1. साम्ब पु0, 42.1–2
2. वही, 43.1
3. आर0 सी0 हाजरा, स्टडीज, भाग–1, पृ0 106
4. आर0 सी0 हाजरा, वही, पृ0 146, वी0 वी0 मिराशी, आइडेण्टीफिकेशन ऑफ कालप्रिय, स्टडीज इन इण्डोलॉजी, भाग–1, पृ0 41
5. डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 हण्टर, ए हिस्ट्री ऑफ उड़ीसा, भाग–1, पृ0 126
6. ए0 के0 कुमारस्वामी, फोर डेज इन उड़ीसा, माडर्न रिव्यू, अप्रैल, 1911, पृ0 345– 50
7. ए0 स्टर्लिङ्ग, एन एकाउण्ट, स्टेटिस्टिकल एण्ड हिस्टोरिकल, ऑफ उड़ीसा, प्रापर, कोणार्क, 1825, पृ0 164–76
8. वी0 सी0 श्रीवास्तव, पूर्वोद्धृत; पृ0 333
9. वी0 वी0 मिराशी, थ्री एन्शियण्ट फेमस टेम्पलस ऑफ द सन 'पुराणम' भाग–8, संख्या–1, पृ0 42
10. वी0वी0मिराशी, आइडेन्टीफिकेशन ऑफ कालप्रिय, स्टडीज इनइण्डोलॉजी, भाग–1,पृ0 33, ए0एस0 अल्तेकर, राष्ट्रकूट एण्ड देअर टाइम्स, पृ0 102
11. पी0वी0 काणे,(स0) उत्तर रामचरित (चतुर्थ सं0) (परिचय), ए त्रिपुरारी, कमेन्टेटर ऑफ भवभूतीज मालतीमाधव, आर0 डी0 भण्डारकर, भाग–8, पृ0 30

लगभग तेरहवी शताब्दी के अन्त में सौरधर्म ह्रासोन्मुख[1] होने लगा। इस धर्म के पतन के कतिपय मूलभूत कारण प्रतीत होते हैं। एकान्तिक उपासना लोकप्रिय होने लगी थी। अनेक सूर्य मंदिर ध्वस्त कर दिए गए तथा कुछ को अन्य देवग्रहों में परिणत कर दिया गया। विष्णु, शिव तथा शक्ति की लोकप्रियता में वृद्धि हो रही थी। सम्भवत. इसी का परिणाम है कि भविष्य पुराण में भी आगे चलकर विष्णु तथा शिव की महिमा का वर्णन किया गया है। सौरधर्म पूर्णत शैवमत में विलीन हो गया था। इसलिए सौरपुराण में मुख्यत· शैव दर्शन का विशद विवेचन प्राप्त होता है। पुनश्च सौरधर्म अत्यधिक नीतिपरक हो गया था। तन्त्रोंपासना के विशेष प्रभाव के कारण सौरधर्म की निजी अस्मिता लुप्त हो रही थी। तथापि यह धर्म प्रक्षीण नहीं हुआ। सूर्य मूर्तियों तथा मंदिरो का निर्माण बाद की शताब्दियों में भी होता रहा तथा कुछ शासकों ने सौरधर्म को राजकीय संरक्षण भी प्रदान किया था। इसलिए भारत में यह आज भी महत्वपूर्ण धर्म के रूप में जीवित हैं।

---

1. डा0 एच0 डी0 संकालिया ने प्रो0 वी0 सी0 श्रीवास्तव के शोध प्रबन्ध ' सन वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया' की समालोचना करते हुए यह मत (टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिनांक 28.6.73) व्यक्त किया कि उक्त प्रबन्ध में सौरधर्म के ह्रासोन्मुख कारणों की समीक्षा का अभाव है। अत· यहाँ पर सौरधर्म के प्रक्षीणोन्मुख कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

सूर्य-प्रतिमा निर्माण की प्राचीनता एवं भविष्य पुराण

सूर्य पूजा के संकेत सैंधव काल से ही प्राप्त होने लगते है। सैंधव संस्कृति में सूर्य पूजा स्वस्तिक, चक्र, वृत्त, जिसमें किरणें प्रस्फुटित हो रही है, नेत्र तथा पक्षी के प्रतीकात्मक स्वरूपों मे होती थी।[1] स्वस्तिक समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। वैदिक काल में सूर्य पूजा उसके प्राकृतिक स्वरूप में की जाती थी। मण्डलाकार रूप की उपासना सत्राजित आख्यान से भी प्रमाणित होती है।[2]

सूर्य के मानवीकरण का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण, विष्णु पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण में किया गया है।[3] इससे पूर्व ऋग्वैदिक तथा उत्तर वैदिक साहित्य में कहीं भी सूर्य-प्रतिमा का उल्लेख नहीं किया गया है। महाभारत तथा रामायण में सूर्य के मानवीकरण का वर्णन तो प्राप्त होता है, किन्तु सूर्य-प्रतिमाओं से संबंधित साक्ष्य अनुपलब्ध हैं।[4] इसी प्रकार प्रारम्भिक पौराणिक साहित्य में भी सूर्य-प्रतिमाओं से संबंधित साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। सूर्य प्रतिमाओं का सम्यक् विवरण पाँचवी शताब्दी ई0 से मिलने लगता है।[5] यद्यपि प्रथम द्वितीय शताब्दी ई0 पूर्व की भी सूर्य प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं।[6]
सूर्य-प्रतिमा से संबंधित विवरण भविष्य पुराण के अतिरिक्त बृहत्संहिता, साम्बपुराण, विष्णु धर्मोत्तर, मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, विश्वकर्मा शिल्प, अंशुमद्भेदागम, सुप्रभेदागम, विश्वकर्म शास्त्र, पूर्वकरणागम, रूपमण्डन, मानसोल्लास, पद्म पुराण, ब्रह्मपुराण, चतुर्वर्ग चिन्तामणि तथा समरांगण सूत्रधार में भी उपलब्ध होता है।

---

1. एल0 पी0 पाण्डेय, सनवरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 4
2. सत्राजित आख्यान में भी सूर्य प्रारम्भ में मण्डलाकार रूप में प्रकट हुए, द्रष्टव्य, शतपथ ब्रा0, 74.1.10, विष्णु प0, 4.13.12.15, मार्कण्डेय पु0, 105.1.3
3. शतपथ ब्रा0,74.1.10, विष्णु पु0, 4.13.12.15, मार्कण्डेय पु0, 105.1.3
4. वी0 सी0 श्रीवास्तव, सनवरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 273
5. वी0 सी0 श्रीवास्तव, पूर्वोद्धृत, पृ0 274, मत्स्य प0 में सूर्य मूर्तियों का विवरण आता है, जिसकी तिथि हजरा महोदय ने 550 ई0 - 850 ई0 निर्धारित की है।
6. सी0 शिवराम मूर्ति, इण्डियन स्कल्पचर, पृ0 26, बोधगया, भाजा, लाला भक्त, अनन्त गुफा तथा मथुरा से प्राप्त मूर्तियाँ प्रारम्भिक हैं।

द्वादशादित्यों के रूप में सूर्य पूजा का उल्लेख वैदिक एवं प्रारम्भिक पौराणिक सहित्य मे उपलब्ध होता है। द्वादशादित्यों में इन्द्र, धाता, पर्जन्य पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण एवं मित्र उल्लेखनीय हैं।[1] उनकी प्रथम मूर्ति को जिसका नाम इन्द्र है, दानवों एवं असुरों का नाश करने के लिए देवराज की पदवी प्राप्त हुई है।[2] दसूरी मूर्ति, जिसे विधाता कहते है, वह प्रजापति होकर प्रजाओं का सृजन करती है।[3] तीसरी मूर्ति जिसे पर्जन्य कहा जाता है, वह उनकी किरणों में स्थित रहकर अमृत की वर्षा करती है।[4] चौथी मूर्ति, जो पूषा के नाम से विख्यात है, मंत्रो में स्थित होकर नित्य प्रजा-पालन करती है।[5] पाँचवी मूर्ति, जिसे त्वष्टा कहते हैं वह वनस्पतियों एव औषधियों में नित्य स्थित रहती है।[6] अर्यमा नाम की छठीं मूर्ति प्रजा-संवरण के लिए नगरों में रहती है।[7] सूर्य की सातवीं मूर्ति, जिसे भग कहते हैं, भूमि में स्थिति बनाकर पृथ्वी को धारण करने वालों में सदैव स्थित रहती है।[8] विवस्वान नाम की आठवीं मूर्ति अग्नि में स्थित होकर प्राणियों में जाठराग्नि के द्वारा अन्न को पचाती हे।[9] चित्रभानु की नवीं मूति, जिसे अंशु कहा जाता है, चन्द्रमा में स्थित होकर जगत की वृद्धि करती है।[10] उनकी दसवीं मूर्ति जो विष्णुरूप है, देवताओं के शत्रुओं का विनाश करने के लिए नित्य उत्पन्न होती रहती है।[11] ग्यारहवीं मूर्ति भानु, जो वरुण नाम से ख्यात है, जल-राशियों में प्रतिष्ठित है, वही समस्त जीवों को संचरित करती है।[12]मित्र नामक बारहवीं मूर्ति, जो लोक कल्याण के लिए है, चन्दभागा नदी के तट पर स्थित है।[13]
इस प्रकार उपर्युक्त द्वादशादित्य विवरण सूर्य की मूर्ति-पूजा के प्राथमिक स्तर का बोध कराता है। प्रकारान्तर से यह प्राचीन वैदिक परम्परा के विकास-क्रम का ही एक उत्तरकालीन स्वरूप है।

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 74.8
2. वही, 74.10
3. वही, 74.11
4. वही, 74.12
5. वही, 74.13
6. वही, 74.14
7. वही, 74.15
8. वही, 74.16
9. वही, 74.17
10. वही, 74.18
11. वही, 74.19
12. वही, 74.20
13. वही, 74.22

आगे चल कर सूर्य की प्रतिमा निर्मित होने लगी तथा वे प्रतिमा रूप में भी पूजे जाने लगे। भविष्य पुराण के अनुसार सम्पूर्ण विश्व के कल्याणार्थ विश्वकर्मा ने सूर्य की पुरूषाकार प्रतिमा का निर्माण किया।[1] स्मरणीय है कि उक्त पुराण मे सूर्य प्रतिमा निर्माण परम्परा को शुरू करने का श्रेय विश्वकर्मा को दिया गया है, मगों को नहीं। प्रो0 विनोद चन्द्र श्रीवास्तव का यह मत यौक्तिक प्रतीत होता है कि उक्त पुराण में सूर्य प्रतिमा निर्माण की विदेशी परम्परा को भारतीय परम्परा से निस्सृत बताकर पुराणकार ने सूर्यप्रतिमा की निर्मिति का प्राथमिक श्रेय भारत को दिए जाने का समर्थन किया है।[2]

भविष्य पुराण में वर्णित प्रतिमा-निर्माण के प्रमुख उपादान एवं लक्षण

भविष्य पुराण में उपादान की दृष्टि से सप्तविधि मूर्तियों का विवेचन किया गया है। मूर्तियों के लिए स्वर्ण, रजत, ताम्र, मिट्टी, पत्थर, काष्ठ एवं चित्र को उपयुक्त प्रतिपादित किया गया है।[3] प्रतिमा हेतु महुआ, देवदारू, वृक्षराज, चंदन, बेल, आँवला , खैर, अंजन, नीम, श्रीपर्ण, कटहल, सरलार्जुन, एवं रक्त चन्दन के वृक्ष श्रेष्ठ बताए गए हैं।[4] मत्स्य पुराण में पत्थर, काष्ठ और मिश्रित वस्तुओं की देव प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है। शिवलिंग बनाने के लिए रत्न, स्फटिक और मिट्टी को उपयुक्त कहा गया है।[5] शुक्रनीतिसार में आठ प्रकार की मूर्तियो का उल्लेख प्राप्त होता है।[6] समरांगण सूत्रधार में भविष्य पुराण की सूची का उल्लेख तो किया गया है किन्तु उसमें मृण्मयी मूर्तियों का वर्णन अप्राप्य है।[7] हरिभक्त विलास में मृण्मयी, दारूघटिता, लोहजा, रत्नजा, शैलजा, गन्धजा तथा कौसुमी प्रकार की मूर्तियाँ वर्णित हैं।[8]

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व
2. वी0 सी0 श्रीवास्तव, सन-वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 257,पाद टिप्पणी,369
3. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 131.2- 3
4. वही, 131.10- 11
5. मत्स्य पु0, 262.19-21, 263.24- 25
6. शुक्रनीतिसार, 4.4.72
7. भोजदेव, समरांगण सूत्रधार, भाग-2, 1.1
8. गोपाल भट्ट, हरिभक्त विलास

आलोचित पुराण में उल्लिखित है कि प्रतिमा निर्माण के लिए शुभ दिन मे उपवास पूर्वक वृक्ष के चारों ओर की भूमि को उपलिप्त कर गायत्री मंत्र द्वारा पवित्र किए गए जल से उसका सेचन करके, शुक्ल एवं नवीन दो वस्त्रों को धारण कर गन्ध, माला, धूप एवं बलि द्वारा वृक्ष की पूजा करें।[1] इसके पश्चात चारों ओर कुश बिछाकर समीप ही देवदारू की लकड़ी प्रज्जवलित करें और गायत्री मंत्र द्वारा हवन सम्पन्न कर वृक्ष की पूजा समाप्त करें।[2] इस प्रकार वृक्ष की पूजा करके ब्राह्मणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान कर स्वास्तिक वाचन पूर्वक उस वृक्ष को काटें।[3] पूरब, ईशान कोण या उत्तर की ओर वृक्ष का गिरना उत्तम माना गया है।[4] जिस वृक्ष की शाखा घर के चारों ओर फैल कर नष्ट हो गई हो तथा घर के समीप वाला वृक्ष भी प्रतिमा बनाने हेतु त्याग देना चाहिये।[5] जो गिरते ही दो टुकड़े हो जाए, शहद की भाँति रस निकले, घी एवं तेल जिसमें से निकले ऐसे वृक्ष भी वर्जित हैं।[6]

भविष्य पुराण में सूर्य-प्रतिमा-लक्षण का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। आलोचित पुराण मे आख्यात है कि सूर्य प्रतिमा एक, दो, तीन अथवा साढ़ेतीन हाथ लम्बी होनी चाहिये।[7] एक हाथ की प्रतिमा सौम्य, दो हाथ की प्रतिमा धन-धान्य प्रदान करने वाली, तीन हाथ की प्रतिमा समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली तथा साढ़े तीन हाथ की प्रतिमा सुभिक्ष एवं कल्याण प्रदान करने वाली कही गई है।[8] इसीप्रकार अग्रभाग, मध्य एवं मूलभाग में चारों ओर से सम रहने वाली प्रतिमा गांधर्वी कही जाती है, जो धन-धान्य की वृद्धि करती है।[9] देव मन्दिर के द्वार के विस्तार के आठवें भाग के समान ऊँची प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये। उसमें तीसरे भाग के समान ऊँची पिण्डिका और दो भाग के समान प्रतिमा की ऊँचाई बनानी चाहिये।[10] इसी प्रकार चौरासी अंगुल की प्रतिमा के निर्माण का भी विधान बताया

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 131-22-24
2. वही, 131.25-26
3. वही, 131.35
4. वही, 131.36
5. वही, 131.38
6. वही, 131.39-40
7. वही,132.2
8. वही, 132.4
9. वही, 132.5
10. वही, 132.6

गया है। जिसमें बारह अंगुल का लम्बा चौड़ा उसका मुख होना चाहिये। मुख के तिहाई भाग के समान उसकी चिबुक (ठोडी) और शेष के समान ललाट एवं नासिका की रचना करनी चाहिये।[1] नासिका के समान दोनो कान तथा दोनों चरण एवं दो-दो अंगुल के नेत्र एवं उसके तिहाई भाग के समान आँख और उसके तिहाई भाग मे दृष्टि की रचना करनी चाहिये।[2] ललाट तथा मस्तक की ऊँचाई समान होनी चाहिये तथा सिर का घेरा बाईस अंगुल का होना चाहिये।[3] नासिका के समान ही ग्रीवा तथा मुख के समान हृदय का मध्य भाग निर्मित होना चाहिये। मुख विस्तार के समान उरस्थल एवं उसके अर्द्ध भाग के समान कटि का होना उपयुक्त माना गया है।[4] लम्बे बाहु, उरू एवं जंघाएँ समान होती है। गुल्फ के नीचे, चार अंगुल के ऊचे चरण बनाने चाहिये।[5] चरण छः अंगुल, अंगूठा तीन अंगुल तथा अंगूठे के समान ही तर्जनी अंगुली होनी चाहिये। शेष अंगुलियाँ क्रमश. छोटी एवं सभी नखपूर्ण होनी चाहिये।[6] चरण की लम्बाई चौदह अंगुल की उपयुक्त कही गई है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त प्रतिमा सदैव पूजनीय होती है।[7] कन्धे, उरू, ललाट, नासिका और नेत्र उन्नत होने चाहिये।[8]
प्रतिमा के विशाल, धवल सुन्दर बरौनियों से युक्त बडे-बड़े नेत्र हों और मन्द मुस्कान से युक्त विकसित कमल की भाँति मुख हो तथा बिम्ब की भाँति अधर होने चाहिये।[9] रत्न जटित मुकुट, वलय, अंगद तथा हार से सुशोभित प्रतिमा के मध्य भाग आदि अंग सुडौल एवं सौन्दर्य से पूर्ण होने चाहिये।[10] उसका चारू मण्डल सुन्दर प्रभापूर्ण हो और विचित्र मणि कुण्डल को धारण किए, हाथों में सुवर्ण की माला

---

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 132.7-8
2. वही, 132.8-9
3. वही, 132.10
4. वही, 132.10-11
5. वही, 132.12
6. वही,132.13
7 वही, 132.14
8. वही, 132.15
9. वही, 132.16
10. वही, 132.17

तथा कमल को लिए अभीष्ट प्रदान करने वाली दिखनी चाहिये। ऐसी प्रतिमाएँ प्रजाओं को सदैव कल्याण और आरोग्य प्रदान करती हैं।[1] मस्तक, ऊरू, मुख एवं समस्त अंगों से युक्त तथा शुभ लक्षणो वाली प्रतिमा कल्याणदायी कही गई है।[2]

प्रतिमाओं में उपर्युक्त लक्षणों का अभाव होने से वे कष्टप्रद कही गई हैं। यदि प्रतिमा अल्पांग होती है तो नृपभय, हीनांग होने पर रोग, उदर बड़ा हो तो भूख की पीड़ा, दुर्बल होने पर दरिद्रता, टूटी-फूटी प्रतिमा मृत्यु का कारक होती है। दक्षिण की ओर झुकी रहने से निरन्तर आयु क्षय तथा उत्तर की ओर झुकी होने से निश्चित वियोग होता है। अत्यन्त प्रकाशपूर्ण अथवा प्रकाश हीन मूर्ति प्रशस्त नहीं होती।[3] मध्यम वर्ग की मूर्ति रक्षा करने वाली एवं प्रशस्त कही गई है। अतएव मनुष्यों को चाहिये कि सुन्दर एवं पवित्र मूर्तियों का आदर सत्कार करें क्योंकि समस्त सम्पत्तियाँ उसी के अधीन रहती हैं।[4]

आलोचित पुराण में सूर्य प्रतिमा के साथ उनके परिवारजनों तथा अनुचरों की उपस्थिति को भी दर्शाया गया है। सूर्य के दाहिने पार्श्व में निक्षुभा तथा बाएँ पार्श्व में राज्ञी की स्थिति होनी चाहिये।[5] दाहिनी ओर पिंगल तथा बाईं ओर दण्डनायक एवं श्री महाश्वेता का स्थान सूर्य के सामने की ओर होना चाहिये।[6] मन्दिर के बाहर अश्विनी कुमार की स्थापना होनी चाहिये। दूसरी कक्षा में राजा स्रौव की स्थिति, तीसरी कक्षा में कल्माष पक्षियों की स्थिति होनी चाहिये। दक्षिण दिशा में जड़ एवं कामचर तथा उत्तर की ओर लोक वन्दनीय कुबेर की स्थिति होनी चाहिये।[7] उनके उत्तर में विनायक समेत रैवत की स्थिति होनी चाहिये।[8] दिशाओं में कहीं भी स्थान दिखाई दे, वहाँ स्कन्द आदि सभी देवताओं की स्थिति करें।[9] दक्षिण और उत्तर की ओर अर्घ्य देने के लिए दो मण्डल बनाने चाहिये।[10] अग्रभाग में व्योम को दर्शाएँ। आदित्य/के अभिमुख दण्डि की स्थापना करें।[11]

1. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 132.18– 19
2. वही, 132.25
3. वही, 132.20–22
4. वही, 132.23
5. वही, 130.50
6. वही,130.51
7. वही, 130.52–54
8. वही, 130.54
9. वही, 130.55
10. वही, 130.56
11. वही, 130.59

मत्स्य पुराण[1] में वर्णित प्रतिमालक्षण भविष्य पुराण की तरह विस्तृत नहीं है किंतु सूर्य प्रतिमा विषयक जानकारी प्रदान करने में सक्षम हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार सूर्यदेव को हाथ में कमल लिए हुए, सुन्दर नेत्रों से युक्त तथा रथासीन होना चाहिये।[2] सूर्य रथ एक चक्र तथा सप्ताश्वों से युक्त होना चाहिये।[3] कमल की कान्ति से युक्त सुन्दर मुकुट से उन्हें अलंकृत होना चाहिये।[4] सूर्य प्रतिमा अनेक आभूषणों से युक्त तथा हाथ में दो कमल धारण किए हुए होनी चाहिये। स्कन्ध पर दो लीला पुष्प धारण किए हो।[5] शरीर वस्त्राच्छादित होना चाहिये तथा चरणों को तेजयुक्त होना चाहिये।[6] प्रतिहारी तथा पार्श्व में स्थित दण्ड एवं पिंगल को तलवार से युक्त रहना चाहिये।[7] हाथ में लेखनी तथा अनेक देवगणों को उनके साथ होना चाहिये।[8] उनके सारथी अरूण को कमलिनी पत्र पर स्थित होना चाहिये तथा सुन्दर ग्रीवा वाले घोड़े भी उपस्थित होना चाहिये।[9] उन्हें सर्पों से लिपटे हुए, लगाम लगे सप्ताश्वों से युक्त रथ अथवा कमलासन पर हाथ में कमल लिए हुए बैठा होना चाहिये।[10]

उपर्युक्त लक्षणों में तथा भविष्य पुराण में वर्णित लक्षणों में अन्तर परिलक्षित होता है। भविष्य पुराण में प्रतिमा के अंगों का प्रमाण तथा उसके शुभाशुभ फलों का विवेचन किया गया है, जबकि मत्स्य पुराण में सूर्य के सप्ताश्वों एवं रथ का वर्णन प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण में सूर्य के परिवारजनों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

---

1. आर0 सी0 हाजरा, स्टडीज इन द पौराणिक रिकार्ड्स एण्ड कस्टम्स, पृ0 176
2. मत्स्य पु0, 261.1
3. वही, 261.2
4. वही, 261.2
5. वही, 261.3
6. वही, 261.4
7. वही, 261.5
8. वही, 261.6
9. वही, 261.7
10. वही, 261.8

पद्म पुराण मे भी सूर्य-प्रतिमा के लक्षणो का विवेचन किया गया है। पद्म पुराण में नितान्त भिन्न लक्षण प्रस्तुत किया गया है कि सूर्य की प्रतिमा में उसका पैर कदापि नहीं दिखाना चाहिये। सूर्य-प्रतिमा के वर्णन के संदर्भ में उल्लिखित है कि त्वष्टा ने पद्मामृत में सूर्य के अद्वितीय रूप का निर्माण किया। सूर्य की प्रतिमा में उनके पैर अदृश्य हैं।[1] अन्यश्च उल्लिखित है कि किसी को भी सूर्य का पैर नहीं बनाना चाहिये। अन्यथा वह निन्दनीय अधम गति को प्राप्त होता है।[2] वह इस संसार में कष्टप्रद कुष्ठरोग से ग्रस्त हो जाता है, इसलिए धर्म एवं काम के चाहने वालो को चित्र और मंदिर में भगवान सूर्य के पैर को निर्मित नहीं करना चाहियो।[3] इस प्रकार का लक्षण भविष्य पुराण में उल्लिखित नहीं है।

बृहत्संहिता में सूर्य को उदीच्य वेश में दर्शाया गया है। इसमें उल्लिखित हे कि वक्षस्थल से पैर तक उनका शरीर ढका रहना चाहिये। सिर पर मुकुट, हाथ में कमल पुष्प, गले में हार तथा कानों में कुण्डल होने चाहिये। कमर में वियड्.ग तथा मुख आवरण से ढका हो।[4] बृहत्संहिता में सूर्य के परिजन, उनके अनुचर, सूर्यरथ तथा सप्ताश्व संबंधी कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। भविष्य पुराण की तरह बृहत्संहिता में भी सूर्य प्रतिमा प्रमाण से सम्बन्धित शुभाशुभ फलों का वर्णन प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ- एक हाथ की प्रतिमा सौम्य, दो हाथ की प्रतिमा धन देने वाली, तीन तथा चार हाथ की प्रतिमा प्रभूत कल्याणदायी होती है।[5] प्रतिमा यदि बड़ी है तो राजभय तथा छोटी है तो रोग होने का भय रहता है। उदर के क्षीण होने पर दुर्भिक्ष तथा कृशाड्.ग होने पर दरिद्रता का भय होता है।[6] खरोंच होने पर शस्त्र भय तथा फटने पर मृत्यु होती है।[7]

---

1. पद्म पु0, सृष्टि खण्ड, 8.65
   रूपं चाप्रतिम चक्रे त्वष्टा पद्मामृते महत्।
   न शशाकाथ तं दृष्टं पादरूपं रवेः पुनः।।

2. वही, 8.66
3. वही, 8.67
4. बृहत्संहिता, 57.46- 48
5. वही, 57.49
6. वही, 57.50
7. वही, 57.51

अग्नि पुराण में सूर्य की प्रतिमा को रथारूढ या अश्वारूढ दिखाने पर बल दिया गया है। अन्य किसी भी पुराण में इस प्रकार का भेद नहीं दर्शाया गया है। अग्नि पुराण में वर्णन आता है कि सूर्य को सप्ताश्वों से युक्त एक पहिये के रथ पर दो कमल पुष्पों को धारण किए हुए होना चाहिये। उनके बाईं ओर प्रतिहारी पिंगल को दण्ड धारण किए स्थित रहना चाहिये तथा दाईं ओर मसिपात्र तथा लेखनी धारण किए कुण्डी को दर्शाना चाहिये। पार्श्व में राज्ञी तथा निक्षुभा चमर धारण किए हों अथवा सूर्यदेव अकेले ही अश्वारूढ़ हों।[1] प्रस्तुत संदर्भ में एल0 पी0 पाण्डेय[2] की अवधारणा है कि सूर्य द्वारा धारण किए हुए दो कमल पुष्प प्रकाश एव जीवन के द्योतक हैं तथा मसिपात्र एवं लेखनी धारण किए कुण्डी सूर्य संवरण द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड की आयु के आकलन और वहाँ प्राणियों के गुणावगुण को ईश्वरीय अभिलेख में अभिलिखित करने के द्योतक हैं।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में सूर्य प्रतिमा विवेचन में सूर्य के साथ उनके परिजनों, अनुचरों तथा सप्ताश्वों का भी उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत पुराण में उल्लिखित है कि सूर्यदेव को सिन्दूर से विभूषित, चमकती हुई मूँछो वाला, उत्तरी वेश से सुशोभित, सौम्य, समस्त आभूषणों से युक्त तथा कमनीय होना चाहिये।[3] उन्हें चार भुजाओं वाला, महान तेजस्वी, कवच से युक्त तथा कमर में करधनी (वियाड्.ग) से सुशोभित होना चाहिये।[4] सूर्य के दोनों हाथ रश्मियों से युक्त होने चाहिये। ये रश्मियाँ हारों के रूप में ऊर्ध्वाभिमुखी रहती हैं तथा पुष्पों से ढकी रहती हैं।[5] उनके दाईं ओर पिंगल तथा बाईं ओर दण्डी को दर्शाना चाहिये।[6] ये दोनों भी सूर्य के ही समान उत्तरी वेश. में सुशोभित होते हैं तथा दोनों के ऊपर सूर्य के हाथ रख रहते है।[7] सूर्य के दोनों हाथों में चर्म निर्मित शूल रहता है और पिंगल के हाथों में पत्र तथा लेखनी रहती है।[8] सूर्य के बाईं ओर सिंह तथा ध्वज होना चाहिये तथा पार्श्व में चारों पुत्र रेवन्त, यम तथा दो मनु को स्थित रहना चाहिये।[9] प्रस्तुत पुराण

---

1. अग्नि पु0, अध्याय, 51
2. एल0 पी0 पाण्डेय, सनवरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 140
3. विष्णु धर्मोत्तर पु0, 3.67.2
4. वही, 3.67.3
5. वही, 3.67.4
6. वही, 3.67.5
7. वही, 3.67.6
8. वही, 3.67.7
9. वही, 3.67.8-9

में उनकी चारों पत्नियों की स्थिति को भी दर्शाया गया है। उनकी चारों पत्नियाँ राज्ञी, निक्षुभा, छाया तथा सुवर्चसादेवी को उनके बगल में स्थित होना चाहिये।[1] सप्ताश्वों से युक्त रथ, जिसमें एक पहिया तथा छः दण्ड हों, सारथि अरूण हो ऐसे रथ पर सूर्य बैठे होने चाहिये।[2] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उनके प्रमुख पुत्र रेवन्त को सूर्य के समान ही बनाने का निर्देश दिया गया है। उन्हें वह घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ प्रदर्शित करता है।[3] इनकी एक प्रतिमा घाट नगर (दीनापुर) में है। प्रतिमा काले पत्थर की है। रेवन्त बाएँ हाथ में चाबुक लिए हुए घोड़े पर आरूढ़ हैं। वे बूट आदि पहने हैं, दाहिने हाथ में लगाम है, एक स्त्री अनुचर छत्र लिए खड़ी है।[4] इस पुराण में सूर्य को यावाङ्गवीय नामक मेखला से युक्त दर्शाया है जो ईरानियों द्वारा कमर में पहने जाने वाले पवित्र सूत्र का ही भारतीय रूप है।[5] यह कुषाण, गुप्तकाल तथा उसके बाद की बनने वाली सूर्य प्रतिमाओं से स्पष्ट हो जाता है। उत्तर भारत में इस प्रकार की बनने वाली सूर्य की प्रतिमाएँ ईरानियों के मिथ्र देवता से मिलती हैं।[6]

ब्रह्मपुराण में सूर्य-प्रतिमा का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इसके अनुसार सूर्य विश्वकर्मा द्वारा भली-भाँति आजानु बाहु रूप में चित्रित किए गए हैं। लोगों के द्वारा अभिनन्दित न होने के कारण विश्वकर्मा द्वारा साक्षात अवतरित लिए गए। उनको तेजविहीन तथा अप्रशस्त रूप में निर्मित नहीं करना चाहिये। उनका भव्य एवं सुन्दरतम रूप ही महान कल्याणप्रद होता है।[7]

पुराणों के अतिरिक्त कतिपय अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में भी सूर्य-प्रतिमा लक्षण का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों में प्राप्त विवरण भविष्य पुराण से पूर्णतया साम्य नहीं रखते, किन्तु कतिपय स्थलों पर एकता स्थापित की जा सकती है।

---

1. विष्णु धर्मोत्तर पु0, 3.67.10
2. वही, 3.67.11
3. वही, 70.12-15
4. जे0 एन0 बनर्जी, द डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृ0 436
5. इन्दुमती मिश्र, प्रतिमाविज्ञान, पृ0 297
6. जे0 एन0 बनर्जी, पूर्वोद्धृत, पृ0 438
7. ब्रह्मपुराण, 32.106-107

पूर्वकरणागम में सूर्य के अर्द्धाड्.ग को नारी रूप में चित्रित किया गया है। यह स्वरूप अन्यत्र किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नही होता। पूर्वकरणागम मे सूर्य–प्रतिमा के निम्नलिखित लक्षण उल्लिखित हैं– पुरूष की आकृति में भगवान सूर्य को एक पहिये वाले, सात घोड़े से युक्त, सारथि सहित विशाल रथ में स्थापित होना चाहिये।[1] उनके अर्द्धाड्.ग वाम भाग को श्यामवर्णीया नारी के रूप में प्रदर्शित करना चाहिये जो कि समस्त आभूषणों से अलंकृत हो। उनके बाल घुंघराले एवं सुन्दर हों तथा वे प्रभामण्डल से युक्त हों। सभी ओर सुन्दर मण्डल हो तथा वे मुकुट धारण किए हुए हो।[2] उनके दोनों हाथों में कमल हो तथा शरीर वस्त्राच्छादित हो। एक वस्त्र स्कन्ध प्रदेश तक हो तथा हाथ में कमल हो।[3] वे कमलासीन अथवा रथासीन होने चाहिये। उनके पैर खेटक पर स्थित हों तथा वे पद्मासीन हों।[4] सूर्यमण्डल को स्थापित करके वैकर्तन, विस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, लोकसाक्षी, त्रिविक्रम, आदित्य, सूर्य, अंशुमान तथा दिवाकर नामक द्वादशादित्यों को स्थापित करना चाहिये।[5] इन द्वादशादित्यों की मूर्तियाँ दो हाथ वाली, दो नेत्र वाली, कमल पर बैठी हुई, कमल हाथ में लिए हुई, लाल वर्ण वाली, प्रभामण्डल से युक्त उपवीत एवं समस्त आभूषणों से युक्त होनी चाहिये।[6] उपरोक्त लक्षण भविष्य पुराण से साम्य नहीं रखते। यह ग्रन्थ उत्तरी भारत की परम्पराओं से प्रभावित होता है।[7] अन्यश्च इसमें वर्णित द्वादशादित्य भी भविष्य पुराण में वर्णित द्वादशादित्यों से भिन्न हैं।

---

1. पूर्वकरणागम, 13वाँ पटल
2. वही, 13वाँ पटल
3. वही, 13वाँ पटल
4. वही, 13वाँ पटल
5. वही, 13वाँ पटल
6. वही, 13वाँ पटल
7. जे0 एन0 बनर्जी, द डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी तथा द्रष्टव्य, जर्नल ऑफ इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरिएण्टल आर्ट, भाग– 16, 1948, पृ0 65– 66

विश्वकर्मा शिल्प में सूर्य-प्रतिमा लक्षण का उल्लेख निम्न प्रकार से है। इसके अनुसार वे एक पहिये वाले सात घोड़ों के रथ में कमल की अन्तःकान्ति से युक्त आभा वाले तथा दो भुजाओं वाले स्थित हों।[1] एक पहिये वाले, सारथी से युक्त सात घोड़ों वाले महान रथ में, दोनों हाथों में कमल धारण किए हुए, उत्तरी वस्त्र के वक्षस्थल को आवृत किए हुए भगवान सूर्य को प्रदर्शित करना चाहिये।[2] इस ग्रन्थ में सूर्य के सात घोड़ों तथा रथ का सम्यक् विवेचन है, जबकि भविष्य पुराण में ऐसा नहीं है। इसमें सूर्य को उत्तरी वस्त्र से आवृत बताया है जबकि भविष्य पुराण मे ऐसा नहीं है।

समरांगणसूत्रधार में सूर्य प्रतिमा का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता, जबकि मन्दिर के प्रकारों का वर्णन किया गया है। गवय, चित्रकूट, किरण, सर्वसुन्दर, श्रीवत्स, पद्मनाभ, वैराज एवं वृत्त इस प्रकार आठ प्रकार के मन्दिरों का उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

विश्वकर्मशास्त्र में सूर्य-प्रतिमा का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसमें वर्णित द्वादशादित्य भविष्य पुराण के द्वादशादित्यों से कतिपय अन्तर के साथ उल्लिखित हैं। विश्वकर्मशास्त्र में उल्लिखित द्वादशादित्य निम्न प्रकार से है- धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा तथा विष्णु।[4] भविष्य पुराण में इन्द्र, पर्जन्य तथा अंशु के नाम प्राप्त होते हैं, जबकि इसमें सूर्य, सविता और रुद्र नाम मिलते हैं। इसमें उल्लिखित द्वादशादित्य मूर्तियों के लक्षण भिन्न प्रकार से है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। इस ग्रन्थ में सूर्य परिवार तथा उनके अनुचरों का भी उल्लेख नहीं

---

1. "एकचक्रः ससप्ताश्वः पद्मगर्भदलद्युतिः।
   सप्ताश्वरथसंस्थाश्च द्विभुजश्च सदागतिः।।"
   विश्वकर्माशिल्प
2. "एकचक्रं ससप्ताश्वं ससारथिं महारथम्।
   हस्तद्वयं पद्मधरं कंचुकवर्मवक्षसम्।।"
   विश्वकर्माशिल्प
3. समरांगणसूत्रधार, 58.10-11
4. "धातामित्रोऽर्यमारुद्रो वरुणस्सूर्य एव च।
   भगोविवस्वान्पूषा च सविता दशमस्मृतः।
   एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते।।"
   विश्वकर्मशास्त्र

किया गया है। प्रथम मूर्ति धात्री के हाथ में पुष्करी नाम की माला तथा बाएँ हाथ में कमण्डल होना चाहिये। अन्य हाथों में कमल होना चाहिये।[1] बाएँ हाथ में शूल, दाएँ में सोम तथा कौशेय वस्त्र धारण करने वाली मूर्ति मैत्री नाम से जाननी चाहिये, जिसके तीन नेत्र होते हैं।[2] दाएँ हाथ में चक्र, बाएँ में कमलिनी तथा कमल एवं पल्लवों से युक्त हाथ वाली मूर्ति को अर्यमा समझना चाहिये।[3] दाएँ एवं बाएँ हाथ में क्रमश: चक्र एवं अक्षमाला को धारण किए हुए, कमल से सुशोभित मूर्ति को रौद्री नाम से जानना चाहिये।[4] जिसके दायीं ओर चक्र तथा बाएँ पाश हो, दोनों हाथों में कमल धारण किए हों, ऐसी मूर्ति को वारूणी जानना चाहिये।[5] जिसके दायीं और बाईं ओर कमण्डल तथा अक्षमयी माला सुशोभित हो ऐसी कमल पुष्प से सुशोभित मूर्ति को सूर्यमूर्ति समझना चाहिये।[6] जिसके दाएँ एवं बाएँ हाथ में क्रमश: शूल एवं सुदर्शन चक्र हो,- हाथ में कमल धारण किए हुई ऐसी मूर्ति को भग नाम से जानना चाहिये।[7] बाएँ हाथ में माला, दाएँ हाथ मे त्रिशूल धारण करने वाली कमल से सुशोभित मूर्ति को विवस्वान समझना चाहिये।[8] दोनो हाथो में कमल धारण किए हुए समस्त लक्षणों से युक्त पूषा नामक मूर्ति को समस्त पापों की विनाशिका समझना चाहिये।[9] जिसके दाएँ हाथ में गदा तथा बाएँ हाथ में सुदर्शन चक्र हो, कमल धारण किए हुए ऐसी मूर्ति को समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाली सवित्री नाम से जानना चाहिये।[10] जिसके दाएँ हाथ में सूत्र तथा बाएँ हाथ में होम से उत्पन्न कालिमा हो, दोनो हाथों में कमल हों, ऐसी मूर्ति त्वष्टा समझनी चाहिये।[11] जिसके दाएँ हाथ में सुदर्शन एवं बाएँ हाथ में

---

1. विश्वकर्मशास्त्र
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही

कमल हो, ऐसी बारहवीं मूर्ति को विष्णु समझना चाहिये।[1] उपयुर्क्त मूर्तियों के विषय में उल्लेखनीय है कि इसमें मात्र हाथों में धारण की जाने वाली वस्तुओं का ही उल्लेख किया गया है, न कि अन्य अंगों का। कमल सभी मूर्तियों में दर्शाया गया है।

मानसोल्लास में वर्णित सूर्य-प्रतिमा के लक्षण निम्न प्रकार से है। रक्तवर्णीय आभा वाले, महान तेजस्वी, दोनों हाथ मे कमल लिए हुए भगवान सूर्य को सात घोड़ों, जो सात लगाम से युक्त हों, से खींचे जाने वाले एक पहिये वाले रथ मे आसीन होना चाहिये, जिनके पैर के नीचे कमल हो।[2] वे मणिकुण्डल से युक्त उदार स्वरूप वाले हों, पुष्पराग से युक्त किरीट धारण किए हुए हों तथा रक्त वस्त्र पहने हुए रमणीय, मनोहर एवं स्पष्ट अंग वाले हो।[3] उनके चरण के पास महान तेज धारण किए हुए सारथी अरूण तथा बगल में दो प्रतीहारियों को प्रदर्शित करना चाहिये।[4] दण्ड एव पिंगल नामक वे प्रतीहारी तलवार और खेटक अस्त्र लिए हों। सूर्य के समीप हाथ में लेखनी लिए हुए संसार के प्राणियो के कृत्यों को लिखने वाले धाता को चित्रित करना चाहिये।[5] इसका यह स्थल अग्निपुराण से साम्य रखता है, जिसमें उल्लिखित है कि भगवान सूर्य के समीप मसिपात्र एवं लेखनी हो तथा कुण्डी या दण्डी समस्त संसार के प्राणियों की आयु एवं उनके गुणावगुण का विवेचन करने वाले के रूप में प्रतिस्थापित किए गए हों।[6]

---

1. विश्वकर्मशास्त्र
2. मानसोल्लास, पंक्ति 819– 820
3. वही, पंक्ति 821
4. वही, पंक्ति 822
5. वही, पंक्ति 823
6. अग्नि पु0, अध्याय–51

चतुर्वर्ग चिन्तामणि में निम्नलिखित रूप से सूर्य-प्रतिमा का वर्णन किया गया है। अपनी शक्ति के अनुसार ही सूर्य-प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये, जिसमें दो हाथों को ऊपर उठाए हुए एवं दो कमल पुष्पों को धारण किए हों।[1] प्रतिमा रथ के ऊपर स्थित होनी चाहिये तथा वह रक्त वस्त्र से समलंकृत, कुम्कुम से परिपूरित एवं रत्नमालाओं से सुशोभित हो।[2] इसके बाईं ओर सुन्दर रूप वाले दण्डी तथा दाईं ओर पिंगल वर्ण वाले पिंगल को बनाना चाहिये। राज्ञी, सवर्णा, छाया तथा सुवर्चसा नाम की देवियों को निर्मित करना चाहिये।[3] इसमें वर्णित सूर्य परिवार का यह विवरण भविष्य पुराण से प्रभावित प्रतीत होता है।

विश्वकर्मावतारशास्त्र में रथारूढ़ सूर्य का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अनुसार सात घोड़ों वाले एक पहिये के दिव्य रथ में भगवान सूर्य को सबसे ऊपर बैठाना चाहिये, जिसके सारथी तार्क्ष्य के छोटे भाई अरूण हों।[4] विशाल वक्षस्थल वाले, लाल वर्ण वाले तथा कमल के समान मनोहर, मणियों के कुण्डल से सुशोभित हजारों किरणों को धारण करने वाले वे महान तेजस्वी हों।[5] उनका शरीर उत्तरी वस्त्र से आच्छादित हो। नाल से युक्त कमल उनके कन्धे पर तथा कमल पुष्प उनके हाथ में हो।[6] प्रस्तुत ग्रन्थ में विवेचित सूर्य-प्रतिमा लक्षण उत्तर भारतीय परम्पराओं से प्रभावित प्रतीत होता है।

रूपमण्डन में भगवान सूर्य को सभी लक्षणों से युक्त, सभी आभूषणों से विभूषित, दो भुजाओं तथा एक मुख वाले एवं श्वेत कमल धारण किए हुए प्रदर्शित करना चाहिये।[7] वर्तुलाकार प्रभामण्डल

---

1. चतुर्वर्ग चिन्तामणि, "एकेन वा स्वशक्त्या च सूर्यप्रतिकृतिं शुभां।
   कुर्याद् द्विहस्तामूर्द्ध्वन्तु पद्म द्वयसुभूषिताम्।।"
2. वही, "रथोपरिस्थितां रक्तवाससा समलङ्कृताम्।
   कुङ्कुमेनाङ्कितां सम्यक् रत्नमाल्यै रत्नं कृताम्।।"
3. वही, "स्वरूपरूपः स्वाकारो दण्डः कार्योऽस्य वामतः।
   दक्षिणे पिङ्गले भावे कर्त्तव्यश्चाति पिंगल।।"
   राज्ञी सवर्णा छाया च तथा देवी सुवर्चसा।।"
4. विश्वकर्मावतारशास्त्र, 28.5.51, "एकचक्ररथोदिव्यस्तार्क्ष्यानुजससारथिः।
   तुरगैः सप्तभिर्युक्तः उर्ध्वस्तमस्थितोरविः।।"
5. विश्वकर्मावतारशास्त्र, 28.5.52
6. वही, 28.5.53
7. रूपमण्डन, "सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितं।
   द्विभुजं चैकवक्त्रं च श्वेत पङ्कजधृक्करम्।"

के मध्य उन्हें लाल वस्त्र पहने हुए प्रदर्शित करना चाहिये। आदित्य का यह रूप पापों को नष्ट करने वाला होता है।[1] उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ दक्षिण भारतीय परम्पराओं से प्रभावित है।

दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में सुप्रभेदागम, अंशुमद्भेदागम और शिल्परत्न उल्लेखनीय हैं। सुप्रभेदागम के अनुसार सूर्य कमल युक्त हों, दो भुजाओं वाले, रक्तवर्णी, सुन्दर, करण्ड के मुकुट तथा समस्त आभूषणों से युक्त हों।[2] मध्य में प्रभामण्डल हो, दाएँ तथा बाएँ ऊषा और प्रत्युषा नामक देवियाँ स्थित हों।[3] आगे रक्तकमलवर्णीय अरूण स्थित हों तथा सात घोड़ों के रथ के बीच पापनाशक भागवान सूर्य को बनाना चाहिये। उनको रक्तकमल के आसन पर आसीन होना चाहिये। इसी विधि से सभी आदित्यों की प्रतिमाओं का निर्माण करना चाहिये। अर्यमा, इन्द्र, वरूण, पूषा, विष्णु, भग, अजघन्य, जघन्य, मित्र, धाता, विवस्वान, पर्जन्य ये बारह आदित्य है। इन सभी को दो भुजाएँ, दोनो हाथों में कमल, रक्तकमल के आसन पर स्थित, प्रभामण्डल से युक्त एवं सुन्दर स्वरूप वाले लोकनायक के आकार में अवस्थित करना चाहिये।[4] सुप्रभेदागम में उल्लिखित द्वादशादित्य तथा भविष्य पुराण में उल्लिखित द्वादशादित्यों में किञ्चित भिन्नता दिखती है। सुप्रभेदागम के अजघन्य तथा जघन्य के स्थान पर भविष्य पुराण में त्वष्टा और अंशु नाम उल्लिखित हैं।

अंशुमद्भेदागम में वर्णित द्वादशादित्य भविष्य पुराण से पूर्णतया भिन्न हैं, मात्र विवस्वान् को छोड़ कर। अन्यश्च इसमें सूर्य परिवार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अंशुमद्भेदागम में वर्णित सूर्य-प्रतिमा लक्षण के अनुसार सूर्य की दो भुजाएँ हों और उनमें दो कमल पुष्प हों, वे लाल कमल के

---

1. रूपमण्डन, "वर्तुलं तेजसो बिम्बं मध्यस्थ वाससम्।
   आदित्यस्यत्विदं रूपं कुर्यात्पापप्रणाशनम्।।"
2. सुप्रभेदागम, 49वां पटल
3. वही, 49वां पटल
4. सुप्रभेदागम, 49वां पटल

आसन पर स्थित हों, लाल मण्डल से युक्त करण्ड के मुकुट से विभूषित हों। द्वादशादित्य लाल वस्त्र पहने हुए समस्त आभूषणो से विभूषित तथा उत्तरी वेष से युक्त होने चाहिये। वैवस्वत्/ विवस्वान, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक प्रकाशक, लोकसाक्षी, त्रिविक्रम, आदित्य, सूर्य, अंशुमान तथा दिवाकर ये क्रमश. बारह आदित्य है।[1]

शिल्प रत्न में भी सूर्य परिवार तथा उनके अनुचरों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। शिल्परत्न के वर्णनानुसार, रक्तवर्णीय आभा वाले, महान तेजस्वी, दोनों हाथों में कमल लिए हुए भगवान सूर्य को सात घोड़ों से युक्त, लगाम से बँधे हुए एक पहिये वाले रथ मे आसीन होना चाहिये, जिसके पैर के नीचे कमल हो, वे मणिकुण्डल से युक्त हों एवं कमलवर्णीय किरीट धारण किए हों। वे लाल वस्त्र धारण किए हुए रमणीय एवं मनोहर अंग वाले हो। उनके सारथी अरूण भी निर्मित होने चाहिये। खड्ग एवं खेटक नामक अस्त्रों को लिए हुए मण्डल एवं पिंगल नामक उनके दो प्रतिहारी भी उपस्थित हों।[2]

उपर्युक्त ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट है कि अधिकांशतया उत्तर भारतीय ग्रन्थ सूर्य-प्रतिमा लक्षण की उत्तर भारतीय विशेषताओं से प्रभावित हैं। विश्वकर्मशिल्प तथा विश्वकर्मावतार शास्त्र में उत्तर भारतीय सूर्य-प्रतिमा लक्षणों को दर्शाया गया है तथा दक्षिण भारतीय ग्रन्थों मे दक्षिणी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। स्मरणीय है कि उत्तर भारतीय सूर्य-प्रतिमाओं में सूर्य के शरीर को अधिक ढकने पर बल दिया गया है, जब कि दक्षिण भारतीय सूर्य-प्रतिमाओं को अनावृत रखा गया है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थों मे पूर्वकारणागम अपवाद स्वरूप है जिसमें उत्तर भारतीय सूर्य-प्रतिमाओं के लक्षण वर्णित हैं। इसी प्रकार रूपमण्डन, जो उत्तर भारतीय ग्रन्थ है, दक्षिण भारतीय सूर्य-प्रतिमा लक्षणों से युक्त है।[3]

---

1. अंशुमद्भेदागम, 49वाँ पटल
2. शिल्परत्न, 25वाँ अध्याय
3. एल0 पी0 पाण्डेय, सनवरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ0 127

भविष्य पुराण में सूर्य-प्रतिमा के प्रसंग में सूर्य को यज्ञोपवीत से भी अलंकृत करने का निर्देश मिलता है।[1] सूर्य को उपवीत से अलंकृत करने की यह प्रवृत्ति गुप्तोत्तर युग से प्रारम्भ होती है।[2] इसीप्रकार ईरानियन शैली से प्रभावित होकर सूर्य को उपानत युक्त बनाया जाता था, भविष्य पुराण में इसे ही संवृत्त शब्द से व्यक्त किया गया है।[3] प्रतीत होता है कि इस ऐतिहासिक तथ्य को राष्ट्रीय स्वरूप[4] प्रदान करने के लिए केवल 'संवृत्त' शब्द से उपानत का भाव बोध कराया गया है। भविष्य पुराण मे सूर्य की ध्वजा को भी उल्लेखनीय महत्व प्रदान किया गया है। आलोचित पुराण में सूर्य की ध्वजा में सुवर्ण दण्ड का विधान बताया गया है। उनकी पाँच वर्ण की पताका धर्म के नीचे स्थापित होनी चाहिये।[5] जो भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए ध्वजा का आरोपण करता है वह सूर्य लोक में पूजित होता है[6] आलोचित पुराण में सूर्य की ध्वजा को धर्मध्वज की संज्ञा प्रदान की गई है। (भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 138.37)

साम्ब पुराण में भी आख्यात है कि ध्वजा लगाने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है।[7] सूर्य ध्वज को समस्त पापों को नष्ट करने वाला एवं सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने वाला कहा गया है।[8]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 136.7
2. जे०एन० बनर्जी, पूर्वोद्धृत, पृ० 290-291
3. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 123.58
   "ततः पृभृति देवस्य चरणौ संवृतौ।"
4. जे०एन० बनर्जी, मिथ्स एक्सप्लेनिंग सम एलियन ट्रेट्स ऑफ द नॉर्थ इण्डियन सन आइकन्स, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटर्ली, भाग-28
5. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, पृ० 138.45
6. वही, 138.83- 84
7. साम्ब पु०, 33.17
8. वही, 40.42

भारत मे सूर्य की खड़ी एव बैठी दो रूपों मे प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं, जिनका संबध पूर्वमध्यकाल से है। इसके अतिरिक्त ऐसी प्रतिमाएँ भी निर्मित हुई हैं, जिनका पृष्ठ प्रदेश उठा हुआ है। ऐसी विशिष्ट स्वरूप की प्रतिमा को 'उत्कुटासन' प्रतिमा की संज्ञा प्रदान की जाती है। बैठी हुई मुद्रा मे प्रतिमाओं का निर्माण प्रायः यूरोपियन शैली के अन्तर्गत किया जाता है।[1] सम्भवतः इसी विदेशी प्रभाव से प्रतिमाओं को मुक्त करने के लिए उन्हें खड़ी मुद्रा का रूप प्रदान किया गया। मथुरा संग्रहालय में सूर्य की खड़ी मुद्रा की मूर्तियों का आधिक्य है। ये प्रतिमाएँ प्राय: हाथ में कमल धारण किए हैं, मण्डल से युक्त है, दण्ड, पिंगल तथा दो महिला अनुचर विद्यमान हैं, चरणों के बीच मे अरूण, ऊषा, प्रत्यूषा तथा दो स्त्रियाँ जिन्हे राज्ञी और निक्षुभा कहा जाता है, स्थित हैं। आकृति संख्या 1290 मे दो अश्वाकृतियाँ भी प्रदर्शित हैं, जिन्हें अश्विन कुमार कहा जाता है।[2] उपर्युक्त प्रतिमा के कतिपय लक्षण भविष्य पुराण में भी विवेचित किए गए हैं यथा उसमें प्रदर्शित मण्डल[3], राज्ञी और निक्षुभा[4] दण्ड और पिंगल[5] तथा अश्विनीकुमार।[6] इसके अतिरिक्त मथुरा की मूर्तियों में सूर्य कमल लिए हुए तथा उपानत से युक्त प्रदर्शित हैं। आलोचित पुराण में भी सूर्य की प्रतिमा को कमल लिए हुए निर्मित करने का विधान बताया है।[7] 'उपानतपिनद्ध' का ही भारतीयकरण कर उनके पैरों को 'संवृत्त'[8] करने का उल्लेख मिलता है। भविष्य पुराण में मथुरा में उपलब्ध बैठी हुई मूर्तियों का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

खजुराहो से भी पूर्वमध्यकाल की बैठी, खड़ी एवं 'उत्कुटासन' आकृति की प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं।[9] इनमें भी खड़ी प्रतिमाओं का आधिक्य है। खड़ी प्रतिमाओ में चित्रगुप्त मंदिर की सूर्य प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है, जिसमें सूर्य किरीट, मुकुट, कुण्डल, माला, यज्ञोपवीत और अव्यंग धारण किए हुए तथा

---

1. वी०सी०श्रीवास्तव, सन वरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, पृ० 311
2. वी०सी०श्रीवास्तव, पूर्वोद्धृत, पृ० 311
3. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 132.18
4. वही, 130.50
5. वही, 130.51
6. वही, 130.52
7. वही, 132.18
8. वही, 123.58
9. यू०आर०अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, पृ०174

उपानद्युक्त हैं। उनके शीर्ष के चारों ओर मण्डल, दाएँ एवं बाएँ पिंगल तथा दण्ड उपस्थित है। निक्षुभा, राज्ञी, अश्विनी कुमार, अरूण तथा महाश्वेता भी प्रदर्शित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त सप्ताश्व भी चित्रित हैं। उक्त प्रतिमा के कतिपय लक्षण भविष्य पुराण के लक्षणों से साम्य रखते हैं। यथा-मुकुट[1], माला[2], कुण्डल[3], यज्ञोपवीत[4], अव्यंग[5], उपानत्[6], उनके अनुचर दण्ड-पिंगल[7], निक्षुभा-राज्ञी[8], अश्विनी कुमार[9] एवं महाश्वेता[10] इन सभी का उल्लेख भविष्य पुराण के सूर्य-प्रतिमा लक्षण के अन्तर्गत आता है।

उडीसा की पूर्वमध्यकालीन प्रतिमाओं में किचिंग[11] से प्राप्त पद्मासन मुद्रा में सूर्य-प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय हैं। जिसमें सूर्यदेव पद्मासन पर बैठे हुए दोनों हाथों में दो पूर्ण विकसित कमल-पुष्प धारण किए हुए हैं। वे उदीच्यवेष में हैं तथा मुकुट, कुण्डल, हार तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत हैं। अरूण तथा सप्ताश्वों को भी प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा को मन्द मुस्कान युक्त प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा की पद्मासीन मुद्रा भविष्य पुराण के प्रतिमा लक्षणों से भिन्न हैं, अन्यथा इसके सभी लक्षण भविष्य पुराण से साम्य रखते हैं। यहाँ तक कि इस प्रतिमा का मन्द मुस्कान युक्त होना भी भविष्य पुराण के सूर्य-प्रतिमा लक्षणों में निर्दिष्ट किया गया है।[12]

---

1. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 132.17
2. वही, 132.17
3. वही, 132.18
4. वही, 136.7
5. वही, 132.17
6. वही, 123.58
7. वही, 130.51
8. वही, 130.50
9. वही, 130.52
10. वही, 130.51
11. जे०एन० बनर्जी, पूर्वोद्धृत,पृ० 439
12. भवि० पु०, ब्राह्मपर्व, 132.16
    "स्मितानन्पद्मस्य चारुबिम्बाधरस्तथा।"

पूर्वी भारत से प्राप्त चौद्दाग्राम की प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रतिमा मे सात अश्वो द्वारा खींचे जाने वाले एक पहिये के रथ मे भगवान सूर्य कमर में करधनी पहने हुए बैठे हैं। अरूण के नीचे नाग तथा ऊषा, प्रत्यूषा, दण्डी तथा पिंगल भी प्रदर्शित हैं। इस प्रतिमा के लक्षण भविष्य पुराण से पूर्णतया भिन्न है। यह प्रतिमा 7वी– 8वी शताब्दी के मध्य की है।[1] इसीप्रकार सुखबासपुर (ढाका) की सूर्य–प्रतिमा मे उदरबन्ध के साथ दो तलवारों का बधा होना, अरूण के नीचे नाग तथा विद्याधर युगल की कल्पना, ये सभी लक्षण भविष्य पुराण से पूर्णतया भिन्न है।

आलोचित पुराण में वर्णित प्रतिमा लक्षणो से भिन्नता रखने वाली अन्य प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हैं, जिसमे एलोरा तथा कद्वार मन्दिर की प्रतिमाओं का उल्लेख किया जा सकता है। एलोरा[2] की (8वीं शताब्दीई.)मूर्ति में सूर्य के सिर के चारों ओर मण्डल हैं तथा पुष्प के गुच्छे धारण किए हुए है। कद्वार मन्दिर (8वीं–9वीं शताब्दी ई., 950 ई. के पूर्व)[3] की प्रतिमा उत्कुटासन मुद्रा में है। गुजरात[4] मे स्थित मोढेरा के सूर्य–मन्दिर की दीवारों और कोष्ठकों से 11वीं शताब्दी ई. की सूर्य–प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है।

---

1. एन0 के0 भट्टसाली, आइकनोग्राफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मनिकल स्कल्पचर इन द ढाका म्यूजियम, पृ0 172, प्लेट 59

2. जे0 एन0 बनर्जी, पूर्वोद्धृत, पृ0 440

3. एच0 डी0 सांकलिया, आर्क्योलाजी ऑफ गुजरात, पृ0 157

4. एच0 डी0 सांकलिया, पूर्वोद्धृत, पृ0 84

जिनमे दो प्रतिमाओं का विश्लेषण बर्गिज[1] ने किया है। सूर्य देव सप्ताश्वों से खीचे जाने वाले रथ में समभड्.ग अवस्था में खडे हैं। उनके दस हाथ हैं, पूर्ण विकसित कमल-पुष्प, किरीट, मुकुट, कुण्डल, हार, कवच, अव्यड्.ग, उपान्त, उत्तरीय वस्त्र तथा माला धारण किए हुए हैं। उनके बाएँ दण्ड और पिंगल तथा पीछे अश्विनीकुमार हैं। इस प्रतिमा के आभूषण,दण्ड पिंगल तथा अश्विनीकुमार[2] भविष्य पुराण के प्रतिमा लक्षण से साम्य रखते हैं। बार्गीज द्वारा विश्लेषित दूसरी प्रतिमा भविष्य पुराण के प्रतिमा लक्षण से भिन्न है।

---

1. जे0 बार्गीज, ए0 एस0 आई0 डब्ल्यू0 सी0, 9, प्लेट 56, आकृति संख्या- 5 तथा 6, द्रष्टव्य, आर्किटेक्चरल एन्टीक्विटीज ऑफ नार्थ गुजरात, पृ0 88- 89

2. भवि0 पु0, ब्राह्मपर्व, 130.52

" तत. स्थाप्याश्विनोः स्थानं पूर्वदेवगृहाद्बहिः।"

उपसंहार

उपसंहार

भविष्य पुराण भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की सुदीर्घ परम्परा का जीवन्त दस्तावेज है। इसमें ईसापूर्व कालीन भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन से लेकर ईसा की 18वीं शताब्दी तक विभिन्न काल खण्डों में देश काल की आवश्यकतानुसार जुड़ने वाले विभिन्न पौराणिक अंशों तथा पक्षिप्तांशों का अद्‌भुत संकलन मिलता है। इस पुराण के कलेवर में विभिन्न कालखण्डों की ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक सूचनाओं के संपुञ्जन से किसी भी शोधकर्त्ता के लिए इस पुराण की कोई एक निश्चित तिथि नियत करना तथा इसकी रचना को किसी देश अथवा स्थान से जोड़ना बहुत ही कठिन कार्य है। यही कारण है कि इस पुराण की न तो कोई एक निश्चित तिथि प्रतिपादित की जा सकती हे और न ही कोई रचना– स्थल। फिर भी, इस पुराण में प्रदन्त अनेक सूचनाएँ भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के कलेवर निर्माण में विशेष सहायक प्रतीत होती हैं। इस पुराण के साक्ष्यों को ग्रहण करते समय उनकी संपुष्टि अन्य साक्ष्यों से कर लेना अभीष्ट प्रतीत होता है, ताकि उनकी प्रामाणिकता पर कोई संदेह न रह जाए। भविष्य पुराण का वर्तमान कलेवर इस बात को स्पष्ट करता है कि भारतीय वाङ्मय परम्परा में पुराण साहित्य की संकलन परम्परा एक कालिक न होकर अनेक कालिक रही है तथा पुराणकारों ने पुराण संरचना में भारतीय जीवन के विविध पक्षों को आलोकित करने का प्रयास किया है।

भविष्य पुराण में उल्लिखित सामाजिक परम्पराएँ वैदिक मान्यता का ही स्मरण कराती हैं। समाज में चातुर्वर्ण्य धारणा व्याप्त थी। ब्राह्मण का समाज में सर्वोपरि स्थान था। मग पुरोहितों को भी समाज में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सौर धर्म के प्रचार एवं प्रसार में उनका विशेष योगदान था। क्षत्रियों को भी ब्राह्मणों की तरह सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। परन्तु उनका स्थान ब्राह्मणों के पश्चात् आता था। पूर्वमध्यकाल में क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे। अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हो रहा था। भविष्य पुराण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शूद्र भी अपने से उच्च वर्ण से वैवाहिक संबंध स्थापित करने लगे थे। इसी प्रकार दक्षिणात्य और गौड़पूर्वा जातियों का उदय हुआ था।

भविष्य पुराण का सर्वाधिक महत्व इस दृष्टिकोण से है कि इसमें निम्न जातियों के प्रति विशेष सहानुभूति प्रदर्शित की गई है। 'षष्ठीकल्प' के विवेचन प्रसंग में पुराणकार ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वर्ण का आधार जन्म को न मानकर कर्म को मानना चाहिये। इस विषय में पुराणकार महाभारत से विशेष प्रभावित प्रतीत होता है। भविष्य पुराण के अनुसार शूद्र कुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त शुद्ध आचार– विचार वाला बन जाता है तो वह भी ब्राह्मण कहलाने योग्य है तथा वेद का अधिकारी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी व्यक्ति ब्रह्मज्ञान में प्रवृत्त हो सकता है। वेदों का अध्ययन कर क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो सकते हैं। व्यक्ति अपने श्रेष्ठ कर्मों से ही उच्च वर्ण को प्राप्त होता है। उच्च वर्ण वाला व्यक्ति भी यदि निम्न कर्म करता है तो वह शूद्र तुल्य है। इस प्रकार भविष्य पुराण सभी वर्णों के प्रति समान परक दृष्टि रखता है।

भविष्य पुराण में प्राचीन इतिहास के साथ मध्यकालीन एवं आधुनिक काल की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं का भी उल्लेख किया गया है। भविष्य पुराण में प्राप्त होने वाले विक्रम– वेताल संबंधी कथानकों को 'वेतालपचीसी' का आधार माना जा सकता है।

भविष्य पुराण में मग परम्परा से प्रभावित सौर धर्म का विवेचनकिया गया है। ऋग्वैदिक काल में सूर्य के प्राकृतिक रूप की पूजा की जाती थी। किन्तु, आगे चलकर महाभारत काल में सूर्य के मानवीकरण का संकेत प्राप्त होता है। महाभारत में सूर्य अनेक स्थलों पर मानव के रूप में दृश्यमान हैं। छठीं शताब्दी ई0 पू0 से दूसरी शताब्दी ई0 पू0 के अन्तर्वर्ती काल में सौर धर्म का सामाजिक क्षेत्र पर्याप्त विकसित हो चुका था। शाकद्वीपीय मग पुरोहितों के प्रभाव में भारत में सूर्य की मूर्ति– पूजा प्रारम्भ हुई थी। मगों की परम्पराओं का भारतीयकरण हो गया था। सौर धर्म को राजकीय प्रश्रय भी प्राप्त हो गया था। थानेश्वर का वर्धन वंश सूर्योपासक था। परवर्ती राजवंशों ने भी इस धर्म को संरक्षण प्रदान किया था।

सौरार्चन द्वारा कुष्ठ रोग की निवृन्ति की परम्परा भारत में पहले से ही विद्यमान थी। वैदिक एवं पौराणिक परम्पराओं में सूर्य को रोग– नाशक कहा गया है। उग्रदेव ने कुष्ठ रोग से निवृन्ति के लिए इक्कीस दिन का सूर्यानुष्ठान किया था। मयूर ने भी इसी रोग

के शमनार्थ सूर्यशतक का प्रणयन किया था। सौरोपासना भारतीय जीवन की प्रमुखतम विशेषता थी। सौरार्चन, सन्ध्या– वन्दन, गायत्रीजाप, अर्घ्य, आचमन, प्राणायाम मार्जन, अधमर्षण आदि के द्वारा निष्पन्न होता था। स्वर्ण, रजत, ताम्र, मृत्तिका, शिल्प, वृक्ष तथा चित्र द्वारा निर्मित सप्तविध मूर्तियों द्वारा सूर्य– पूजा का विधान था। शास्त्र– समर्थित कर्मकाण्ड के द्वारा सूर्य की पूजा की जाती थी।

सूर्याचन स्वयमेव सरलतम एवं सर्वग्राह्य था। तन्त्रोपासना ने उसे और भी विशद् बना दिया था। तन्त्रोपासना में वर्ण, धर्म, लिंग तथा अन्य प्रवृत्तियों का विचार किए बिना सभी सम्प्रदायों एवं वर्गों के लोगों को समान आचरण की स्वतन्त्रता उपलब्ध थी। तंत्रोपासना के अन्तर्गत शूद्र तथा स्त्रियों को भी उपासना की स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

सूर्य की मूर्ति– पूजा के प्रचार– प्रसार में बृहत्संहिता, भविष्यपुराण, साम्ब पुराण आदि का विशिष्ट योगदान रहा है। शुभ लक्षणों से युक्त प्रतिमा मनुष्यों का कल्याण करने वाली मानी जाती थी। सूर्य की प्रतिमा पूजा के साथ ही उनके परिवार तथा अनुचरों का भी महत्व बढ़ गया था। सूर्य के साथ निक्षुभा, राज्ञी, पिंगल, दण्डनायक, दोनों अश्विनी– कुमारों, कल्माष पक्षी, व्योमदेव आदि की भी उपासना की जाती थी। पूर्व मध्यकाल की अनेक प्रतिमाएँ भविष्य पुराण के प्रतिमा लक्षण से साम्य रखती हैं। भविष्य पुराण यद्यपि सौर्यसम्प्रदाए से संबंधित है, किन्तु इसमें अन्य देवताओं का भी विशद् वर्णन किया गया है। वैदिक देवताओं में ब्रह्मा को विशेष महत्व दिया गया है। साथ ही विष्णु, शिव, तथा गणेश आदि पौराणिक देवों का भी विशेष गुणगान किया गया है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार सूची

संकेत शब्द– सूची

सहायक ग्रन्थ– सूची

(अकारादिक्रम से)

मूलभूत प्राचीन भारतीय ग्रन्थ

ग्रन्थ–नाम		लेखक, प्रकाशक
अग्नि पुराण	:	पंचानन तर्क रत्न द्वारा सम्पादित तथा वंगवासी प्रेस कलकन्ता द्वारा प्रकाशित।
	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा सम्पादित, हिन्दी अनुवाद सहित, शक 1907: सन् 1986
अथर्ववेद	:	आर0 रॉथ तथा डब्ल्यू0 डी ह्विटनी द्वारा संपादित, बर्लिन, 1924
अमरकोश	:	पी0 झलकीकर द्वारा सम्पादित, बम्बई, 1907
अष्टाध्यायी	:	पाणिनीकृत, सम्पादित निणर्य सागर प्रेस, बाम्बे 1955
आचारांग सूत्र	:	सुधर्म स्वामी (टीका) 1992; शुव्रिंग (वाल्टर) अनु0 1980
आपस्तम्ब धर्म सूत्र	:	हलस्यनाथ शास्त्री द्वारा संपादित एवं प्रकाशित, कुंभकोणम्, 1895
आर्यमंजूश्रीमूलकल्प	:	स0 टी0 गणपति शास्त्री, भाग– 1 – 1920, भाग– 2– 1921, भाग– 3– 1925

आश्वलायन गृहयसूत्र : म0म0 गणपति शास्त्री द्वारा संपादित, त्रिवेन्द्रम, 1923

ऐतरेय ब्राह्मण : हरिनारायण आप्टे द्वारा संपादित एवं प्रकाशित, बम्बई, 1922

अंगुन्तर निकाय : मोरिस (रिव्यु रिचर्ड) स्प0 1883, भाग–1

अंशुमदभेदागम : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज नं0 41 पूना, 1900

काठक गृह्यसूत्र : सम्पादित डब्ल्यू कालेण्ड, लाहौर, 1925

काठक संहिता : स्वध्याय मण्डल

कात्यायन श्रौत सूत्र : सम्पादित विद्याधर शर्मा, बनारस, 1933– 7

कादम्बरी : मथुरानाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1948

कुमार संभव : भारद्वाज गंगाधर शास्त्री द्वारा सम्पादित, बनारस

कूर्म पुराण : पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0 सं0 1332

कौटिल्य अर्थशास्त्र : आर0 शामाशास्त्री द्वारा सम्पादित, मैसूर, 1924

गरूड़ पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906

गोपथ ब्राह्मण	:	कलकत्ता, 1872
	:	गास्ट्रा सम्पादित, लीडन
गोभिल गृहयसूत्र	:	अनूदित, एच0 ओल्डनबर्ग, सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट, भाग– 3
गौतम धर्मसूत्र	:	हरिनारायण आप्टे द्वारा सम्पादित, पूना, 1910
चतुर्वर्गचिन्तामणि	:	हेमाद्रि कृत, भाग–1, दानखण्ड, सम्पादित पं0 भारत चन्द्र शिरोमणि, बिब्लियोथिका इण्डिका संस्करण, कलकत्ता, 1876
	:	भाग–3, व्रतखण्ड– सम्पादित योगेश्वर भट्टाचार्य, कलकत्ता, 1879
छान्दोग्य उपनिषद	:	हरिनारायण आप्टे द्वारा संपादित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1913
जातक	:	वी0 फासबल द्वारा सम्पादित, लंदन, 1877–97
जैमिनीय ब्राह्मण	:	लोकेश चन्द्र, 1950, इन्टरनेशनल एकेडेमी ऑफ इण्डियन कल्चर, नागपुर
जैमिनी सूत्र	:	जैमिनी, 1993
तन्त्र वार्तिक	:	कुमारिलकृत, आनन्दाश्रम
तिलक मञ्जरी	:	धनपाल– विष्णु प्रभाकर (सम्पा0), 1958
		भाग–1, शान्ताचार्य, 2008 वि0 सं0

तैत्तिरीय आरण्यक : सायण– भाष्य सहित, हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1898

तैत्तिरीय उपनिषद : यमुना शंकर पंचोली (टीका), नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1925

तैत्तिरीय ब्राह्मण : सायण भाष्य, आनन्दाश्रम
: सम्पादित, वेदान्त बागीश, कलकत्ता, 1969–74

तैत्तिरीय संहिता : कलकत्ता, 1854

देवी भागवत : कमल कृष्ण स्मृति भूषण द्वारा सम्पादित, बिबलोथिका इण्डिका, कलकत्ता, 1903

नारद स्मृति : यौली द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, 1885

निरुक्त : यास्क कृत, अनूदित, लक्ष्मण स्वरूप, 1962

नैषधीय चरित : म0 म0 पं0 शिवदत्त द्वारा सम्पादित, बम्बई, 1907

पद्मपुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1893

पराशर स्मृति : माधवाचार्य भाष्य सहित, बॉम्बे संस्कृत सीरीज, बम्बई, 1893– 1911

बृहत्संहिता	:	श्री अच्युतानन्द झा द्वारा अनुवादित, चौखम्बा विद्या भवन, चौक, वाराणसी, 1977
बृहदारण्यक उपनिषद	:	गीता प्रेस, **गोरखपुर**
	:	**शंकराचार्य**–भाष्य तथा आनन्दगिरि की टीका के साथ, हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1914
ब्रह्मपुराण	:	क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906
ब्रह्मवैवर्त पुराण	:	क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906
ब्रह्माण्ड पुराण	:	क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1906
बौधायन धर्मसूत्र	:	श्री निवासाचार्य द्वारा सम्पादित, मैसूर, 1907
	:	सं0 आर0 शास्त्री, मैसूर, 1920
भविष्य पुराण	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संपादित, हिन्दी अनुवाद सहित
भागवत पुराण	:	क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित, वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1987
	:	पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0 सं0 1315

भारद्वाज गृहयसूत्र : सम्पादित हेनरि जे0 डब्ल्यू0 सोलमन्स, लीडेन, 1913

मत्स्य पुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1907

मनुस्मृति : कुल्लूक भट्ट– भाष्य सहित, पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, वि0 सं0 1320

: मेघातिथि–भाष्य–सहित, गंगानाथ झा द्वारा सम्पादित, एशियाटिक सोसाएटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, 1932

महानिर्वाणतंत्र : हरिहरानन्द भारती की टीका सहित, सम्पादित ए0 एवालोन, तान्त्रिक टेक्सट्स जिल्द 13, उल्लास 14, पुनर्संस्करण, 1953

महाभारत : नीलकण्ठ–भाष्य सहित, पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, शकाब्द 1826– 1830

: हिन्दी अनुवाद सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर

मानसोल्लास : सम्पादित जी0 के0 गोडेकर, बड़ौदा, 1925–29

मार्कण्डेय पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बम्बई

: मोर संस्करण, कलकत्ता

: पं0 बद्रीनाथ शुक्ल, एक अध्ययन, चौखम्बा, काशी, 1960

यजुर्वेद	:	यजुर्वेद भाष्य संग्रह, 1960, दयानन्द सरस्वती
याज्ञवल्क्य स्मृति	:	वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री द्वारा सम्पादित, बम्बई, 1926
	:	रघुवंश शंकर पण्डित द्वारा सम्पादित गर्वनमेण्ट सेन्ट्रल बुक डिपो द्वारा प्रकाशित, 1897
रघुवंश	:	कालिदास, शंकर पंडित द्वारा सम्पादित, गवर्नमेन्ट सेण्ट्रल बुक डिपो द्वारा प्रकाशित, 1817
	:	सम्पादित एस0 जी0 पंडित, बाम्बे, 1901
रामायण	:	टी0 आर0 कृष्णाचार्य द्वारा सम्पादित, निर्णय सागर प्रेस द्वारा प्रकाशित, बम्बई, 1905
रूपमण्डन	:	सम्पादित बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, वि0 सं0 2001
	:	कलकत्ता, 1936
व्यास स्मृति	:	ऊनविंशति संहितान्तर्गत
वराह पुराण	:	सम्पादित पं0 एच0 शास्त्री, कलकत्ता, 1893
वशिष्ठ धर्मसूत्र	:	चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी
वामन पुराण	:	पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकत्ता, वि0 सं0 1314
	:	काशीराज संस्करण, वाराणसी, 1968

वायु पुराण : हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित, पूना, 1905

विश्वकर्म शास्त्र : सम्पादित के0 वासुदेव, सरस्वती महल सीरीज, तञ्जौर, 1958

विश्वकर्मावतार शास्त्र : सम्पादित के0 वासुदेव शास्त्री, सरस्वती महल सीरीज, तञ्जौर, 1959

विश्वकर्माशिल्प : 1971, दुर्गादास

विष्णु धर्मसूत्र : पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0सं0 1316

विष्णु धर्मोन्तर पुराण : क्षेमराज श्रीकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित, वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई

विष्णु पुराण : हिन्दी अनुवाद, गीता प्रेस, गोरखपुर
: पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0 सं0 1331

विष्णु स्मृति : कृष्णभाचार्य वी0 पण्डित, 1964

शतपथ ब्राह्मण : ए0 वेबर द्वारा सम्पादित, 1924
: वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई

शांखायन गृहयसूत्र : बनारस संस्कृत सीरीज, वाराणसी

शिव पुराण : वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0सं0 1314

श्रीमदभागवत · गीता प्रेस, गोरखपुर, वि0 सं0 2019

शुक्रनीतिसार : प्रयाग, 1914

षड्विंशब्राह्मण : सायण भाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर

स्कन्द पुराण : वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0सं0, 1318

स्मृति चन्द्रिका : श्रीनिवासाचार्य द्वारा संपादित, मैसूर, 1914–21

सूत संहिता : सायणकृत– टीका सहित, आनन्दाश्रम

हरिवंश : नीलकण्ठ भाष्य के साथ, पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित, कलकन्ता, वि0सं0, 1312

आधुनिक शोध–ग्रन्थ

लेखक		ग्रन्थ– नाम
अग्रवाल, वासुदेव शरण	:	मत्स्य पुराण ए स्टडी, वाराणसी, 1963
	:	पाणिनी कालीन भारतवर्ष, द्वितीय संस्करण, वाराणसी, 1967
अय्यंगार, एम0 एस0	:	श्रीभाष्य तात्पर्य सार
अल्टेकर, ए0 एस0	:	राष्ट्रकूट एण्ड देअर टाइम्स, पूना, 1934
	:	द पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोती लाल बनारसी दास, बनारस, 1956
अली, एस0 एम0	:	दि ज्योग्राफी ऑफ दि पुराणाज, नई दिल्ली, 1966
अवस्थी, ए0 आर0	:	खजुराहो की देव प्रतिमाएँ, आगरा, 1967
आयंगर, के0 वी0 रंगास्वामी	:	आस्पेक्ट्स ऑफ दि पॉलिटिकल एण्ड सोशल सिस्टम ऑफ मनु
इलिएट एण्ड डाउसन	:	हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स–1
	:	भारत का इतिहास, भाग– 1, मथुरालाल शर्मा (अनुवादक), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0, आगरा, 1974
उपाध्याय, बलदेव	:	वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, चौखम्बा, वाराणसी
	:	पुराण विमर्श, वाराणसी, 1965

उपाध्याय, राम जी : भारत की संस्कृति साधना

ओम प्रकाश : पॉलिटिकल आइडियाज इन द पुराणाज, 1977, पंचनद प्रकाशन, इलाहाबाद

काणे, पी0 वी0 : धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम– पंचम भाग, हिन्दी समिति, लखनऊ ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना

कापड़िया, के0 एम0 : हिन्दू किनशिप

कुमारस्वामी, ए0 के0 : फोर डेज इन उड़ीसा, मार्डन रिव्यू, अप्रैल, 1911

केन्नेडी, वी0 : रिसर्चेज टु द नेचर एण्ड ऐफिनिटी ऑफ एन्शिएण्ट हिन्दू माइथॉलोजी

गोण्ड, जे0 : ऐस्पेक्ट्स ऑफ अर्ली विष्णुइज्म

गोपाल, लल्लन जी : पुराण विषयानुक्रमणी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

: द ऐकोनोमिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया (700– 1200 ई0) प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1965

गोविन्दाचार्य : द लाइफ ऑफ रामानुज

गुप्ता, आनन्द स्वरूप : पुराणम , रामनगर फोर्ट, वाराणसी

घाटे, बी0 एस0 : लेक्चर्स ऑन ऋग्वेद

घुर्ये, जी0 एस0 : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, बॉम्बे, 1961

चतुर्वेदी, परशुराम : उन्तरी भारत की संत परम्परा
द्वितीय संस्करण, सं0 2021, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

जायसवाल, के0 पी0 : मनु एवं याज्ञवल्क्य, कलकन्ता

जिलिन : कल्चरल सोश्योलॉजी (न्यूयार्क, 1948)

जैक्सन : जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाएटी

जैकोबी : जैन सूत्राज

डेविड्स रिज : द डायलॉग ऑफ द बुद्ध, भाग– 1

दयानन्द सरस्वती : सत्यार्थ प्रकाश, वि0 सम्वत् 2001

दूबे, हरिनारायण : पुराण समीक्षा, आई0 आई0 डी0 आर0 प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984

प्रभु, पी0 एच0 : हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन, बम्बई, 1954

पाटिल, डी0 आर0 : कल्चरल हिस्ट्री फ्राम द वायु पुराण, दिल्ली, 1973 (पुनर्मुद्रण) प्रथम संस्करण, पूना, 1946

पाठक, सर्वानन्द : विष्णु पुराण का भारत

पाण्डेय, एल0 पी0 : सनवरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसी, दिल्ली, 1971

पाण्डेय, राजबली : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास

: हिन्दू संस्कार, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

: पुराण विषयानुक्रमणी, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

पार्जीटर, एफ0 ई0 : द पुराण टेक्ट्स ऑफ डायनेस्टीज ऑफ द कलि एज, आक्सफोर्ड, 1913ई0

: एन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडिशन, आक्सफोर्ड, लन्दन, 1922

पुसाल्कर, ए0 डी0 : कल्याण हिन्दू संस्कृति, अंक– 1 वर्ष 24, जिल्द सं0– 1, 1950 ई0

पौडवाल, आर0 के0 : ऐडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ द आर्क्योलॉजी डिपार्टमेण्ट (11.9)

बनर्जी, जी0 डी0 : द हिन्दू लॉ ऑफ मैरिज एण्ड स्त्री धन

बनर्जी, जे0 एन0 : द डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, कलकत्ता, 1956

: जर्नल ऑफ इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरिएण्टल आर्ट, भाग– 16

: मिथ्स एक्सप्लेनिंग सम एलियन ऑफ द नार्थ इण्डियन सन आइकन्स

बार्गीज़, जे0	:	ए0 एस0 आई0 डब्ल्यू0 सी0, आर्किटेक्चरल एण्टीक्वीटीज ऑफ नार्थ गुजरात
बार्थ	.	दि रेलिजन्स ऑफ इण्डिया
बाशम, ए0 एल0	·	वण्डर दैट वाज इण्डिया, लन्दन, 1954
बील, ए0	:	बुद्धिस्ट रिकार्ड ऑफ वेस्टर्न कंट्रीज, भाग–2
भट्टसाली, ए0 के0	:	आइकनोग्राफी ऑफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्रह्मनिकल स्कल्पचर इन द ढाका म्यूजियम, ढाका, 1929
भण्डारकर, आर0 जी0	:	वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत, 1967
	:	क्लेक्टेडवर्क्स, पूना
	:	वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टम्स, बनारस, 1965
मजूमदार, आर0 सी0	:	द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, बॉम्बे, 1951
मित्र, डी0	:	फॉरेन एलीमेण्ट्स इन इण्डियन पापुलेशन
मिराशी, वी0 वी0	:	आइडेण्टीफिकेशन ऑफ कालप्रिय
	:	स्टडीज इन इण्डोलॉजी, भाग– 1
	:	श्री एन्शिएण्ट फेमस टेम्पल्स ऑफ द सन 'पुराणम' भाग– 8 सं0 1

मिश्र, इन्दुमती : प्रतिमा विज्ञान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1987

मीज, ए0 एच0 : धर्म एण्ड सोसायटी, लंदन, 1935

मैकडॉनल, ए0 ए0 : वैदिक माइथॉलोजी, वाराणसी, 1963

मैकडॉनल एवं कीथ : वैदिक इण्डेक्स

मैक्रेन्डिल, जे0 डब्ल्यू0 : एन्शिएण्ट इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड बाई टॉलमी

मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारतीय भण्डार, प्रयाग, सं0 2007

राधाकृष्णन : धर्म और समाज, 1960

राय, एस0 एन0 : अर्ली. पौराणिक एकाउण्ट ऑफ सन एण्ड सोलर कल्ट, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, स्टडीज, 1963

: पौराणिक धर्म एवं समाज, पञ्चानद पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1968

राय, यू0 एन0 : हमारे पुराने नगर, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1969

राय चौधरी, एच0 सी0 : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1953

राव, टी0 ए0 गोपीनाथ : एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोग्राफी (दो भागों में), मद्रास, 1914– 1916

ला, नरेन्द्र नाथ : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर

लाहा, विमल चरण : दि रिवर्स ऑफ इण्डिया
: हिस्टॉरिकल ज्योग्राफी ऑफ एन्शिएण्ट इण्डिया, पेरिस

लेगी : रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट किंगडम्स

वारेन, डब्ल्यू0 एफ0 : शाक द्वीप इन दि मिथिकल वर्ल्ड, व्यू ऑफ इण्डिया, जे0 ए0 ओ0 एस0, 1920

विन्टरनिट्स : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, कलकन्ता, 1950

विल्सन, एच0 एच0 : इण्ट्रोडक्शन टु द इंग्लिश ट्रान्सलेशन ऑफ द विष्णु पुराण

वेणुगोपालाचार्य, एस0 : वैष्णव भक्ति, मण्ड्या, प्र0स0 – 1981

वेदालंकार, हरिदन्त : हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास

वेस्टरमार्क : ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मैरिज (लंदन, 1926)

शर्मा, आर0 एस0 : शुद्राज इन एन्शिएण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1958, द्वितीय संशोधित संस्करण, 1980
: लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसायटी एण्ड एकोनामी, बम्बई, 1966
: पूर्वमध्य काल में सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली, 1969

शिवदन्त, ज्ञानी : वेदकालीन समाज, प्र0 स0 वाराणसी, चौखम्बा विद्या भवन, 1967

शिवराम मूर्ति, सी0 : इण्डियन स्कल्पचर, नई दिल्ली, 1961

श्रीनिवासाचारी, पी0 एन0 : समकालीन भारतीय तत्व विचार, मैसूर विश्वविद्यालय

श्रीवास्तव, विनोद चन्द्र : सनवरशिप इन एन्शिएण्ट इण्डिया

स्टेटनक्रान, एच0 वान0 : इण्डिश्सोनन प्रीस्टेर साम्ब एण्ड देई शाक द्वीपीय ब्राह्मण,वेसबेडिन, 1968

स्टर्लिंग, ए0 : ऐन एकाउण्ट स्टेटिस्टिकल एण्ड हिस्टॉरिकल ऑफ उड़ीसा प्रापर, कोणार्क, 1825

सरकार, डी0 सी0 : स्टडीज इन द ज्योग्राफी ऑफ एन्शिएण्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया, दिल्ली, 1966

: कॉस्मोग्राफी एण्ड ज्यॉग्राफी इन अर्ली इण्डियन लिटरेचर

: स्टडीज इन इण्डियन कॉएन्ज

सांकलिया, एच0 डी0 : आर्क्योलॉजी ऑफ गुजरात, बॉम्बे, 1941

सेनगुप्ता, एन0 सी0 : इवोल्युशन ऑफ एन्शिएण्ट इण्डियन लॉ, कलकन्ता, लंदन, 1955

हण्टर, डब्ल्यू0 डब्ल्यू0 : ए हिस्ट्री ऑफ उड़ीसा– 1, कलकन्ता, 1956

हाजरा, आर0 सी0 : स्टडीज इन द पुराणिक रिकार्ड्स ऑन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1975

: स्टडीज इन द उपपुराणाज; ढाका, 1940

हाप्किन्स, इ0 डब्ल्यू0 : द ग्रेट एपिक ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, 1978

हैवेल : दि सोल ऑफ इण्डिया

शोध पत्रिकाएँ

जर्नल ऑफ गंगानाथ झा इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद ।

इण्डियन आर्क्योलॉजी, ए रिव्यू, दिल्ली ।

एन्शिएण्ट इडिया, बुलेटिन ऑफ आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, दिल्ली।

विश्वभारती क्वार्टर्ली।

इण्डियन हिस्ट्री क्वार्टर्ली।

'पुराणम' सर्वभारतीय काशिराजन्यास, दुर्ग, रामनगर, वाराणसी।

जर्नल ऑफ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, स्टडीज, इलाहाबाद।

जर्नल ऑफ ओरिएण्टल रिसर्च सोसायटी, अमेरिका।

डा0 मिराशी, फेलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, 1965 ई0।

जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाएटी ऑफ बंगाल।

जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री।

एनल्स ऑफ भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट।

जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी।

इण्डियन ऐण्टीक्वेरी।

।*।

संकेत शब्द–सूची

अग्नि पु0	–	अग्नि पुराण ।
आप0 ध0 सू0	–	आपस्तम्ब धर्म सूत्र।
आप0 गृ0 सू0	–	आपस्तम्ब गृह्य सूत्र।
आश्व0 गृ0 सू0	–	आश्वलायन गृह्य सूत्र।
कात्यायन श्रौ0 सू0	–	कात्यायन श्रौत सूत्र।
कूर्म पु0	–	कूर्म पुराण।
गरूड़ पु0	–	गरूड़ पुराण।
गोभिल गृ0 सू0	–	गोभिल गृह्य सूत्र।
गोपथ ब्रा0	–	गोपथ ब्राह्मण।
गौतम ध0 सू0	–	गौतम धर्म सूत्र।
छान्दोग्य उप0	–	छान्दोग्य उपनिषद्।
जैमिनीय उप0	–	जैमिनीय उपनिषद्।
जैमिनीय गृ0 सू0	–	जैमिनीय गृह्य सूत्र।
जैमिनीय ब्रा0	–	जैमिनीय ब्राह्मण।
तैन्तिरीय सं0	–	तैन्तिरीय संहिता।
तैन्तिरीय ब्रा0	–	तैन्तिरीय ब्राह्मण।
दौहायण श्रौ0 सू0	–	दौहायण श्रौत सूत्र।
पद्म पु0	–	पद्म पुराण।
पारस्कर गृ0 सू0	–	पारस्कर गृह्य सूत्र।
ब्रह्माण्ड पु0	–	ब्रह्माण्ड पुराण।
ब्रह्म पु0	–	ब्रह्म पुराण।
ब्रह्मवैवर्त्त पु0	–	ब्रह्मवैवर्त्त पुराण।
बौधायन गृ0 सू0	–	बौधायन गृह्य सूत्र।
बौधायन ध0 सू0	–	बौधायन धर्म सूत्र।
बृहदारण्यक उप0	–	बृहदारण्यक उपनिषद्।
भवि0 पु0	–	भविष्य पुराण।

भागवत पु0 – भागवत पुराण।

भारद्वाज गृ0 सू0 – भारद्वाज गृह्य सूत्र।

मत्स्य पु0 – मत्स्य पुराण।

मार्कण्डेय पु0 – मार्कण्डेय पुराण।

याज्ञ व0 स्मृ0 – याज्ञवल्क्य स्मृति।

वराह पु0 – वराह पुराण।

वशिष्ठ ध0 सू0 – वशिष्ठ धर्म सूत्र।

विष्णु पु0 – विष्णु पुराण।

विष्णु ध0 सू0 – विष्णु धर्म सूत्र।

वाजसनेयी सं0 – वाजसनेयी संहिता।

वामन पु0 – वामन पुराण।

वायु पु0 – वायु पुराण।

वैखानस गृ0 सू0 – वैखानस गृह्य सूत्र।

शतपथ ब्रा0 – शतपथ ब्राह्मण।

शांखायन गृ0 सू0 – शांखायन गृह्य सूत्र।

शिव पु0 – शिव पुराण।

स्कन्द पु0 – स्कन्द पुराण।

सत्याषाढ़ श्रौ0 सू0 – सत्याषाढ़ श्रौत सूत्र।

हरिवंश पु0 – हरिवंश पुराण।

हिरण्यकेशी गृ0 सू0 – हिरण्यकेशी गृह्य सूत्र।